ओ३म्

खट्टी-मीठी यादें

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

खट्टी-मीठी यादें
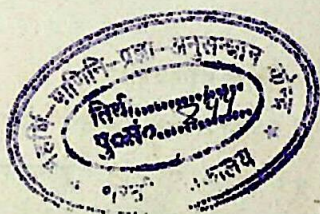
हमारे प्रकाशन

१. **पौराणिक पोलप्रकाश** — १००-००
पं० मनसारामजी 'वैदिक तोप'
[५१ वर्ष के पश्चात् यह ग्रन्थरत्न नयनाभिराम गेटअप में प्रकाशित हुआ है]

२. **कल्याण-मार्ग का पथिक** — १५-००
स्वामी श्रद्धानन्दजी की आत्मकथा

३. **मृत्यु से अमृत की ओर** — ६-००
पं० ओम्प्रकाशजी वेदालंकार

४. **ऋग्वेद भाष्यम् [प्रथम खण्ड]** प्रेस में — १००-००
पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार
[ऋग्वेद की विस्तृत व्याख्या २० × ३०/८ साइज में लगभग ५५०-५५० पृष्ठ के सात खण्डों में प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ]

ओ३म्

खट्टी-मीठी यादें

लेखक
स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

सम्पादक
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रकाशक :
भगवती प्रकाशन
एच-१/२ माडल टाउन,
दिल्ली-११०००६

संस्करण प्रथम : जून, १६८८

मूल्य : १२.५० रुपये

मुद्रक :
दुर्गा मुद्रणालय,
सुभाषपार्क एक्सटेंशन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११० ०३२

प्रकाशकीय

अपनी आत्मकथा लिखना टेढ़ी खीर है। अपनी त्रुटियों एवं निर्बलताओं की चर्चा करना अथवा अपनी निन्दा लिखना लेखक को स्वयं अच्छा नहीं लगता और यदि लेखक अपनी प्रशंसा और दूसरों की समालोचना करता है तो वह पाठकों को पसन्द नहीं आती, पाठक उसे आत्मश्लाघा तथा परनिन्दा समझते हैं।

वस्तुतः जीवनियाँ और आत्मकथाएँ इतिहास का सच्चा स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। इनमें अतीत का दर्शन होता है और भविष्य की योजना लक्षित होती है। आत्मकथाओं से इतिहास की लुप्त कड़ियाँ प्रकाशित हो उठती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'खट्टी-मीठी यादें' एक आर्यसंन्यासी की ऐसी कथा है जिसमें उन्होंने बिना लाग-लपेट के अपने जीवन की घटनाओं के साथ आर्यसमाज से सम्बन्धित अनेक ऐसे तथ्यों का उद्घाटन किया है, जो इस पुस्तक को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं मिलेंगे। इसमें ऐसे स्थल भी पाठक को पढ़ने को मिलेंगे जहाँ आर्यसमाजियों के व्यवहार की अपेक्षा अन्य मतावलम्बियों का व्यवहार और सौजन्यता सचमुच सराह-नीय है। कहीं किसी व्यक्ति विशेष की समालोचना शायद पाठक को

या उस व्यक्ति के भक्त को अच्छी न लगे परन्तु यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह सत्य है, तथ्य है और बिना किसी ईर्ष्या-द्वेष के आर्यजगत् की हित की भावना से लिखा गया है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि बहुत कम लिखा गया है। मैं स्वयं लिखता तो बहुत तीखा लिखता। पाठक पक्षपात का चश्मा उतार कर धैर्यपूर्वक पढ़ें।

आर्यसमाज क्या था? आर्यसमाज क्या हो गया है? आर्यसमाज के होते हुए पाखण्ड बढ़ रहा है, अवतारवाद पनप रहा है। महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों की होली जलाई जा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम पर Co-educational, English Medium, Public School खोले जा रहे हैं। इन स्कूलों और कालिजों में जैन और मुसलमान प्रिंसिपल बनकर वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं और करेंगे। **किमाश्चर्यमतः परम्**—इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या होगा?

एक वह युग था जब आर्यजगत् में वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी, आर्यनेता नारायण स्वामीजी, लौहपुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी, योगिराज स्वामी आत्मानन्दजी, अनेक भाषाविद्, विद्यानिष्णात स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ, आचार्य रामदेवजी, पं० चमूपतिजी, पदवाक्य प्रमाणज्ञ पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु जैसे देदीप्यमान रत्न थे। आज पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक, पं० विश्वश्रवाजी व्यास, पं० विश्वनाथजी विद्यामार्तण्ड आदि पाँच-सात विद्वानों को छोड़कर चमचे इकट्ठे हो रहे हैं। महामूर्ख, विद्याशून्य व्यक्तियों को प्रतिनिधि बनाकर सभाओं में भेज दिया जाता है, विद्वान् धक्के खा रहे हैं।

विद्वान् आज भी हैं; विद्वानों को आर्यसमाज की ओर आकर्षित किया जा सकता है, परन्तु सत्तालोलुप नेता अच्छे व्यक्तियों को आगे आने देने के पक्ष में हैं ही नहीं।

इस सारी स्थिति को देखकर मर्मान्तक वेदना होती है, हृदय रोता है, मस्तक फटता है। स्वामी विद्यानन्दजी ने अपने हृदय की टीस और कसक को 'खट्टी-मीठी यादों' के रूप में प्रस्तुत किया है।

स्वामीजी की यह कृति पाठकों के हाथ में सौंपते हुए हमें हर्ष है। इस कृति से पाठकों की ज्ञानवृद्धि ही नहीं होगी अपितु यह कृति पाठकों को झकझोड़ेगी, उन्हें जगाएगी, उन्हें कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा देगी।

वेद सदन
एच-१/२ माडल टाउन,
दिल्ली-११० ००९

विदुषामनुचरः
जगदीश्वरानन्द सरस्वती
२३.५.८८
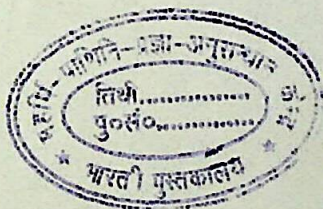
१५ नवम्बर १९८७ को डी० ए० वी० शताब्दी
समापन समारोह के अवसर पर
उपराष्ट्रपति डा० शंकरदयाल शर्मा
से नई शिक्षानीति में
संस्कृत की स्थिति पर
विचार-विमर्श
करते हुए
स्वामीजी।

प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी तीनमूर्ति भवन में आयोजित
विशेष समारोह में स्वामीजी की महान् कृति 'तत्त्वमसि'
पर उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा प्रदत्त विशेष
पुरस्कार भेंट कर रहे हैं। साथ में खड़े हैं
माल्यार्पण द्वारा स्वामीजी का सम्मान
करनेवाले उत्तरप्रदेश के तत्कालीन
मुख्यमन्त्री श्री नारायणदत्त
तिवारी। उनके दाईं ओर
बैठे हैं लोकसभाध्यक्ष
श्री बलराम जाखड़
तथा उत्तरप्रदेश के
राज्यपाल।
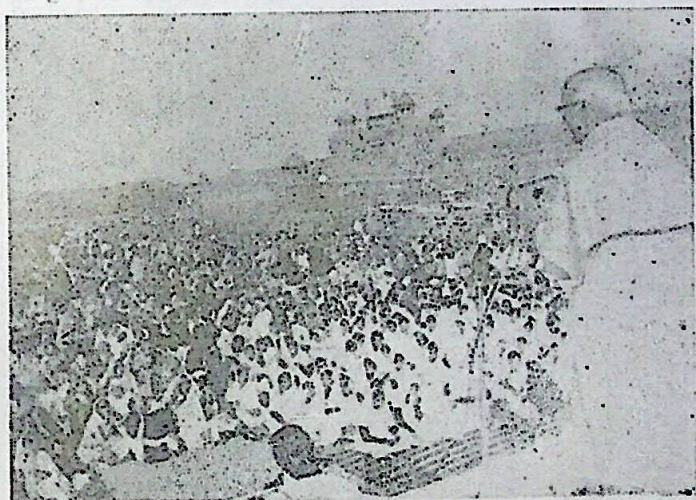
२५ दिसम्बर १९८४ को लालकिला मैदान में आयोजित विशाल जनसभा में स्वामीजी की ऐतिहासिक गर्जना— "सार्वदेशिक सभा के निश्चयानुसार २४ दिसम्बर को होनेवाले आम चुनाव में सब आर्यसमाजी इन्दिरा कांग्रेस को वोट दें।"—"सार्वदेशिक सभा ने ऐसा कोई निश्चय नहीं किया। इसलिए सार्वदेशिक सभा के प्रधान ला० रामगोपाल शालवाले ने समाचार-पत्रों में उक्त आशय की अपील जारी करके सार्वदेशिक सभा के साथ विश्वासघात किया है और अपने स्वार्थ के लिए समूचे आर्यसमाज को इन्दिरा कांग्रेस की झोली में डालकर आर्यसमाज की पीठ में छुरा घोंपा है।"
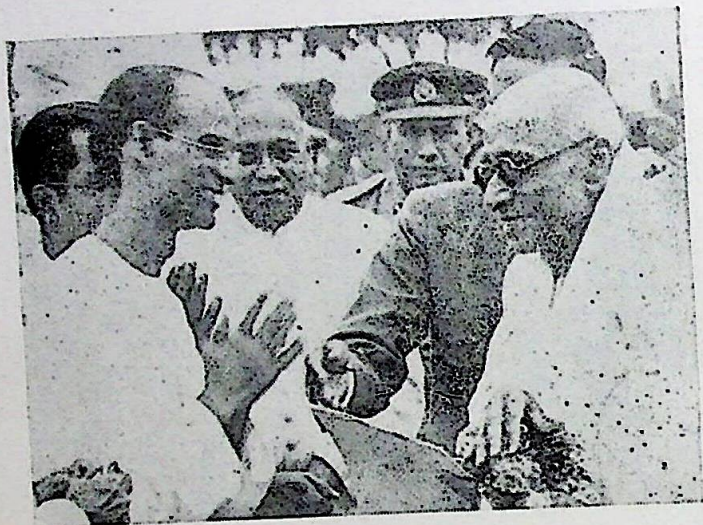
अन्तिम ब्रिटिश शासक लार्ड माउंटबेटन से १९४९ में देश की वागडोर सँभालनेवाले प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल (=राष्ट्रपति) चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य उसी वर्ष ऋषि निर्वाणोत्सव पर रामलीला मैदान में पधारे। चित्र में श्री देशबन्धु गुप्ता राजाजी को स्वामीजी का परिचय दे रहे हैं। स्वामीजी के साथ खड़े हैं जस्टिस मेहरचन्द महाजन।
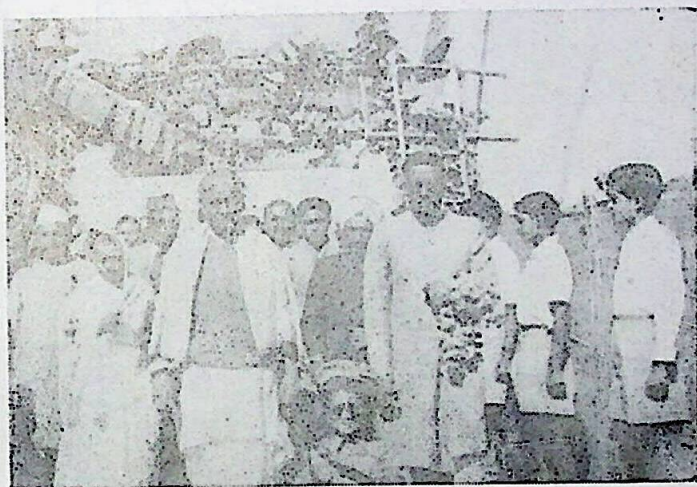
१९५० में ऋषि निर्वाणोत्सव में मुख्य अतिथि
के रूप में पधार रहे हैं सरदार वल्लभभाई
पटेल। उनके दाईं ओर खड़ी हैं
उनकी सुपुत्री मणिबेन पटेल
व देसराज चौधरी तथा
वाईं ओर हैं आर्य
केन्द्रीय सभा
के प्रधान
श्री देशबन्धु गुप्ता।

गांधी मैदान में श्रद्धानन्द वलिदान दिवस
की अध्यक्षता के लिए आमंत्रित
डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी के
साथ। डा० मुकर्जी के वाईं ओर
खड़े हैं ला० देशबन्धु गुप्ता व
वावा मिलखासिह और
दाईं ओर आर्य केन्द्रीय
सभा के प्रधान
ला० नारायणदत्त
ठेकेदार।

प्रधानमन्त्री श्री लाल वहादुर शास्त्री
दीक्षान्त भाषण दे रहे हैं।
उनके वाईं ओर स्वामीजी के साथ वैठे हैं
प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् और संसद् सदस्य
श्री अलगूराय शास्त्री।
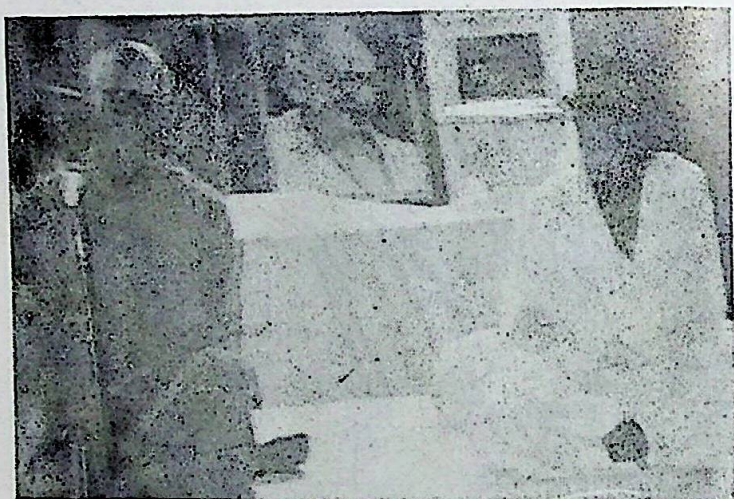
वाबा आमटे के पानीपत पहुँचने पर उनकी पदयात्रा के बाद हिंसक घटनाओं, गोहत्या और मद्यपान में वृद्धि आदि से अवगत करते हुए उन्हें अपनी पदयात्रा स्थगित करने की सलाह देते हुए स्वामीजी।
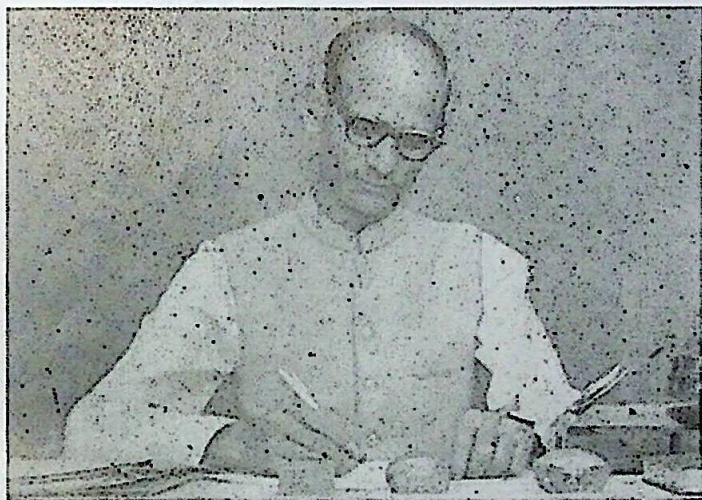
कालिज के प्रिंसिपल
के
रूप में
कार्यरत।
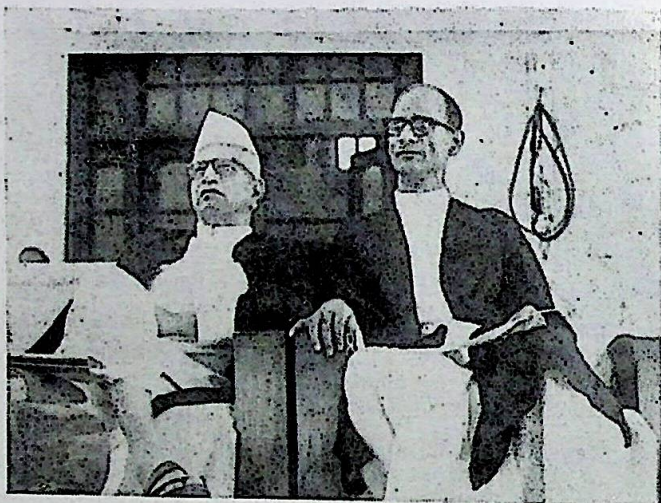
पंजाब के गवर्नर व भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री
श्री नरहरि विष्णु गाडगिल
के साथ स्वामीजी।
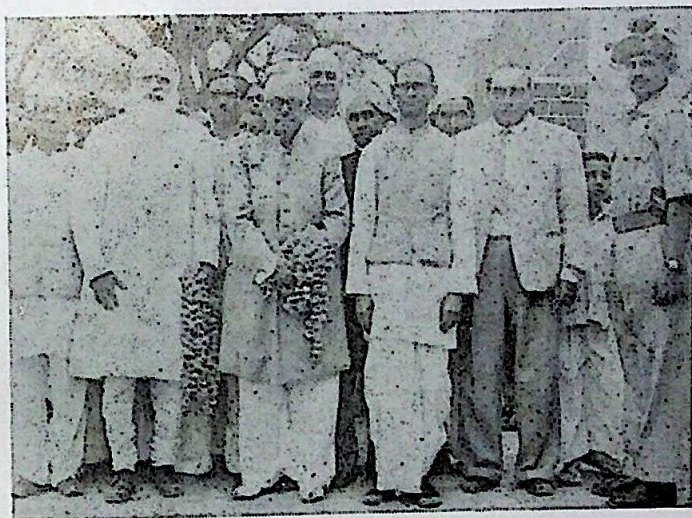
केन्द्रीय पुनर्वास मन्त्री श्री मेहरचन्द खन्ना ने
कालिज में पुरस्कार वितरण के अवसर पर
कालिज को सौ बीघे भूमि प्रदान की ।
साथ में खड़े हैं ज्ञानी गुरुमुखसिंह
मुसाफिर संसद् सदस्य,
पंजाबी के प्रसिद्ध
कवि व पंजाब
ग्रेस के
अध्यक्ष ।
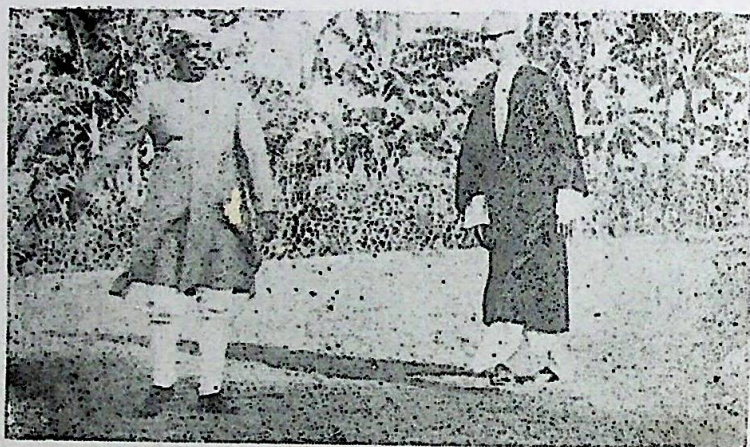
१९६२ में चीन के साथ युद्ध में भारत की पराजय होने पर रक्षामन्त्री का कार्यभार सँभालने के वाद श्री यशवन्तराव चह्वाण कालिज में पधारे। कालिज की वाटिका में खड़े पानीपत की तीसरी लड़ाई के सम्बन्ध में कुछ निर्देश कर रहे हैं। उस लड़ाई में उनके पूर्वजों ने भी प्राणोत्सर्ग किया था।
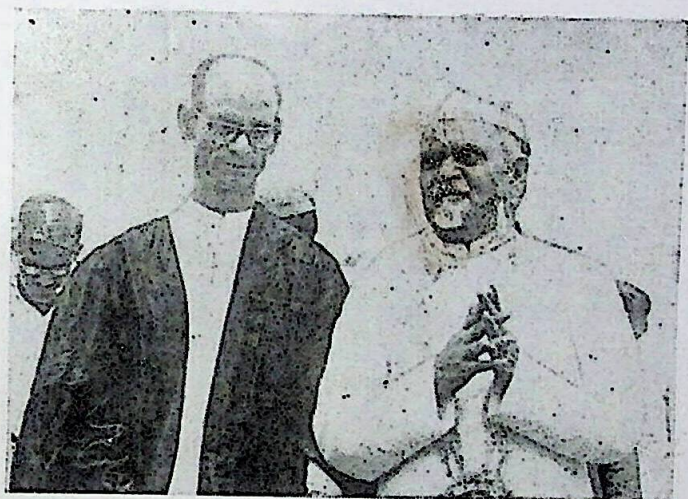
पंजाब के गवर्नर तथा पूर्व केन्द्रीय मन्त्री
हाफ़िज़ मुहम्मद इब्राहीम के कालिज
में आयोजित कवि सम्मेलन में
पधारने पर उनका
स्वागत करते हुए
स्वामीजी।
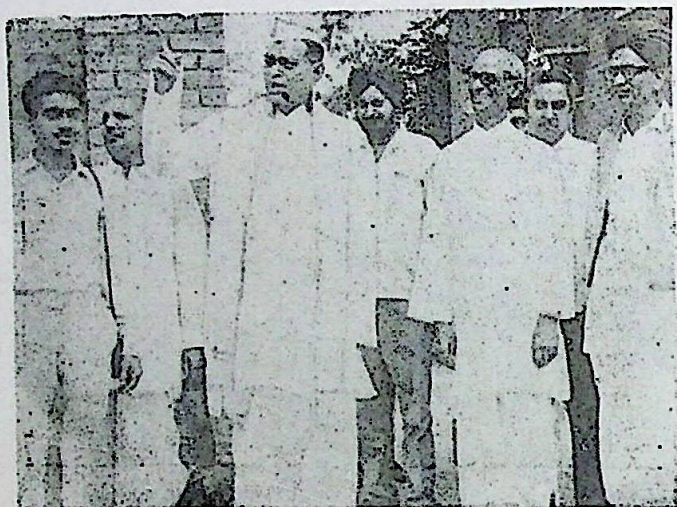
राज्यसभा के मनोनीत सदस्य
राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर
एक विशिष्ट मुद्रा में। उनके
वाईं ओर खड़े हैं स्वामीजी
व हरियाणा के शिक्षा-
मन्त्री चौधरी
माड़ू सिंह।
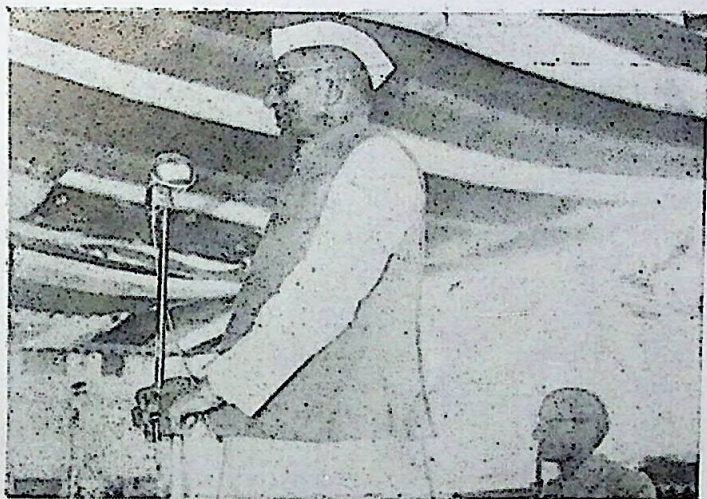
कालिज में सम्पन्न हिन्दी-दिवस पर
जनता को सम्बोधित करते हुए
श्री मोरारजी देसाई। पीछे
अध्यक्ष के आसन पर
स्वामीजी दिखाई
दे रहे हैं।

भारत के उपराष्ट्रपति श्री वी० डी० जत्ती
के निवास पर ऋषि दयानन्द की
वेदविषयक मान्यताओं को
स्पष्ट करते हुए
स्वामीजी ।

खट्टी-मीट ादें

खण्ड १—होशि ः

विजनौर उत्तर प्रदेश का एक ज़िला है। उ के अन्तर्गत अस्करीपुर नाम का एक गाँव है। उसी गाँव में सन् १९१४ में मैंने जीवन के प्रथम श्वास लिये थे। मेरे जन्म से पूर्व ही पिताश्री (पं० केदारनाथ दीक्षित) स्वामी दर्शनानन्दजी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर आर्यसमाजी बन चुके थे और आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, पंजाब में उपदेशक नियुक्त होकर लाहौर चले गये थे। कुछ वर्षों तक उपदेशक पद पर कार्य करने के बाद उनकी नियुक्ति डी० ए० वी० हाई स्कूल, होशियारपुर (पंजाब) में संस्कृत-अध्यापक के पद पर हो गई और रिटायर होने तक वे वहीं रहे।

मुझे याद नहीं कि कभी किसी ने मुझे यह काम करने के लिए कहा था, पर मैंने गाँव की दीवारों पर लिख डाला—'आर्य बनो, वेद पढ़ो।' वेद प्रचार के निमित्त किया गया यह मेरा पहला काम था जो मैंने दूसरी कक्षा में पढ़ते हुए किया था। मेरी समूची शिक्षा होशियार-ुर व लाहौर में डी० ए० वी० स्कूल व कालिजों में हुई। आर्य युवकसमाज, होशियारपुर का कार्य शुरू किया। युवक था, आर्यसमाजी था और काम करने की लग्न थी। परिणाम कुछ ऐसा हुआ कि वहाँ के लोग मुझे 'युवक समाज' के नाम से पुकारने लगे।

एक सफल परीक्षण—जीवन और मृत्यु का खेल घर-घर में होता

रहता है। उसमें जीवन के साथ-साथ नामकरण, मुण्डन, विवाह-संस्कार आदि होते हैं। यह भारतीय संस्कृति है। पौराणिक पण्डित (पुरोहित) तो हर गाँव में सहज उपलब्ध हैं, पर शहर की आर्यसमाज में नियुक्त एक पुरोहित सारे शहर और आस-पास के सैकड़ों गाँवों की आवश्यकता कैसे पूरी कर सकता है? १९२७-२८ में आर्य प्रादेशिक सभा ने श्री अमरस्वामीजी (उस समय ठाकुर अमरसिंह आर्यमुसाफ़िर) के आचार्यत्व में एक पुरोहित प्रशिक्षण केन्द्र खोला। उसमें गाँवों में रहनेवाले और प्रशिक्षण के बाद भी अपने गाँव में बसनेवाले साधारण योग्यतावाले युवकों, विशेषतः दलितों या अछूतों (तब तक हरिजन शब्द नहीं चला था) को लेकर छह मास में उन्हें मुख्य संस्कारों की विधि का प्रशिक्षण दिया गया। परीक्षण सफल रहा। देशभर में इसे अपनाने की आवश्यकता है। प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं को जगह-जगह ऐसे केन्द्र खोलने चाहिएँ। गाँव-गाँव में आर्यसमाज की विचारधारा फैलाने के लिए यह अत्यन्तावश्यक है।

स्वामी शूद्रानन्द—लगभग उन्हीं दिनों की बात है, होशियारपुर में दलितों का एक सम्मेलन हुआ। स्वामी शूद्रानन्द्र नाम से एक नेता उन जातियों में उभर रहा था। वह एक प्रभावशाली वक्ता था। हिन्दुओं द्वारा अछूत कही जानेवाली जातियों के ऊपर होनेवाले अत्याचारों और घृणापूर्ण व्यवहार के नाम पर उनकी भावनाओं को भड़काना और उन्हें मुसलमान बनने की प्रेरणा करना उसका लक्ष्य था। हज़ारों की संख्या में अछूत कहानेवाले लोग जमा हुए। ठाकुर अमरसिंह को साथ लेकर पिताजी सभा में जा पहुँचे। कुछ देर वाद वे खड़े हो गये और हाथ पकड़कर ठा० अमरसिंह को भी अपने साथ खड़ा कर लिया। फिर ऊँची आवाज़ में बोले—"मैं बिजनौर का रहनेवाला जन्म का ब्राह्मण हूँ और ये अरनिया, ज़िला बुलन्दशहर के रहनेवाले राजपूत क्षत्रिय हैं। स्वामी शूद्रानन्द कहते हैं कि हम तुम लोगों से घृणा करते हैं। तुम लोगों में से कोई दो गिलास पानी ले

आये।" पानी आ गया। एक गिलास पिताजी ने पिया और एक गिलास ठा० अमरसिंह ने। दो मिनट में शूद्रानन्द का बना-बनाया खेल बिगड़ गया और हज़ारों लोग मुसलमान बनने से बच गये। जो काम सैकड़ों भाषणों और लाखों रुपयों से न होता वह दो गिलास पानी पीने से हो गया। इस छोटी-सी घटना में धर्मपरिवर्तन की समस्या और उसके समाधान का रहस्य छिपा है। हरिजनों को धर्म-परिवर्तन के विचार से विरत करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सवर्ण कहानेवाले हिन्दू उन्हें यह विश्वास दिला दें कि हिन्दू रहकर भी वे सम्मान का जीवन जी सकते हैं।

२१ अप्रैल, १९३४ को पिताजी को रिटायर होना था। उनके स्थान पर एक संस्कृत-अध्यापक की नियुक्ति होनी थी। यह मुझे अपना सौभाग्य कहना चाहिए कि अधिकारियों ने पिताजी के स्थान पर मुझे उस पद के योग्य समझा। यह कथा यहीं पर समाप्त नहीं हुई। अगले सप्ताह ही आर्यसमाज का वार्षिक निर्वाचन था। उसी दिन मुझे आर्यसमाज का सदस्य बनाया गया, सभासद घोषित किया गया और समाज का उपमंत्री निर्वाचित कर दिया गया। यह सब मात्र आर्यसमाज का काम आगे बढ़ाने के लिए एक युवक के कन्धों पर भार डालने का बहाना था।

पिताजी सिद्धान्तवादी थे। सिद्धान्त पर अड़ जाना उनका स्वभाव था। इस विषय में गणितीय हानि-लाभ को उन्होंने जीवन में कभी आड़े नहीं आने दिया। यदि वे इसे अपने तक ही सीमित रखते तो कोई बात नहीं थी, पर इसके कुछ कण विरासत में मुझे भी दे गये।

हिन्दी के लिए संघर्ष—उन दिनों उर्दू का ज़माना था। सरकारी दफ़्तरों में, कचहरियों में, व्यापार में सर्वत्र उसका एकाधिपत्य था। मैंने हिन्दी में मनिआर्डर लिखा और उसे लेकर डाकख़ाने जा पहुँचा। डाकख़ानेवालों ने हिन्दी में होने के कारण लेने से इन्कार कर दिया। यह तो सीधा अपमान था। अपना न भी सही, पर आर्यसमाज का,

भारतीयता का तो था ही। पत्राचार चल पड़ा। पोस्टमास्टर जनरल को शिकायत भेजी। उन दिनों सरकार के इस विभाग में सुनवाई जल्दी होती थी। एक सप्ताह के भीतर पेशावर से इन्क्वायरी के लिए इन्स्पेक्टर आ पहुँचा। पर, इतने मात्र से डाकख़ानेवाले भला कैसे मान सकते थे। एक लम्बी लड़ाई चली। मनिआर्डर रुका रहा। अन्ततः सत्य की जीत हुई और डाकख़ानों को आदेश दिया गया कि उर्दू और अंग्रेज़ी में लिखे मनिआर्डरों की तरह ही हिन्दी में लिखे मनिआर्डर भी स्वीकार किये जाएँ।

उन दिनों आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक मुखपत्र 'आर्य गज़ट' था। वह लाहौर से उर्दू में निकलता था। सन् १९३५ में पहली वार मैंने उसमें एक लेख प्रकाशनार्थ भेजा। शीर्षक था—'साधन या साध्य'। उन दिनों आर्यसमाज के अख़बार उर्दू (फ़ारसी) लिपि में छपते थे, पर उनकी भाषा हिन्दी होती थी। लेख में इस बात पर बल दिया गया था कि आर्यसमाज के स्कूल व कालिज अपने आपमें साध्य नहीं हैं, बल्कि आर्यसमाज व वैदिक धर्म के प्रचार का साधनमात्र हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि उनमें पढ़ानेवाले अध्यापक आर्यसमाजी हों। यह लेख आर्यजगत् में चर्चा का विषय बन गया। डी० ए० वी० कॉलेज, जालन्धर के संस्थापक प्रिंसिपल त्यागमूर्त्ति पं० मेहरचन्दजी और होशियारपुर के महान् नेता व शिक्षाशास्त्री लाला देवीचन्दजी से जब मैंने इस विषय पर बात चलाई तो उन्होंने कहा कि आर्यसमाजी अध्यापक मिलते नहीं। मेरा कहना था कि प्रतिवर्ष हज़ारों विद्यार्थी डी० ए० वी० संस्थाओं से पढ़कर निकलते हैं। यदि उनमें से थोड़े-से भी आर्यसमाजी नहीं होते, जो हमारी संस्थाओं में पढ़ाने के लिए मिल सकें, तो फिर इनको चलाने का क्या लाभ ?

गांधीजी से भेंट—उसी वर्ष की बात है। लाहौर में लाजपतराय भवन में गांधीजी ठहरे हुए थे। उनसे भेंट के लिए पाँच मिनट का

समय माँगा और वह मिल गया। उन्हीं दिनों गांधीजी ने 'हरिजन' शब्द का प्रयोग शुरू किया था। निस्सन्देह गांधीजी द्वारा इस शब्द का प्रयोग तथोक्त अछूतों को समाज में एक प्रतिष्ठित नाम देना था, पर हमें इससे आगे चलकर होनेवाली हानि का आभास था। आर्य-जगत् के मूर्धन्य विद्वान् श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार मेरे साथ थे। हमारा कहना था कि इस शब्द के प्रयोग से कालान्तर में एक नई जाति बनकर अनेक समस्याओं को जन्म देगी।

शुद्धिकार्य—उसी वर्ष लाला देवीचन्द्रजी ने होशियारपुर में ईसाइयों की सालवेशन आर्मी के मुक़ाबले में दयानन्द सालवेशन मिशन की स्थापना की। यह कहना मात्र औपचारिकता नहीं है कि लाला देवीचन्दजी एक व्यक्ति नहीं, संस्था थे। होशियारपुर में उनका वही स्थान था जो लाहौर में महात्मा हंसराजजी का था। मिशन की ओर से होनेवाले शुद्धिकार्य में मैंने बढ़-चढ़कर भाग लिया। सन् १९२३ में स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा चलाये गये शुद्धि आन्दोलन में महात्मा हंसराजजी के नेतृत्व में पिताजी ने काम किया था। शुद्धि-कार्य में मेरी रुचि उसी प्रेरणा का परिणाम थी।

मैंने दो महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को वैदिक धर्म में दीक्षित किया। एक थे ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ के चचेरे भाई जिनका नाम ठाकुर धर्मसिंह रखा गया। कुछ दिनों बाद एक दिन दिल्ली में मिले। कहने लगे कि लड़कियों की शादी तो हिन्दुओं में हो गई। लड़कों को नौकरी बिड़लाजी ने दे दी। किन्तु लड़कों के लिए लड़कियाँ नहीं मिल रहीं। हिन्दू धर्म को अपनानेवालों को इस कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उनकी यह शिकायत बिल्कुल ठीक थी और आज भी यह समस्या ज्यों-की-त्यों बनी हुई है।

दूसरे व्यक्ति थे जीवनपर्यन्त वैदिक धर्म का प्रचार करनेवाले प्रसिद्ध विद्वान् श्री ज्ञानेन्द्र सूफ़ी, जिनके पुत्र आगाशाही काफी दिनों तक पाकिस्तान के विदेशमंत्री रहे। ज्ञानेन्द्रजी ने शुद्ध होने के बाद

वताया कि मैं एक बार पहले भी शुद्ध हुआ था। पर हिन्दू लोग मुझे शक की निगाह से देखते रहे। इसलिए मैं फिर से मुसलमान हो गया। मैंने कहा कि ऐसा तो फिर भी हो सकता है, विशेषतः जबकि एक बार आप फिर से मुसलमान होकर उनके सन्देह की पुष्टि कर चुके हैं। उन्होंने विश्वास दिलाया कि अब ऐसा नहीं होगा। उन्होंने अपना वचन निभाया और अन्तिम श्वास तक वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे।

सचाई की राह पर—होशियारपुर में से होकर पंजाब के गवर्नर को कहीं जाना था। उन दिनों यह परम्परा थी कि जिस मार्ग से गवर्नर को गुज़रना होता था, उस मार्ग के दोनों ओर उसके सम्मानार्थ अध्यापकों सहित स्थानीय स्कूलों के बच्चों को पंक्तिवद्ध करके खड़ा किया जाता था। सम्भवतः इसलिए कि बच्चों को प्रारम्भ से ही अपनी ग़ुलामी का अहसास होने लगे। हमारा स्कूल इसका अपवाद नहीं था। हमें बच्चों के साथ सड़क के दोनों ओर खड़े होने का आदेश हुआ। मैंने स्कूल के हेडमास्टर साहव से कह दिया कि मेरे लिए ऐसा करना सम्भव नहीं होगा। मैं कांग्रेस का कार्यकर्त्ता हूँ। उन्होंने कहा कि स्कूल में रहते तो आपको जाना पड़ेगा। हाँ, यह हो सकता है कि आप आज की छुट्टी ले लें। मैंने कहा कि छुट्टी लेने का कुछ कारण भी तो होना चाहिए। हेडमास्टर महोदय ने सुझाव दिया कि कारण तो कुछ भी हो सकता है। आप सिरदर्द लिख दीजिए। मैंने वैसा ही लिख दिया। यह सरासर झूठ था। परन्तु अधिकृत व्यक्ति के कहने के अनुसार था। पर इससे क्या होता है ? किसी के कहने पर बोला झूठ सच तो नहीं बन जाएगा। यह तो अपने को धोखा देना था। इसका परिणाम झट सामने आ गया। तब तक मैं जानता ही नहीं था कि सिरदर्द किसे कहते हैं। यह पहला दिन था जब जीवन में मुझे सिरदर्द हुआ। भले ही यह संयोग हो, किन्तु मुझे निश्चय हो गया कि यह मेरे झूठ लिखने की सज़ा है।

इसी प्रसंग में मुझे दो अन्य घटनाएँ याद आ रही हैं। यह उन दिनों की बात है जब दिल्ली की कुछ सड़कों पर ट्राम चला करती थी। एक बार मैं फ़तहपुरी से फ़व्वारा तक के लिए ट्राम में बैठा। कण्डक्टर मेरे पास नहीं आया, पर फ़व्वारा आ गया। मैंने टिकट नहीं लिया था। मोटे तौर पर इसमें मेरा कोई अपराध नहीं था। कण्डक्टर ही मेरे पास टिकट देने नहीं पहुँचा था। यह सोचकर मैं विना टिकट लिये उतर गया। ट्राम चली गई और तब मुझे ध्यान आया कि खारीबावड़ी से ख़रीदे हुए सामान का पैकेट फ़तहपुरी की एक दूकान पर छूट गया था। मुझे तत्काल फ़तहपुरी लौटना पड़ा। ट्राम में एक पैसा लगता था। मुझे फ़व्वारा से फ़तहपुरी जाने और फिर वहाँ से फ़व्वारा लौटने में दो पैसे देने पड़े। आज सोचता हूँ कि यह कितना छिछला विचार था—मैं क्या करता, कण्डक्टर ही मेरे पास नहीं आया। ऐसा क्यों होता है कि मनुष्य तिनके के पीछे खड़ा होकर समझता है कि मैं किसी को दीखूँगा नहीं।

इस सन्दर्भ की एक अन्य घटना इस प्रकार है। एक बार मैं लखनऊ से कानपुर जा रहा था। लखनऊ में मेरा चचेरा भाई थानेदार था। वह मुझे कानपुर जानेवाली बस में बिठा गया। अंग्रेज़ी राज्य था। थानेदार से उसकी सवारी का किराया माँगने का दुस्साहस बसवाले कैसे कर सकते थे? फिर मुझे क्या पड़ी थी कि बैठे-बिठाये किराया देता? मुफ़्त में यात्रा का आनन्द ही कुछ और होता है, विशेषकर तब जब सिर पर किसी और का हाथ हो। कानपुर पहुँचने पर बस से उतरकर मैं सीधा अपने ठहरने के स्थान पर चला गया। वहाँ पहुँचते ही पता चला कि मेरी नई छतरी, जो उसी दिन लखनऊ में ख़रीदी थी, बस में छूट गई थी। मैं तत्काल बस अड्डे पर लौटा। परन्तु वहाँ भला छतरी कहाँ मिलती? हाँ, इतना अवश्य हुआ कि अपने स्थान से बस अड्डे तक आने-जाने का किराया और देना पड़ा। कुल मिलाकर बस के किराये से अधिक हानि हो गई।

इन घटनाओं से इतना अवश्य हुआ कि जीवन में जिस सच्चाई और ईमानदारी को मैं अपनाना चाहता था, उसे बल मिला। तीन बार सही रास्ते से फिसला। फिसलते ही चोट लगी। सावधान हो गया। परिणाम यह हुआ कि फिर कभी जीवन में इस प्रकार की घटनाएँ घटने का अवसर नहीं आया।

'अब मेरी कोई नहीं सुनता'—पण्डित विश्वबन्धु शास्त्री दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय के आचार्य थे। वे महर्षि दयानन्द की कई मान्यताओं के विरोधी थे। इसीलिए अपनी पुस्तकों में भी वे उनके विरुद्ध लिखते थे। जिस संस्था का काम ही वैदिक धर्म के प्रचारक तैयार करना था, उसके आचार्य की महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की मान्यताओं में आस्था न हो, यह कैसे सहन हो सकता था ? परिणामतः पण्डित भगवद्दत्तजी के नेतृत्व में देशव्यापी आन्दोलन हुआ। देश-भर के वैदिक विद्वान् पं० भगवद्दत्त के मत के पोषक थे, परन्तु डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी में जिनका वर्चस्व था, सांसारिक दृष्टि से बड़े समझे जानेवाले लोग—वकील, बैरिस्टर, जज, डाक्टर आदि पण्डित विश्वबन्धु के पक्ष में थे। महात्मा हंसराजजी पं० भगवद्दत्त से सहमत थे। पं० विश्वबन्धु द्वारा प्रसारित 'दशप्रश्नी' के उत्तर में उन्होंने स्वयं 'दशप्रश्नी की समीक्षा' लिखी। पं० विश्वबन्धुजी और पं० भगवद्दत्तजी के बीच जो ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हुआ, उसकी अध्यक्षता भी महात्माजी ने की। वे पूरी तरह ऋषिभक्त थे। शास्त्रार्थ में भी उनका झुकाव पं० भगवद्दत्तजी की ओर था। अन्ततः इस झगड़े का निपटारा करने के लिए महात्मा हंसराजजी को मध्यस्थ नियुक्त किया गया। महात्माजी ने जो निर्णय दिया वह पं० विश्वबन्धु के पक्ष में और पं० भगवद्दत्त के विरुद्ध था। उसके अनुसार पं० भगवद्दत्त-जी के स्थान पर पं० विश्वबन्धुजी को विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट (V.V.R.I.) का अध्यक्ष बनाया गया। जिस व्यक्ति के विरुद्ध आरोप ही यह था कि वह अपनी पुस्तकों में महर्षि दयानन्द

की मान्यताओं के विरुद्ध लिखता है, उसी को अनुसन्धान विभाग का सर्वेसर्वा बना देना कहाँ का न्याय था ? आर्यजगत् में तहलका-सा मच गया। पं० भगवद्दत्तजी ने उस निर्णय को अस्वीकार कर दिया और त्यागपत्र देकर अलग बैठ गये। यह सन् १९३४ की बात है। यह कटु सत्य है कि उसके बाद से पिछले ५४ वर्षों में वि० वै० रि० इ० से, जो विभाजन के बाद से होशियारपुर में स्थित है, महर्षि दयानन्द की मान्यताओं का पोषक एक भी ग्रन्थ नहीं निकला।

१९३६ में मैं डी० ए० वी० कालिज, लाहौर से एम० ए० कर रहा था। पिताजी महात्मा हंसराजजी से मिलने लाहौर पहुँचे। मैं भी साथ हो लिया। महात्माजी से यह हमारी अन्तिम भेंट थी—डी० ए० वी० कालिज के समीप एक छोटे से मकान के कमरे में जो एक सन्त की कुटिया का प्रतीक था, महात्माजी तख्त पर विराजमान थे। कमरे में रक्खी एकमात्र कुर्सी पर पिताजी बैठ गये। मैं नीचे दरी पर बैठ गया। महात्माजी और पिताजी पुराने साथी थे। उनके बीच होनेवाली बातचीत में भागीदार होने की स्थिति मेरी नहीं थी। मैं मात्र दर्शक और श्रोता था। बातचीत के बीच पं० भगवद्दत्तजी के साथ हुए अप्रत्याशित व्यवहार का उल्लेख करते हुए पिताजी ने महात्माजी से पूछा—'आपने ऐसा क्यों किया ?' महात्माजी ने भरे दिल से इतना ही कहा—'पण्डितजी ! अब मेरी कोई नहीं सुनता'। वस्तुतः महात्माजी ने यह निर्णय न चाहते हुए भी तथोक्त बड़े लोगों के दबाव के कारण दिया था, ठीक वैसे ही जैसे लालबहादुर शास्त्री ने ताशकन्द समझौते पर हस्ताक्षर किये थे। यह वास्तविकता है कि कालिज सेक्शन के नाम से प्रसिद्ध आर्यसमाज के संगठन में आर्यसमाजों की तुलना में डी० ए० वी० स्कूल-कालिज मुख्य रहे हैं और आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की तुलना में डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी अधिक प्रभावी रही है, और आज भी है। डी० ए० वी० कालिज, लाहौर पहले बना था, आर्य प्रादेशिक सभा बाद में। कालिज

मुख्य था, सभा गौण थी। डी० ए० वी० कालिज, होशियारपुर डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी, लाहौर के अधीन नहीं था। उसकी स्वतन्त्र सत्ता थी। उसके संविधान की अन्तिम धारा इस प्रकार थी—

"If there is no D. A. V. College Hoshiarpur, the property shall vest in the Arya Samaj College Section Hoshiarpur. If there is no Arya Samaj College Section Hoshiarpur, the property shall vest in the Arya Pradeshik Sabha Lahore. If there is no Arya Pradeshik Sabha Lahore, the property shall vest in the D. A. V. College Managing Committee Lahore."

इस प्रकार आर्य प्रादेशिक सभा=आर्यसमाज के अन्त की कल्पना तो की गई, किन्तु डी० ए० वी० कालिज, लाहौर को अमर माना गया। अब तो कुछ वर्षों से डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी का प्रधान ही आर्य प्रादेशिक सभा का प्रधान होता है।

सिखों का दुस्साहस—डी० ए० वी० कालिज, होशियारपुर में सिख छात्रों की संख्या १० से अधिक नहीं थी। स्थानीय सिंहसभा के सहयोग से उन्होंने कालिज में गुरु नानकदेव के जन्मदिन पर समारोह का आयोजन किया। उस अवसर पर गुरु नानकदेव के सम्बन्ध में होनेवाले भाषण, भजन, कविता आदि पर मुझे कोई आपत्ति नहीं थी। परन्तु एक जन्मजात आर्यसमाजी और आर्यसमाज के उपदेशक का पुत्र यह कैसे सहन कर सकता था कि आर्यसमाज की संस्था में ग्रन्थसाहब को प्रतिष्ठित कर वहाँ मत्था टेकने की इजाज़त दी जाए ? मैंने विरोध किया। विरोध सफल रहा। लाला देवीचन्दजी ने पिताजी से मेरी शिकायत की। पिताजी ने उत्तर दिया कि यदि अमृतसर के खालसा कालिज से एक विद्यार्थी को इसलिए निकाला जा सकता है कि उसने होस्टल में अपने कमरे में स्वामी दयानन्द का चित्र लगा रखा था तो यदि हमने आर्यसमाज की मान्यताओं के विरुद्ध अपने कालिज में मूर्त्तिपूजा की इजाज़त नहीं दी तो इसे अनुचित कैसे कहा

जा सकता है ? लालाजी चुप हो गये। आर्यसमाज के मामले में पिताजी का कथन प्रमाण माना जाता था।

अमरस्वामी सनातनधर्मी बने—होशियारपुर में सनातनधर्मियों में दो दल हो गये। उनमें से एक विधवाविवाह का पक्षपाती था। परम्परागत दल ने विधवाविवाह के समर्थकों को शास्त्रार्थ की चुनौती दे दी। सनातनधर्मी विद्वानों में विधवाविवाह के पक्ष में शास्त्रार्थ करनेवाला कहाँ से मिल सकता था ? उनके नेता पिताजी के पास आये कि वे इस शास्त्रार्थ के लिए किसी आर्यसमाजी विद्वान् का प्रवन्ध करें। पिताजी ने महात्मा हंसराजजी से सम्पर्क करके ठाकुर अमरसिंहजी (पश्चात् स्वर्गीय अमरस्वामीजी) को बुला लिया। मैं उन दिनों आर्यसमाज का उपमंत्री और आर्य युवक समाज का मंत्री था। ठाकुर अमरसिंहजी आ रहे थे। बहती गंगा में हाथ धोना किसे अच्छा नहीं लगता ? मैंने आर्यसमाज की ओर से मृतकश्राद्ध और अवतारवाद पर शास्त्रार्थ का चैलेंज सनातनधर्म सभा को दे दिया। सनातनधर्म सभा की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले पं० अखिलानन्द शर्मा और पं० कालूराम शास्त्री थे। दोनों सनातनधर्म के दिग्गज थे, परन्तु अखाड़े में उतरते ही धराशायी हो गये। विधवा विवाह पर हुए शास्त्रार्थ के सन्दर्भ में दो बातें बड़े मार्के की हुईं। शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में पं० अखिलानन्द ने कहा कि यह शास्त्रार्थ सनातनधर्मियों का सनातनधर्मियों से है। इसलिए पहले ठाकुर अमरसिंह यह घोषणा करें कि वह सनातनधर्मी हैं। ठाकुर अमरसिंहजी नें तत्काल खड़े होकर अपने सनातनधर्मी होने की घोषणा कर दी। सनातनधर्मियों ने तालियाँ बजा दीं। क्यों न बजाते ? उन्होंने सनातनधर्म के विरुद्ध शास्त्रार्थ करने आये आर्यसमाजी विद्वान् को सनातनधर्मी बना लिया था। शास्त्रार्थ की समाप्ति पर ठाकुर अमरसिंह जी बोले—"कुछ सौ वर्ष पहले बने पुराणों को माननेवाले अपने आपको सनातनधर्मी कैसे कह सकते हैं ? असली सनातनधर्मी तो आर्यसमाजी ही हैं जो दो

अरब वर्ष पुराने वैदिक धर्म को मानते हैं। सनातनधर्मी की यह व्याख्या सुनकर उपस्थित जनता स्तब्ध रह गई और तालियाँ वजाने वालों के मुँह लटक गये।

ठाकुर अमरसिंह ने विधवा विवाह की सिद्धि में एक मंत्र पढ़ा और फिर एक पुस्तक में से उसका अर्थ पढ़कर सुनाया। पं० अखिलानन्द बोले—इस मंत्र का यह अर्थ नहीं है। इस पर ठाकुरजी ने उस पुस्तक का मुखपृष्ठ (टाइटल) जनता को दिखाते हुए कहा कि 'वैधव्यविध्वंसन चम्पू' नामक इस पुस्तक के लेखक यही पं० अखिलानन्दजी हैं। आज अपने ही लिखे मंत्रार्थ को झुठला रहे हैं। पं० अखिलानन्द भौंचक्के रह गये, किन्तु वे भी अखाड़ेबाज थे। बोले—इस पुस्तक में मैंने जो कुछ लिखा है, वह तो पूर्वपक्ष है। ठाकुर-जी बोले—पूर्वपक्ष प्रस्तुत करने के साथ वहीं पर उत्तरपक्ष दिया जाता है। आज तक ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई जिसमें केवल पूर्वपक्ष ही दिया हो और तीस वर्ष बीत जाने पर अब तक भी उत्तरपक्ष न लिखा गया हो। अखिलानन्दजी बगलें झाँकने लगे।

तदन्तर दो दिन मृतकश्राद्ध और अवतारवाद पर शास्त्रार्थ हुआ। मृतकश्राद्ध पर हुए शास्त्रार्थ के प्रसंग में भी ठाकुर अमरसिंहजी ने एक प्रमाण प्रस्तुत किया तो शास्त्रार्थ कर रहे पं० कालूराम शास्त्री ने कहा कि यह कोई प्रमाण है? ठाकुरजी ने पुस्तक हाथ में लेकर जनता को दिखाते हुए कहा कि यह प्रमाण मैंनें आपके सहयोगी पं० अखिलानन्द द्वारा रचित 'दयानन्ददिग्विजय' नामक इस महा-काव्य में से प्रस्तुत किया है। पं० अखिलानन्द ने खड़े होकर कहा—'मुझे इस पुस्तक को लिखने के लिए आर्यसमाज ने पैसे दिये थे, इसलिए लिख दी। यह मेरा मत नहीं है।' ठाकुरजी ने तपाक से कहा—'लो देख लो, ये तो भाड़े के टट्टू हैं। आपने इस शास्त्रार्थ के लिए सौ रुपये दिये होंगे। अगर दीक्षितजी इन्हें सवा सौ रुपयें दे दें तो अभी आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ करने लगेंगे और तुम देखते रह

जाओगे।' वास्तव में पं० अखिलानन्दजी ने 'दयानन्ददिग्विजय' नामक अत्यन्त उत्कृष्ट काव्य की रचना उन दिनों की थी जब वे आर्यसमाजी थे। अखिलानन्दजी जन्मजात आर्यसमाजी थे। उनके पिता पं० टीकाराम स्वामी दयानन्द के समकालीन आस्थावान् व्यक्ति थे जिन्होंने नन्हें से अखिलानन्द को आर्यसमाज की सेवा करने के लिए स्वामीजी की गोद में डाल दिया था। कालान्तर में कुछ कारणवश आर्यसमाज का परित्याग कर वे सनातनधर्मी बन गये थे।

फ़्रण्टियर के आर्यवीर को फाँसी—पंजाब विश्वविद्यालय का दीक्षान्त समारोह होने जा रहा था। अंग्रेज़ गवर्नर को चांसलर के नाते उसकी अध्यक्षता करनी थी। डा० राधाकृष्णन को दीक्षान्त भाषण देना था। फ़्रण्टियर के हरिकृष्ण ने भी उस वर्ष बी० ए० पास किया था। प्रकट रूप में वह भी डिग्री लेने गया था, परन्तु वास्तव में वह गवर्नर की जान लेने पहुँचा था। हरिकृष्ण ने गवर्नर पर गोली चलाई, पर राधाकृष्णन को न लगने पाये—इस दुविधा में निशाना चूक गया। गवर्नर बच गया। हरिकृष्ण पकड़ा गया। क्रान्तिकारियों को दी जानेवाली भयंकर यातनाएँ झेलने के बाद एक दिन फाँसी चढ़ गया। सरकार ने उसके सम्पन्न परिवार को भिखारी बना दिया। लाला देवीचन्दजी ने हरिकृष्ण के दोनों छोटे भाइयों—किशोरीलाल और अनन्तराम—को होशियारपुर बुलाकर उनके रहन-सहन और पढ़ने-लिखने की पूरी व्यवस्था कर दी। एक दिन मैंने क्लास में बारी-बारी सब लड़कों से पूछा कि तुम बड़े होकर क्या बनना चाहते हो? अपनी बारी आने पर अनन्तराम ने कहा—मैं वकील बनूँगा। इसका कारण पूछे जाने पर उसने बताया कि बड़ा होने पर मैं किसी अंग्रेज़ को मारूँगा। गिरफ़्तार होने पर अपना मुक़दमा स्वयं लड़ सकूँ, इसलिए वकील बनना चाहता हूँ।

महात्मा हंसराजजी का हिन्दी-प्रेम—स्कूल में संस्कृत के साथ-साथ मैं धर्मशिक्षा भी पढ़ाता था। किसी भी विषय की पढ़ाई पाठ्य-पुस्तक

के बिना अच्छी तरह नहीं हो सकती। डी० ए० वी० कालिज प्रवन्ध-कर्त्री सभा की ओर से नियत धर्मशिक्षा की पुस्तकें हिन्दी में थीं। उन दिनों अंग्रेज़ी के बाद उर्दू ही व्यवहार की भाषा थी। इसलिए स्कूलों में अधिसंख्य लड़के उर्दू पढ़ते थे। मैंने धर्मशिक्षा की पढ़ाई में आने-वाली कठिनाई का उल्लेख करते हुए महात्मा हंसराजजी को लिखा कि धर्मशिक्षा की पुस्तकें उर्दू में भी होनी चाहिएँ। महात्माजी ने उत्तर में लिखा—धर्मशिक्षा की पुस्तकें उर्दू में छपने के वजाय हिन्दी न जाननेवाले विद्यार्थियों को अतिरिक्त समय में हिन्दी सिखाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। यह था विदेशी शासनकाल में महात्माजी का आदर्श! आज स्वतंत्र भारत में हम पहली क्लास में अंग्रेजी पढ़ाते हुए शिक्षा का माध्यम ही अंग्रेज़ी को बनाते जा रहे हैं। **'किमा-श्चर्यमतः परम्।'**

अपमान का बदला—भारतीय स्वराज्य पाने के योग्य हैं या नहीं, और हैं तो किस हद तक—इसका पता लगाकर रिपोर्ट देने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सर जान साइमन के नेतृत्व में एक कमीशन भेजा। साइमन कमीशन के नाम से प्रसिद्ध इस कमीशन का देश-भर में बायकाट किया गया। लाहौर में इस बायकाट आन्दोलन का नेतृत्व पंजाब केसरी लाला लाजपतराय कर रहे थे। लाहौर स्टेशन पर पहुँचे जुलूस पर पुलिस ने लाठियाँ बरसाईं। लालाजी की पीठ पर पड़ी लाठियाँ घातक सिद्ध हुईं और १७ नवम्बर, १९२८ को उनका निधन हो गया। लाला लाजपतराय पर पड़ी लाठियों को देश के आत्मसम्मान के लिए चुनौती माना गया। इस अपमान का बदला लेने के लिए पुलिस कमिश्नर स्काट की हत्या करने का निश्चय किया गया। स्काट के धोखे में सांडर्स मारा गया। सांडर्स को गोलियों का निशाना बनाने वाले थे—सरदार भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव। २३ मार्च सन्, १९३१ को उन्हें फाँसी दे दी गई। २५ मार्च से मैंने एक व्रत लिया—वह था खादी पहनने का। जीवन के इस छोर तक

यह नियम साथ दे रहा है।

चुनाव का तर्कशास्त्र—साइमन कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटेन के प्रधानमंत्री सर राम्से मैकडानण्ड ने १९३२ में साम्प्रदायिक निर्णय (कम्युनल अवार्ड) दिया। कांग्रेस किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई। यह निर्णय कांग्रेस की मूलनीति के विरुद्ध था, इसलिए वह इसे स्वीकार नहीं कर सकती थी। यदि स्वीकार करती तो उसे मुसलमानों और अछूतों (हरिजनों) के नाराज़ होने का भय था। इसलिए कांग्रेस ने 'न रद्द न कबूल' (Neither we accept, nor we reject) की नीति अपनाई। इससे असन्तुष्ट होकर महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय और लोकनायक माधव श्रीहरि अणे आदि कांग्रेस से अलग हो गये और कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी बनाई। तब मैं भी कांग्रेस को छोड़कर कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी में शामिल हो गया। १९३५ में गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया ऐक्ट पास हुआ। तदनुसार प्रान्तों (अब राज्यों) में लोकतन्त्र का मार्ग प्रशस्त हो गया। १९३७ में आम चुनाव हुए। होशियारपुर में कांग्रेस की ओर से स्वामी श्रद्धानन्दजी के साले रायज़ादा हंसराज खड़े हुए और कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी की ओर से कभी लाला लाजपतराय के साथी रहे लाला रामप्रसाद बी० ए० खड़े हुए। लाला रामप्रसादजी दृढ़ आर्यसमाजी और होशियारपुर के डी० एं० वी० हाई स्कूल के पहले हेडमास्टर थे। मुक़ाबला बहुत ज़ोरदार था। इस चुनाव के दौरान पहली बार सरदार वल्लभभाई पटेल, सुभाष चन्द्र बोस, भूलाभाई देसाई आदि के दर्शन हुए। चुनाव साम्प्रदायिक आधार पर था। रायज़ादा हंसराज पर आरोप था कि न तुम्हारे सिर पर टोपी है और न गले में जनेऊ। इस प्रकार जब तुम हिन्दू ही नहीं हो तो हिन्दुओं के वोट कैसे माँगते हो? रायज़ादा हंसराज ने अपने सिर पर से टोपी उतारकर कहा—'लो देख लो। जब मेरे सिर पर एक भी बाल नहीं है (वह पूरी तरह गंजे थे) तो बताओ चोटी कैसे रखूं? जनेऊ पहनने का अधिकार शूद्र को नहीं है। शूद्र वह कहाता है जो

सबकी सेवा करता है। जनता का सेवक होने के नाते मैं शूद्र हूँ, इसलिए मुझे जनेऊ पहनने का अधिकार नहीं है। नौ प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें वन गईं। जिन्हें आज मुख्यमंत्री कहते हैं, वे तव प्रधानमन्त्री कहाते थे। केन्द्र में पूरी तरह अंग्रेज़ी शासन था।

लाला ख़ुशहालचन्द आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान—१५ नवम्बर, १९३८ को पंजाव में 'शिक्षा का सूर्य अस्त हो गया' अर्थात् महात्मा हंसराजजी का निधन हो गया। उसके बाद हुए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब के वार्षिक अधिवेशन में मैं पहली बार प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुआ। अधिवेशन की अध्यक्षता लाला खुशहालचन्द खुर्संन्द (बाद में महात्मा आनन्द स्वामी) कर रहे थे। अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लाला खुशहालचन्दजी ने कहा—"अन्तिम समय में महात्मा हंसराजजी ने मुझे अपने पास बुलाया; और सबको कमरे से बाहर निकाल दिया। मुझसे बोले—खुशहालचन्द! अब सभा की बाग़डोर तुम्हारे हाथों में सौंप रहा हूँ। तुम इसे अच्छी तरह सँभाल लोगे।" मेरे दायें-बायें बैठे कुछ लोग (उपदेशक) यह कहते सुने गये—'जव कमरे में कोई नहीं रहा तो किसी को क्या पता कि महात्माजी ने क्या कहा था। अपनी मर्ज़ी से कुछ भी बनाकर कह दो।' लाला खुशहालचन्दजी सर्वसम्मति से प्रधान चुने गये और आगे भी अनेक वर्षों तक निर्विरोध चुने जाते रहे।

सर हरिसिंह गौड़ ने केन्द्रीय धारासभा (अब संसद्) में मन्दिर प्रवेश बिल पेश किया जिसके अनुसार कोई भी बिना रोक-टोक के किसी भी मन्दिर में जा सकता था। सनातनधर्मी जगत् में तो इससे भूचाल ही आ गया। होशियारपुर में अपने समय में सनातनधर्म के शिरोमणि विद्वान् महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी इस बिल के विरोध में भाषण देने पहुँचे थे। पिताजी का उनसे परिचय था। वे उनसे मिलने गये। एकान्त में उन्होंने चतुर्वेदीजी से पूछा—"पण्डितजी! आपने अपने व्याख्यान में जो बातें कही हैं, क्या आपकी बुद्धि उन्हें

स्वीकार करती है ?" चतुर्वेदीजी का उत्तर था—"अब छोड़िये इन बातों को। सारी आयु इनमें वीत गई।" प्रच्छन्न रूप से हृदय अपनी वात कह गया।

डी० ए० वी० कालिज, लाहौर की स्वर्ण जयन्ती—१ जून, १८८६ को डी० ए० वी० कालिज, लाहौर की स्थापना हुई थी। स्थापना के ५० वर्ष बीतने पर सन् १९३६ में उसकी स्वर्ण जयन्ती मनाई गई। मैं उस समय कालिज से इंगलिश में एम० ए० कर रहा था। बड़ा भव्य समारोह था। जुलूस की भी निराली शान थी। पंजाव-भर के स्कूल-कालिजों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। मुख्य समारोह में मंच पर एक कुर्सी पर त्यागमूर्ति महात्मा हंसराजजी विराजमान थे और दूसरी पर ऋषिकल्प महामना पं० मदनमोहन मालवीय, और दोनों के पीछे बीच में खड़े थे सेठ जुगलकिशोर बिड़ला। डी० ए० वी० कालिज की अर्धशताब्दी का यह भी एक दृश्य था। अब १९८६ में उसकी शताब्दी मनाई गई तो मालवीयजी की कुर्सी पर बैठे थे श्री भजनलाल, जो अपनी मिसाल आप ही हैं। मैंने देखा नहीं—देखने को जी नहीं चाहा। सोचता हूँ, ५० वर्ष में हम कहाँ से कहाँ पहुँच गये ! काश ! १९३६ भूल गया होता।

१८८६ में डी० ए० वी० कालिज, लाहौर की स्थापना एक ऐतिहासिक घटना थी—शिक्षा के क्षेत्र में एक अनूठा प्रयोग। वह राष्ट्रियता का प्रतीक था। समूचे देश में उसकी प्रतिष्ठा थी। इसलिए उसकी स्वर्णजयन्ती के अवसर पर अनेक विश्वविद्यालयों तथा बड़े-बड़े कालिजों के प्रतिनिधि अपनी शुभकामनाएँ देने लाहौर पहुँचे। लाहौर के फ़ार्मन क्रिश्चियन कालिज के तत्कालीन प्रिंसिपल ई० डी० ल्यूकस ने एक बड़ी मज़ेदार, किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात कही। अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में उन्होंने कहा—"आपके कालिज ने भौत अच्छा काम किया। पर एक बात हम कहता है—ये जो बड़ा-बड़ा लोक जिनपर आप फखर करता है—लाला लाजपतराय, ए महात्मा

हंसराज, स्वामी श्रद्धानन्द, गुरुदत्त विद्यार्थी वगैरा-वगैरा—ए सब हमारे कालिजों में बना है। आपने ऐसा एक नहीं बनाया।"

इस अवसर पर हुए भाषणों में एक महत्त्वपूर्ण भाषण था वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज का। मेरी तरह (श्री क्षितीश वेदालंकार के शब्दों में) 'तीन लोक से मथुरा न्यारी' की कहावत को चरितार्थ करनेवाले तथा खरी-खरी कहने के आदी स्वामी सर्वदानन्दजी ने कहा था कि गणित, इतिहास, भूगोल, फ़िज़िक्स, कैमिस्ट्री आदि तो जैसे गवर्नमेण्ट कालिज या इसलामिया कालिज में पढ़ाये जाते हैं, वैसे ही तुम पढ़ाते हो। तुमने यदि वेद नहीं पढ़ाये तो तुम्हारे कालिज चलाने का क्या लाभ ?

हैदराबाद सत्याग्रह

रियासत हैदराबाद के निज़ाम के निरंकुश शासन में हो रहे अन्याय और अत्याचारों से वहाँ की जनता को मुक्ति दिलाने के लिए आर्यसमाज ने सन् १९३९ में सत्याग्रह किया। मैंने डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी से सत्याग्रह में जाने के लिए छुट्टी माँगी। कमेटी ने छुट्टी देने से इन्कार कर दिया। तब मैं नौकरी से त्यागपत्र देकर सत्याग्रह के लिए चला गया। इसपर कमेटी ने सत्याग्रह की अवधि के लिए इस शर्त पर छुट्टी देना स्वीकार किया कि मेरे स्थान पर जो अध्यापक रखा जाएगा, मेरे वेतन से उसका वेतन जितना कम होगा उतने पैसे मेरे पिताजी को मिलते रहेंगे। मुझे उस समय ३८ रुपये वेतन मिलता था। नया आदमी २५ रुपये मासिक वेतन पर मिला। इस प्रकार १३ रुपये पिताजी को मिलते रहे। मुझे याद नहीं कि डी० ए० वी० स्कूलों के अध्यापकों में से कोई और इस सत्याग्रह में गया हो।

होशियारपुर से मैं अपने साथ ११ सत्याग्रही लेकर चला था।

हम अकेले ही चले थे जानिबे मंज़िल मगर।
हमसफ़र मिलते गये और कारवाँ बनता गया।।

जालन्धर, लुधियाना, अम्बाला, दिल्ली, आगरा, बम्बई और पूना जहाँ-जहाँ भी रुके और रात्रि को भाषण दिया, वहीं से २-४ सत्याग्रही साथ हो लिये। पूना पहुँचने तक मेरे जत्थे में ६५ सत्याग्रही हो गये थे। लुधियाना में रात्रि को ठहरने के वाद प्रातःकाल जब हम स्टेशन पर पहुँचे तो प्लेटफ़ार्म पर बड़ी संख्या में महिलाएँ उपस्थित थीं। सबके हाथों में राखियाँ थीं। वे सब समवेत स्वर में गीत गा रही थीं—'चली हैदराबाद नूं जित्तन ऋषिजी तेरी फ़ौज रंगली।' गीत गाती जाती थीं और हमारे हाथों में राखियाँ बाँधती जाती थीं—इस विश्वास के साथ कि हम उनकी राखियों की लाज रखने के लिए जीते बिना नहीं लौटेंगे। बड़ी भावपूर्ण विदाई थी। गाड़ी चलने का समय हो रहा था और डब्बे में सबके चढ़ने के वाद मैं डब्बे के दरवाज़े पर हैंडल पकड़े खड़ा हुआ भाषण दे रहा था। तब तक प्लेटफ़ार्म पर काफ़ी लोग जमा हो गये थे। पता नहीं कैसे गाड़ी भी सामान्य से अधिक देर ठहरी। अन्ततः गाड़ी रेंगने लगी और हम स्टेशन पर एकत्र लोगों के गगनभेदी नारों के बीच विदा हुए।

पूना का अनुभव—दिल्ली में देवतास्वरूप भाई परमानन्दजी, बम्बई में जगद्गुरु शंकराचार्य और पूना में अखिल भारत हिन्दू महा-सभा के प्रधान एल० बी० भोपटकर की अध्यक्षता में मेरे जत्थे को विदाई दी गई। सत्याग्रह में जानेवाले जत्थों का सार्वजनिक अभि-नन्दन तो समान रूप से किया जाता था, परन्तु पंजाब से जानेवाले जत्थों के नेताओं को बोलने के लिए केवल ५ मिनट का समय दिया जाता था। रात्रि को हुई सार्वजनिक सभा में मुझे भी ५ मिनट दिये गये थे। पाँच मिनट समाप्त होते ही मैंने बोलना बन्द कर दिया। सभापति भोपटकर बोले—आप बोलते जाइए, और मैं पूरा एक घण्टा बोला। बात यह थी कि पंजाब से जानेवाले लोग जिस भाषा

में बोलते थे, पूना की जनता उसे समझ नहीं पाती थी। इसलिए उन्हें ५ मिनट दिये जाते थे। दिन में मेरे साथ एक घटना घट चुकी थी। उस दिन का समाचार-पत्र खरीदने मैं बाज़ार गया था। समाचार-पत्र बेचनेवालों की कई दूकानों पर गया, किन्तु सबसे एक ही उत्तर मिला—'नहीं है।' मैंने समझा कि उस दिन का समाचार-पत्र अभी आया नहीं होगा या समाप्त हो गया होगा। चौथी जगह पहुँचा तो वहाँ भी वही उत्तर मिला। पर अचानक मेरी दृष्टि सामने रक्खे उस दिन के समाचार-पत्र पर पड़ गई। मैंने कहा—'वह है तो।' दुकानदार ने कहा—'तो आपको पत्र चाहिए।' मैं 'अखबार' माँगता था। अभ्यास जो ठहरा। दूकानदार समझता नहीं था। रहस्य मिल गया। रात्रि को मैंने अपना भाषण संस्कृतनिष्ठ हिन्दी में दिया। सबकी समझ में आ रहा था। इसलिए सभापति ने मुझे अपना भाषण चालू रखने के लिए कहा।

६५ सत्याग्रहियों के साथ मैं शोलापुर पहुँचा। पहुँचते ही सत्याग्रह संग्राम के संचालक स्वामी स्वतंत्रानन्दजी ने एक पत्र मेरे हाथ में थमा दिया। पत्र भेजनेवाले थे मेरे भावी श्वसुर आचार्य देवेन्द्रनाथ शास्त्री सांख्यतीर्थ। शास्त्रीजी अपने समय के मूर्धन्य विद्वान् और अनेक शास्त्रार्थ-संग्रामों के विजेता थे। सभी लोग उन्हें भली प्रकार जानते थे। इसी बल पर उन्होंने स्वामी स्वतंत्रानन्दजी को भेजे पत्र में लिखा था—"मेरी सुपुत्री से दीक्षितजी का विवाह २४ मई को होना निश्चित है और उसके लिए अपेक्षित सब तैयारी हो चुकी है। इसलिए आप उन्हें सत्याग्रह करने की अनुमति न दें और उन्हें वापस होशियारपुर भेज दें।" मैंने स्वामीजी से निवेदन किया कि आप सत्याग्रह के संचालक हैं, इसलिए जबतक आप अनुमति नहीं देंगे तबतक मैं सत्याग्रह नहीं करूँगा, किन्तु घर लौटने के आपके आदेश को मानने के लिए मैं बाध्य नहीं हूँ। स्वामीजी ने शास्त्रीजी को मेरे भावों से अवगत कराते हुए लिखा कि प्राचीन समय में युद्धकाल में

सैनिकों का विवाह उनकी पगड़ी से होने की परम्परा रही है। आर्य-समाज का यह युद्धकाल है। आप चाहें तो मैं उनकी पगड़ी या टोपी आपको भेज सकता हूँ। आप अपनी सुपुत्री का विवाह उसके साथ नियत तिथि पर कर सकते हैं। विवाह टल गया। कुछ समय बाद स्वयं शास्त्रीजी सत्याग्रह के डिक्टेटरों की भाँति देवेन्द्र स्पेशल से ४०० सत्याग्रहियों के साथ अजमेर से चल दिये। अजमेर के कर्मठ नेता लौहपुरुष पं० जियालालजी का इस स्पेशल की व्यवस्था करने में विशेष योगदान था।

तदनन्तर सत्याग्रह की समाप्ति पर २६ दिसम्बर को विवाह हुआ। विवाह के अवसर पर सर्वश्री पं० रामचन्द्र देहलवी, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० हरिदत्त शास्त्री सप्ततीर्थ, प्रो० व्यासदेव शास्त्री, पं० सुरेन्द्र शर्मा गौड़, पं० छुट्टनलाल स्वामी (पं० तुलसीराम स्वामी के अनुज), पं० बिहारीलाल शास्त्री, ठा० अमरसिंह आदि अनेक विद्वान् उपस्थित थे। ऐसा लगता था कि विवाह के साथ एक विद्वत् सम्मेलन भी होने जा रहा है।

स्वामी आत्मानन्दजी—उन्हीं दिनों स्वामी आत्मानन्दजी (उस समय आचार्य मुक्तिराम उपाध्याय) भी अपने जत्थे के साथ शोलापुर पहुँच गये। स्वामी स्वतंत्रानन्दजी ने उन्हें भी सत्याग्रह करने से रोक दिया। शोलापुर में रहकर हम स्वामीजी के निर्देशानुसार कार्य करते रहे। सत्याग्रह समिति द्वारा प्रकाशित दैनिक 'दिग्विजय' का सम्पादन कर रहे थे सम्पादकाचार्य पं० हरिशंकर शर्मा। इस कार्य में मैं उनका सहयोगी रहा। उन्हीं दिनों श्री मेहरचन्द महाजन अपने कुछ साथियों के साथ सत्याग्रह की समाप्ति पर वहाँ डी० ए० वी० कालिज खोलने की सम्भावनाओं पर विचार करने के लिए शोलापुर पहुँचे। हम लोगों को यह अच्छा नहीं लगा कि जिस समय आर्यसमाज अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा हो, उसकी प्रतिष्ठा दाव पर लगी हो और उसकी रक्षार्थ अनेक लोग अपने प्राणों की आहुति दे रहे हों,

उस समय कुछ लोग सत्याग्रह की सफलता को अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए भुनाने की सोच रहे हों, परन्तु जैसा कि मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ, इन लोगों के लिए स्कूल-कालिज मुख्य हैं, आर्यसमाज गौण।

कभी-कभी हमें किसी मामले की जाँच के लिए भी भेजा जाता था। इसी प्रसंग में एक बार मुझे और स्वामी आत्मानन्दजी को हैदराबाद भेजा गया। निज़ाम सरकार की ओर से इस प्रकार का प्रवन्ध किया गया था कि हैदरावाद की राजधानी हैदराबाद शहर में सत्याग्रह न होने पाये। इसलिए हैदराबाद स्टेशन से बाहर निकलते ही पुलिस ने हमें आगे बढ़ने से रोकना चाहा। हमने कहा कि हम यहाँ सत्याग्रह करने नहीं आये हैं, केवल कुछ पूछताछ करने आये हैं। आर्यसमाज सुलतान बाजार तक जाकर लौट आएँगे। पुलिस ने हमें जाने की अनुमति दे दी। कुछ दूर जाने पर मैंने स्वामीजी से कहा कि हम शहर में आ तो गये ही हैं, क्यों न हम निज़ाम सरकार के इस गर्व को तोड़ दें कि राजधानी में सत्याग्रह नहीं हो सका। स्वामीजी वोले—यह वचन भंग करना होगा, विश्वासघात होगा। मेरा लड़कपन था जिसमें कुछ कर गुज़रने की तमन्ना होती है। इसलिए मैंने कहा–आचार्यजी, यह तो युद्ध है। युद्ध में सब उचित होता है। स्वामीजी ने निर्णय के स्वर में कहा–हमारा सत्याग्रह है, युद्ध नहीं। मिथ्याचरण से तो वह असत्याग्रह हो जाएगा। मेंरे कहने को अब क्या रह गया था? ऐसा विलक्षण व्यक्तित्व था स्वामी आत्मानन्दजी महाराज का! कहाँ मिलेंगे अब ऐसे लोग! अब झूठ बोलना मजबूरी नहीं, आवश्यक समझा जाता है; आपद्धर्म नहीं, नेताओ का धर्म माना जाता है।

आर्य महासम्मेलन—सत्याग्रह आरम्भ होने से पहले शोलापुर में एक विशाल सम्मेलन लोकनायक बापूजी अणे (माधव श्रीहरि अणे) की अध्यक्षता में हुआ था। सत्याग्रह के दिनों में मुहम्मदअली जिन्ना ने वैसा ही सम्मेलन मुसलिम लीग की ओर से करना चाहा। उन

दिनों श्री कन्हैयालाल मुंशी, बम्बई (वर्त्तमान महाराष्ट्र) के गृहमन्त्री थे। उन्होंने शोलापुर में धारा १४४ लगाकर मिस्टर जिन्ना के प्रयास को विफल कर दिया।

हिंसा बनाम अहिंसा—पंजाब में ख़ाकसारों की तरह हैदराबाद में रज़ाकार के नाम से क़ासिम रिज़वी की बनाई मुसलमानों की एक प्राइवेट पुलिस थी। जब हमारे सत्याग्रही जत्थे सत्याग्रह के लिए जाते तो रज़ाकार उनपर लाठियाँ बरसाते। एक दिन कार्यालय में इस पर विचार करने के लिए बैठक हुई। हैदराबाद की निज़ाम सरकार के विरुद्ध हमारा सत्याग्रह अहिंसात्मक था, किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि हमें जो चाहे पीट दे। काफ़ी रात गये तक विचार होता रहा। अन्त में यह निश्चय हुआ कि प्रत्येक सत्याग्रही के हाथ में झण्डा होगा। सरकारी पुलिस लाठियाँ बरसाएगी तो सत्याग्रही चुपचाप मार खाएँगे, परन्तु यदि रज़ाकार आक्रमण करेंगे तो झण्डा जेब में डाल डण्डा हाथ में लेकर उनका मुकाबला करेंगे। इस निश्चय के बाद रोहतक से पहुँचनेवाले एक जत्थे को यही निर्देश देकर सत्याग्रह के लिए भेजा गया। पहले की तरह रज़ाकार शिकार करने आये, किन्तु इस बार स्वयं शिकार हो गये। वह दिन था कि इसकी पुनरावृत्ति नहीं हुई।

लोकैषणा से दूर—पंजाब हाईकोर्ट के भूतपूर्व चीफ़ जस्टिस श्री जी० डी० खोसला के पिता श्री मुरारीलालजी अमृतसर के रिटायर्ड डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन जज थे। सत्याग्रह के चौथे सर्वाधिकारी राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री ने २२ अप्रैल को ५३१ सत्याग्रहियों के साथ स्पेशल ट्रेन से गुलबर्गा के लिए कूच किया। हम लोग उन्हें विदा करने के लिए स्टेशन पर गये। मैंने देखा कि रेल के एक डब्बे के दरवाज़े पर एक हाथ से हेण्डल पकड़े ला० मुरारीलाल खड़े थे। मैंने पूछा—लालाजी, आप कहाँ चले? बोले—गुलबर्गा तक जा रहा हूँ, सत्याग्रह का खेल देखने। मैंने कहा—कब तक लौटेंगे? वह बोले—कह नहीं सकता।

मेरे कान खड़े हुए। गाड़ी चल दी। मुरारीलालजी साधारण सत्याग्रहियों की तरह गिरफ़्तार होकर गुलबर्गा जेल में पहुँच गये। वहाँ भी किसी को अपना परिचय नहीं दिया। रहस्य खुलने पर उन्हें महात्मा नारायण स्वामीजी और ला० खुशहालचन्दजी के पास विशेष बंगले में भेज दिया गया। ऐसे थे ला० मुरारीलालजी—लोकैषणा से बहुत दूर। न फ़ोटो खिंचवाई, न माला पहनी।

शोलापुर से जब कोई जत्था सत्याग्रह के लिए जाता था तो सबको एक पंक्ति में खड़ा करके फ़ोटो लिया जाता था। एक दिन १०-१२ वर्ष का एक बालक सबके बीच जा खड़ा हुआ। लाहौर से आये डाक्टर गिरधारीलालजी ने देखा तो बोले—अरे, ज़रा-सा बच्चा इनमें कैसे खड़ा हो गया? डाक्टर साहब के लम्बी सफ़ेद दाढ़ी थी। बच्चा उनकी दाढ़ी में हाथ डालकर बोला—हकीकतराय आपकी तरह दाढ़ीवाला था या मेरी तरह बालक? हम उसे देखते रह गए। इसी तरह एक बालक चिनियोट (पंजाब) से आया था। उसके साथ आनेवालों ने बताया कि जब विदाई के समय हमें हार पहनाये जा रहे थे तो इस लड़के ने हार पहनने से इन्कार कर दिया। बोला—अभी तो मैं परीक्षा देने जा रहा हूँ। जब पास होकर लौटूँ तो हार पहनाना। आज भी जब उन बच्चों की याद आती है तो मैं भावुक हो उठता हूँ और मेरी आँखें गीली हो जाती हैं।

५ मई को सत्याग्रह के पाँचवें सर्वाधिकारी स्वामी अभेदानन्दजी (उस समय पं० वेदव्रत वानप्रस्थ) को ५०० सत्याग्रहियों के साथ सत्याग्रह के लिए जाना था। स्वामीजी चाय के बड़े शौकीन थे। शोलापुर से चलने से पहले मुझसे बोले—आज चाय से विदा लेनी है। पूरा कमण्डलु भरकर पियूँगा। मैंने एक कमण्डलु-भर चाय मँगाई और स्वामीजी ने बड़े चाव से पी। सत्याग्रह करके जेल में पहुँच गये। काफ़ी दिन बीत गये। पर चाय का नाम तक नहीं लिया। कालान्तर में उनका स्थानान्तरण हैदराबाद (चंचलगुडा) जेल में हो

गया। वहाँ कुंवर सुखलाल और प्रिंसिपल ज्ञानचन्द आदि मिले। वे लोग चाय पीते थे और स्वामीजी के शौक को भी जानते थे। 'जब आँखें चार होती हैं, मुहब्बत आ ही जाती है।' चाय को देखा तो पुराना प्रेम उमड़ आया।

जेल में—उसमानाबाद ज़िले की एक तहसील है क़लम। स्वामी आत्मानन्दजी वहाँ भाषण देने गये। तहसीलदार ने भाषण नहीं करने दिया। 'हम यहीं सत्याग्रह करके दिखाएँगे' यह चुनौती देकर स्वामीजी वापिस आ गये। अब हम दोनों ने स्वामी स्वतंत्रानन्दजी से सत्याग्रह करने की अनुमति माँगी। हमारे दोनों के जत्थे तो बहुत पहले जेल जा चुके थे। हम बाहर मौज कर रहे थे, जबकि हमारे साथी जेलों में पड़े थे। यह बात भी हमें मन-ही-मन कचोटती रहती थी। स्वामीजी से अनुमति लेकर हम क़लम की ओर चल पड़े। कुछ दूर तक हमने बस से यात्रा की, फिर बैलगाड़ी से और अन्त में पैदल। रास्ते से परिचित एक व्यक्ति हमारे साथ था। सड़कों पर पहरा था, इसलिए हम सड़कों से हटकर खेतों में से निकलते थे। सत्याग्रह से सम्बन्धित पुस्तकों में लिखा मिलता है कि हमने 'तैरकर' नदी पार की, जबकि मुझे तैरना आज भी नहीं आता। नदी रास्ते में आई अवश्य और हमने उसे पार भी किया। नदी पार की तो यह कल्पना कर ली गई कि तैरकर ही पार की होगी। पर नदी तो उन दिनों सूखी पड़ी थी। इसलिए बिना तैरे पार हो गई। प्रातः ६ बजे से कुछ पहले ही हमने क़लम में प्रवेश किया। जिस ओर से हमने प्रवेश किया उधर सबसे पहले थाना पड़ता था। पुलिस ने हमें देखकर पीछा किया। हमने तेज़ी से क़दम बढ़ाया और दौड़ते-दौड़ते ऐसी जगह पहुँच गये जहाँ कुछ लोग इकट्ठे दीख पड़े। लाठियाँ हमारे हाथों में थीं और झण्डे जेबों में। जेबों से झण्डे निकाले और लाठियों में लगा कर 'जो बोले सो अभय—वैदिक धर्म की जय' बोलकर सत्याग्रह कर दिया। इतने में पुलिस आ पहुँची और हमें गिरफ्तार कर लिया गया।

गिरफ्तारी से क्या होता है, बात तो पूरी हो गई। हमें मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। उसने अपनी गाड़ी मँगाई और उसमें बिठाकर हमें रियासत की सीमा से बाहर छोड़ आने का आदेश दिया। हम भला क्यों मानने लगे थे। हमें ६-६ मास की सज़ा सुना दी गई, परन्तु अपनी बात रखने के लिए सत्याग्रहियों पर लगनेवाली धारा १०७ न लगाकर १०९ लगाई। 'टाइम्स आफ इण्डिया' बम्बई में प्रकाशित समाचार में हमारी गिरफ़्तारी का कारण जेब काटना लिखा गया। बाद में कभी गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के कुलपति मूर्धन्य वैदिक विद्वान् आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ (रावजी के नाम से प्रसिद्ध) से भेंट हुई। रावजी बड़े विनोदप्रिय व्यक्ति थे। मिलते ही बोले—'अरे कौन कहता है कि तुम सत्याग्रह में गये थे। तुम तो आचार्य मुक्तिरामजी के साथ लोगों की जेबें काटते पकड़े गये थे।' दो दिन हमें क़लम में रक्खा गया। वहाँ हम स्वयंपाकी बन कर रहे। खाने का सामान मिल गया। मैं सब्जी बनाता और स्वामी आत्मानन्द जी परांठे सेकते। दो दिन बाद हमें उसमानाबाद जेल में भेज दिया गया। वहाँ पहली बार श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती, आचार्य भगवानदेवजी आदि से भेंट हुई। दो दिन तक हमें जेल से बाहर एक कोठरी में रक्खा गया। उसमानाबाद के कलक्टर चलते-चलते जेल के अधिकारियों से कह गये—'इनका ख्याल रखना।' यह वाक्य द्व्यर्थक था। कलक्टर साहब का आशय (जैसा बाद में पता चला) था—'इन्हें आदरपूर्वक रखना।' जेलवालों ने समझा—'इनसे सावधान रहना।' फलतः हम पर कड़ी निगाह रक्खी गई जिससे हमें कुछ असुविधा हुई। १५ दिन तक उसमानाबाद में रखने के बाद मुझे गुलबर्गा जेल में भेज दिया गया जहाँ मैं अन्त तक रहा।

जेल में सन्ध्या, हवन, प्रवचन आदि का कार्यक्रम प्रत्येक वार्ड में नियमित रूप से चलता था। हमारे वार्डों में प्रवचन प्रायः मेरे और ठाकुर अमरसिंहजी के होते थे। प्रकाशवीर शास्त्री (जो बाद में

अत्यन्त प्रभावशाली वक्ता के रूप में उभरे) उस समय भजन बोलने-बुलवाने का काम करते थे। एक दिन जेल में लाठीचार्ज हुआ। मूलतः दोष सत्याग्रही का था। गुलबर्गा के कलक्टर जाँच के लिए आये। जेल में आने से पूर्व एक इन्क्वायरी के सिलसिले में मेरी उनसे भेंट हो चुकी थी। उन्हें विश्वास था कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा। वास्तविकता जानने के लिए उन्होंने मुझे बुलवाया। जेल के अन्य अधिकारी भी उपस्थित थे। मैंने तथ्यों को बिना तोड़े-मरोड़े ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दिया। कलक्टर साहब बोले—आप यही सब-कुछ लिखकर दे दें। मैंने कहा—लिखने का अधिकार केवल तीन व्यक्तियों को ही है—श्री घनश्यामसिंह गुप्त, महात्मा नारायण स्वामी और स्वामी स्वतंत्रानन्द। मैं लिखकर कुछ नहीं दूँगा। बात वहीं समाप्त हो गई।

श्री क्षितीश वेदालंकार पहले जत्थे में गये थे। उनकी ६ मास की सज़ा की अवधि समाप्त होने पर उन्हें छोड़ दिया गया। उन दिनों ८ अगस्त को सत्याग्रह के समाप्त होने की चर्चा चल रही थी। जब क्षितीशजी जाने लगे तो मैंने उनसे बाहर जाने के बाद हमें वस्तुस्थिति से अवगत करने के लिए कहा। क्षितीशजी ने सांकेतिक भाषा में मुझे लिखा—'Eighth Augustus Ceaser' नामक पुस्तक भेजने के लिए आपने कहा था। सो वह यहाँ कहीं नहीं मिली। नागपुर में बड़े स्टाकिस्ट हैं। वहाँ जाकर देखूँगा। मिल गई तो भेज दूँगा। इसका अर्थ इस प्रकार था—८ अगस्त के बारे में शोलापुर में कुछ पता नहीं चला। नागपुर में, जहाँ घनश्यामसिंह गुप्त और स्वामी स्वतंत्रानन्दजी हैं, जाकर पता लगाऊँगा और आपको सूचित करूँगा।

१७ अगस्त को निज़ाम का जन्मदिन था। अपनी नाक रखने के लिए उस दिन सत्याग्रहियों को छोड़ा गया, जिससे यह कहा जा सके कि निज़ाम ने अपने जन्मदिन की खुशी में कैदियों को छोड़ा है, परन्तु वास्तविकता को सभी जानते थे। दिल्ली वापस आने पर दीवान हाल के सामने मैदान में (जहाँ अब लाजपतराय मार्केट है)

सत्याग्रहियों के स्वागत का आयोजन किया गया। उस अवसर पर पं० श्री रामचन्द्रजी देहलवी तथा प्रो० व्यासदेवजी की ओर से एक हैंडबिल बाँटा गया—'हमें क्या मिला ?' इसके उत्तर में श्री घनश्याम सिंहजी ने इतना ही कहा—लिखनेवाले तर्कशास्त्र के पण्डित हैं, किन्तु युद्धशास्त्र से अनभिज्ञ हैं।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, स्कूल से छुट्टी न मिलने के कारण मैं नौकरी से त्यागपत्र देकर सत्याग्रह के लिए चला गया था। त्यागपत्र स्वीकार करने का साहस कालिज कमेटी को नहीं हुआ। उसे छुट्टी देनी पड़ी जो लगभग अवैतनिक थी। तथापि अधिकारियों के मन में कसक बनी रही और सत्याग्रह से लौटने के कुछ समय वाद वहाना बनाकर मुझे नौकरी से निकाल दिया गया। □

खण्ड २—दिल्ली में

कुछ समय बाद मुझे भारत सरकार द्वारा स्थापित दिल्ली कालिज आफ़ इंजीनियरिंग में सर्विस मिल गई। १९४१ में एक दिन तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलिथगो संस्था को देखने आए। मैं १९३१ से खादी पहनता आ रहा था। प्रिंसिपल थे मिस्टर विलियम वाल्टर वुड और वाइस-प्रिंसिपल मिस्टर एस० सी० सेन। वायसराय के आने से एक दिन पहले मिस्टर सेन ने मुझे बुलाकर कहा कि कल आप खादी का कुरता-धोती पहनकर न आएँ। मैं नहीं माना। अगले दिन वायसराय महोदय आये। उनके आने का समय ९ बजे निश्चित था। मैंने देखा कि ८ बजकर ६० मिनट पर अर्थात् ठीक ९ बजे वायसराय की गाड़ी कालिज गेट के भीतर थी। ९-३० पर उन्हें लौटना था। मैंने फिर देखा कि ९ बजकर ३० मिनट पर उनकी गाड़ी स्टार्ट हो रही थी। इसके कुछ ही दिन बाद दूसरा दृश्य देखा। कालिज के एक समारोह में वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य सर नलिनीरंजन सरकार को आना था। ५ बजे उनके आने का समय था। किन्तु वे ६ बजे के कुछ बाद ही पधारे। 'स्वस्तिपन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव' (हम सूर्य और चन्द्रमा की तरह गति करें) का पाठ भारत में होता है, किन्तु उसपर आचरण यूरोप में होता है।

१९३५ के गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया एक्ट के अनुसार प्रान्तों में तो भारतीयों की सरकारें बन गई थीं, केन्द्र में भी कुछ सीमित अधिकार दे दिये थे। तदनुसार वायसराय की कार्यकारिणी (Executive Council)

के दो सदस्य बापूजी अणे और सर फ़ीरोजखाँ नून भी वायसराय के साथ आये थे। वे सब लायब्रेरी देखने गये। लायब्रेरी में हिन्दी की बहुत थोड़ी पुस्तकें थीं जबकि हिन्दी की तुलना में उर्दू की बहुत अधिक। वायसराय ने इसका कारण पूछा। प्रश्न मुझसे किया गया था। उत्तर नून साहब ने दिया—इसका कारण यह है कि यहाँ अधिसंख्य लोग उर्दूभाषी हैं। मुझसे न रहा गया। मैंने प्रतिवाद करते हुए कहा कि इसका असली कारण उर्दू के पक्षपाती लोगों के हाथों में सत्ता होना है। यह बात करते-करते हम वाचनालय (Reading Room) में जा पहुँचे। सौभाग्य से उस समय जितने लोग वहाँ थे, उनमें से अधिकतर के सामने हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ खुली थीं। मेरी बात बन गई। लार्ड लिनलिथगो लगभग सात फ़ीट लम्बे थे। बड़ी मुश्किल से झुककर एक लड़के के हाथ में पकड़ी पत्रिका पढ़ने लगे। वह हिन्दी जानते थे।

सन् १९४२ में गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' की ललकार दी। देश-भर में उथल-पुथल मची हुई थी। एक रात किसी ने कालिज के एक भाग में आग लगा दी। उन्हीं दिनों मेरे विरुद्ध होशियारपुर से पुलिस की रिपोर्ट आ गई। प्रिंसीपल वुड ने मुझे बुलाकर कहा—'Mr. Dikshit, I doubt your political views'. अर्थात् मुझे आपकी राजनीतिक विचारधारा के सम्बन्ध में शंका है। पुलिस की रिपोर्ट के बारे में जानकारी मुझे पहले ही मिल चुकी थी। मैंने उत्तर दिया कि पुलिस की रिपोर्ट ठीक है। मैं देश को स्वतन्त्र देखना चाहता हूँ। फिर मैंने पूछा—'May I know your intention ?' अर्थात् आपका इरादा क्या है। प्रिंसिपल वुड कुर्सी से उछल पड़े और तेज़ स्वर में बोले—'My intention is clear. I can't keep such a dangerous man on my staff.' अर्थात् मैं आप जैसे ख़तरनाक आदमी को अपने स्टाफ में नहीं रख सकता, और इस प्रकार नौकरी से त्याग-पत्र देकर मैं घर आ गया। बाद में मुझे बताया गया कि एक दिन बातों-बातों में वुड साहब ने मेरे विषय में कहा था—'I liked that spirited man.'

मुलतान में—घर पहुँचते ही मुझे पंजाब यूनीवर्सिटी से आया एक पत्र मिला। मेरी नियुक्ति गवर्नमेंट कालिज, मुलतान में हो गई थी। मुझे ८ अक्तूबर को मुलतान पहुँचने का आदेश था। नई जगह थी। एक-दो दिन पहले ही पहुचना ठीक समझकर मैं ६ अक्तूबर को मुलतान पहुँच गया। अगले दिन दीवाली थी। मुलतान में उस समय आठ आर्यसमाजें थीं। आठों समाजों की ओर से संयुक्त रूप में ऋषि निर्वाणोत्सव आर्यसमाज वोहड़ गेट (जहाँ जाकर मैं ठहरा था) में मनाया जा रहा था। वहाँ के उपमंत्री गुलबर्गा जेल में मेरे साथ रहे थे। इसलिए वह मुझे अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने वक्ताओं में मेरा नाम भी लिख दिया। उन दिनों आर्यसमाज का कोई भी उत्सव ऐसा नहीं होता था जिसमें वक्ता पाकिस्तान की माँग के विरोध में न बोलते हों। मैंने भी वही किया। लोगों को मेरा व्याख्यान अच्छा लगा। धन्यवाद करते समय मन्त्रीजी ने कहा कि अब आपको अनेक बार दीक्षितजी के व्याख्यान सुनने को मिलेंगे, क्योंकि उनकी नियुक्ति स्थानीय गवर्नमेंट कालिज में हो गई है। सभा विसर्जित हुई।

पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के सुपुत्र से भेंट—सब लोग अपने-अपने घर चले गये, परन्तु एक भले से सज्जन एक कोने मैं बैठे रह गये। मैं अभी कुछ सोच ही रहा था कि मेरे परिचित उपमंत्रीजी ने आकर कहा—वह जो एक सज्जन कोने में बैठे हैं, मुनिवर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के सुपुत्र लाला सदानन्दजी हैं। आपको बुला रहे हैं। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के सुपुत्र! मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। 'आत्मा वै जायते पुत्रः'—मैंने पण्डितजी को नहीं देखा था। ऐसा लगा जैसे उनके रूप में मैं उनकी आत्मा के दर्शन कर रहा हूँ। उस समय के अपने मनोभावों को मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। मैं उनके पास गया और विनयावनत होकर बैठ गया। उस समय उनकी अवस्था ५४ वर्ष के आसपास रही होगी। मुझे समझाते हुए वह

बोले—'यदि ऐसे व्याख्यान देने हैं तो यहाँ तुम्हारा गुज़ारा नही होगा। यहाँ का गवर्नमेंट कालिज तो मुसलिम लीग का अड्डा है और प्रिंसिपल इब्राहीम जिन्ना का खास आदमी है। यहाँ रहना है तो तुम्हें अपने विचार छोड़ने होंगे।' लाला सदानन्दजी कालिज में कैमिस्ट्री के प्रोफ़ेसर और वाइस प्रिंसिपल थे। रिटायर होने के दिन आ रहे थे। परन्तु आर्यसमाजी होने के कारण प्रिंसिपल नहीं बन सके थे। मैंने कहा कि मैं यहाँ की नौकरी छोड़ सकता हूँ, किन्तु अपने विचारों को नहीं। परमेश्वर मेरी सहायता कर रहा था। सर्विस छोड़ने की सोच ही रहा था कि दिल्ली से नियुक्ति-पत्र पहुँच गया। सेठ रामकृष्ण डालमिया ने भारत बैंक के नाम से एक नया—उस समय सबसे बड़ा—बैंक खोला था। बैंक के मैनेजिंग डायरेक्टर बिजनौर के श्री राजेन्द्र कुमार जैन थे। मेरे बहनोई उनके घनिष्ठ मित्र थे। यह जानकर कि मैं घर से इतनी दूर जा पड़ा हूँ, उन्होंने बिना माँगे नियुक्ति-पत्र भेज दिया। एक महीना बीतते-बीतते मैं दिल्ली वापस आ गया।

सार्वदेशिक सभा में—१९४३ में मैंने आर्यसमाज दरियागंज की स्थापना की। पंजाब की तरह दिल्ली में भी गुरुकुल सेक्शन-कालिज सेक्शन का झगड़ा था। इसलिए मैंने दोनों को छोड़कर आर्यसमाज दरियागंज का सम्बन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त (वर्त्तमान उत्तर प्रदेश) से किया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नियमानुसार जिस प्रान्त की अपनी कोई प्रतिनिधि सभा न हो वहाँ की आर्यसमाज का सम्बन्ध किसी भी प्रतिनिधि सभा से किया जा सकता था। दिल्ली की अपनी सभा नहीं थी। इसलिए आर्यसमाज दरियागंज का यू॰ पी॰ की सभा से सम्बन्ध होने में कोई वैधानिक बाधा नहीं थी, परन्तु क्योंकि दिल्ली की एक समाज को छोड़कर सभी आर्यसमाजों का सम्बन्ध पंजाब सभा से होता आया था, इसलिए दरियागंज समाज के यू॰ पी॰ सभा से सम्बन्ध होने को पंजाब सभा भी अपने

अधिकारक्षेत्र में हस्तक्षेप समझा। क्रमशः यह विवाद दोनों सभाओं और उनके प्रधानों—महाशय कृष्ण तथा राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री के बीच प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। अन्ततः मामला सार्वदेशिक सभा में पहुँचा। सार्वदेशिक सभा के निर्णयानुसार आर्यसमाज दरियागंज का यू० पी० सभा से सम्बन्ध विच्छेद होकर सीधा सार्वदेशिक सभा से हो गया। इस प्रकार सार्वदेशिक सभा में मेरा प्रवेश हुआ।

आर्य केन्द्रीय सभा की स्थापना—आजकल प्रायः सभी बड़े-बड़े शहरों में जहाँ कई-कई आर्यसमाजें हैं, आर्य केन्द्रीय सभाएँ बनी हुई हैं। बड़े-बड़े उत्सव सब समाजों की ओर से सम्मिलित रूप में वहाँ की आर्य केन्द्रीय सभाओं के तत्त्वावधान में मनाये जाते हैं। इन सभी आर्य केन्द्रीय सभाओं की जननी आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली है, जिसकी स्थापना मैंने सन् १९४४ में की।

मेरी लेटते ही सोने की आदत कभी नहीं रही। सोने से पहले एक दिन (रात) विचार आया—दिल्ली में २४ आर्यसमाजें हैं। सब अपने-अपने क्षेत्र में अपने-अपने सामर्थ्यानुसार सत्संग, कथाएँ वार्षिकोत्सव आदि करती रहती हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि सब आर्यसमाजों के पदाधिकारी व सक्रिय सदस्य समय-समय पर मिल-बैठा करें और परस्पर विचार-विमर्श के द्वारा आर्यसमाज के काम को अधिक व्यापक और प्रभावशाली बनाने, नई-नई योजनाएँ बनाकर समाज को अधिक उपयोगी बनाने तथा आवश्यकतानुसार एक-दूसरे की सहायता करने में प्रवृत्त हों। इस प्रकार मैंने इस सभा के उद्देश्य इस प्रकार निश्चित किये—

१. प्रतिमास समस्त आर्यसमाजों के पदाधिकारियों तथा अन्तरंग सभासदों की बैठक का आयोजन करना।

२. विभिन्न वर्गों तथा क्षेत्रों में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ प्रोत्साहित करना और इस निमित्त उन्हें परामर्श व सहयोग देते हुए उनका मार्गदर्शन करना तथा आवश्यकतानुसार उपदेशकों का प्रबन्ध करना।

३. समस्त आर्यसमाजों के पुरुषार्थ को संयुक्त करना।

४. आर्यसमाज की सामूहिक शक्ति के प्रदर्शनार्थ कतिपय समारोहों को सम्मिलित रूप में समारोहपूर्वक मनाना।

५. आर्यसमाजों पर आनेवाली विपत्तियों का निराकरण करना।

तव तक पंजाव की दोनों सभाओं के मुख्यालय दिल्ली से लगभग ५०० किलोमीटर दूर लाहौर में थे।

प्रस्तावित आर्य केन्द्रीय सभा के उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए मैंने एक परिपत्र दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों को भेजा। कुछ को यह योजना तत्काल पसन्द आई, परन्तु कई लोगों के मन में तरह-तरह की शंकाएँ उठीं। कुछ लोगों को इसकी आड़ में दिल्ली की अपनी प्रतिनिधि सभा वनाने की योजना का आभास हुआ। मैंने परिपत्र भेजकर इन शंकाओं का निवारण करने का प्रयास किया। स्पष्ट शब्दों में इस वात का आश्वासन दिया कि आर्यसमाज के संगठन के अन्तर्गत किसी भी स्तर पर इस सभा की कोई वैधानिक स्थिति नहीं होगी। यह संगठन केवल परस्पर मिल-जुलकर काम करने के लिए वनाया जा रहा है। वैधानिक दृष्टि से आर्यसमाजों के संगठन, संचालन, अनुशासन, सम्पत्ति आदि पर प्रान्तीय सभाओं का अधिकार पूर्ववत् वना रहेगा। इसके वाद २४ में से १३ आर्यसमाजों ने आर्य केन्द्रीय सभा में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया। तब सभी समाजों की एक और बैठक आर्यसमाज नयाबाँस में वुलाई गई। इस बैठक में दिल्ली में आर्यसमाज के प्रमुख नेता ला० नारायणदत्त ठेकेदार, ला० देशवन्धु गुप्त, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, डा० युद्धवीर-सिंह आदि एक साथ आ पहुँचे। तवतक मुझे दिल्ली आये बहुत दिन नहीं हुए थे। मेरा इन वड़े लोगों से विशेष परिचय नहीं हुआ था। व्यक्तिशः मेरा किसी से विरोध नहीं था, परन्तु जितने मुँह उतनी बातें। लोगों ने न जाने किस-किस रूप में उनके सामने इस योजना को प्रस्तुत किया था। यह भी हो सकता है कि उन्हें यह अच्छा न लग

रहा हो कि उनके होते हुए इतनी अच्छी योजना को कार्यान्वित करने का श्रेय साधारण-सी स्थिति के एक अनजानें से युवक को मिले। उक्त नेताओं ने अपने मन की कह डाली। मैंने उन्हें यथासम्भव आश्वस्त करने का प्रयास किया। फलतः उनका विद्रोही स्वर कुछ हल्का पड़ा और एक बार फिर मिल-बैठकर विचार करने का निश्चय हुआ।

अगली बैठक आर्यसमाज सदर बाज़ार में हुई। इस बैठक की अध्यक्षता आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता महात्मा नारायण स्वामीजी ने की। पं० श्री रामचन्द्र देहलवी और श्री देसराज चौधरी भी इस बैठक में उपस्थित थे। विचारोपरान्त सर्वसम्मति से आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली की स्थापना का निश्चय होकर ला० नारायणदत्तजी उसके पहले प्रधान चुने गये। मुझे मंत्री चुना गया। लालाजी मृत्युपर्यन्त प्रधान रहे और मैं निरन्तर १२ वर्ष तक निर्विरोध मंत्री चुना जाता रहा। लाला नारायणदत्तजी के बाद क्रमशः ला० देशबन्धु गुप्त, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, डा० युद्धवीरसिंह, डा० गोवर्धनलाल दत्त, चौधरी देशराज और प्रोफ़ेसर रामसिंह ने सर्वसम्मति से चुने जाकर प्रधान पद को सुशोभित किया। तत्पश्चात् उसका स्तर गिरता गया। तिकड़म के सहारें वोट बटोरे जाकर चुनाव होने लगा। धीरे-धीरे विद्वान् और समाज में प्रतिष्ठित लोग दूर होते गये।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन—सन् १९४५ में मैंने नागरी रक्षा समिति की स्थापना करके उसके माध्यम से दिल्ली में पहली बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया। मुझे सम्मेलन की समिति का मंत्री तथा प्रसिद्ध पत्रकार श्री रामचन्द्र शर्मा महारथी को संयुक्त मंत्री नियुक्त किया गया। डाक्टर नगेन्द्र साहित्य परिषद् के तथा श्री गोपालप्रसाद व्यास कवि सम्मेलन के संयोजक नियत हुए। सम्मेलन की अध्यक्षता राजर्षि बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने की। साहित्य परिषद् व कवि सम्मेलन की अध्यक्षता क्रमशः श्री श्यामबिहारी मिश्र

(मिश्रबन्धु) तथा श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने की। महारथीजी ने कहा कि निरालाजी के लिए शराब चाहिए। मैंने इन्कार कर दिया। महारथीजी बोले—आपको इसमें कुछ नहीं करना है। मैंने स्पष्ट कह दिया कि मेरे रहते यह सब नहीं होगा। निरालाजी जैसे महाकवि को वापस भेजना उनके लिए अत्यन्त अपमानजनक होगा। स्वागत समिति के मंत्री का दायित्व श्री महारथीजी को सौंपकर मैं अलग हो गया। दर्शक और श्रोता के रूप में सम्मेलन की कार्यवाही में भाग लेता रहा।

हिन्दी प्रचार का कार्य मैं यथापूर्व करता रहा। उन दिनों मेरा विशेष बल पत्रों पर पता हिन्दी में लिखे जाने पर था।

स्लाइड में लेटर बक्स के पास खड़े लड़के को हिन्दी में पता लिखे पत्र को डालते दिखाया गया था। वहीं लिखा था—

> प्रत्येक काम में हिन्दी को अपनाइए।
> पत्रों पर पता हिन्दी में लिखिए।

इस प्रकार की Slides बनवाकर सिनेमाघरों में चलवाईं। सेठ जगतनारायण ने अपने तीन सिनेमाघरों में ये स्लाइडें महीनों तक बिना कुछ लिये दिखाईं। इसी प्रकार के ब्लाक बनवाकर राजधानी से प्रकाशित होनेवाले दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों में छपवाये। इस कार्य में मुझे प्रसिद्ध पत्रकार स्वर्गीय श्री फ़तहचन्द शर्मा आराधक का विशेष सहयोग मिला।

सत्यार्थप्रकाश पर रोक—सिन्ध की मुसलिम लीगी सरकार ने सत्यार्थप्रकाश के १४वें समुल्लास के पढ़े ज़ाने, छापने, बेचने, ख़रीदने आदि पर रोक लगा दी। सार्वदेशिक सभा ने पत्राचार के द्वारा इस प्रतिबन्ध को हटवाने का प्रयास किया। विफल होने पर सत्याग्रह करने का निश्चय किया गया। २०, २१, २२ फ़रवरी, १९४४ को डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी की अध्यक्षता में आर्य महासम्मेलन हुआ।

सत्याग्रह का निश्चय हो जाने पर भी उसे टालने का प्रयास होता रहा। इस बीच सत्याग्रह की तैयारी होती रही। दिल्ली में सत्यार्थप्रकाश रक्षा समिति बनाकर मुझे उसका संयोजक नियुक्त किया किया।

कुरान पर प्रतिबन्ध—एक दिन डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी मुझसे बोले—"मुसलमान हमारे लिए समस्या पैदा करते रहते हैं और हम उनका समाधान करने में लग जाते हैं। क्यों न हम उनके लिए समस्या पैदा करें और उन्हें उसका हल करने में उलझाएँ। "The best form of defence is offence." मैंने दरियागंज में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। सभा की अध्यक्षता पं० श्री रामचन्द्र देहलवी ने की। मैंने एक प्रस्ताव द्वारा कुरान के उन अंशों पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग की जिनमें गैर-मुसलिमों पर अत्याचार करने और उन्हें क़त्ल करने का आदेश दिया गया है। इस सभा की कार्यवाही का समाचार और कुरान पर प्रतिबन्ध की माँग करनेवाला प्रस्ताव दैनिक 'हिन्दुस्तान' में प्रमुखता के साथ प्रकाशित हुआ। मुसलमानों की ओर से मुझे क़त्ल करने की धमकियाँ आने लगीं। उन्हीं दिनों 'हिन्दुस्तान' में किसी मुसमान का एक छोटा-सा लेख छपा जिसका अन्तिम वाक्य था—'ऐसी अवस्था में हम भी दीक्षितजी के प्रस्ताव से सहमत हैं।'

सिन्ध सत्याग्रह—अन्ततः जनवरी १९४७ में सार्वदेशिक सभा ने विधिवत् सत्याग्रह की घोषणा कर दी। महात्मा नारायण स्वामीजी को सत्याग्रह का संचालक नियुक्त कर उन्हें पहले ५ सत्याग्रही चुनने का अधिकार दे दिया। निम्न ५ सत्याग्रही चुनकर स्वामीजी कराची चले गये—

१. पंजाब—ला० खुशहालचन्द खुर्सन्द (बाद में आनन्द स्वामी)
२. उत्तर प्रदेश—राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री (बाद में स्वामी ध्रुवानन्द)
३. बिहार—स्वामी अभेदानन्दजी
४. राजस्थान—कुँवर चाँदकरण शारदा

५. दिल्ली—पं० लक्ष्मीदत्त दीक्षित (वर्त्तमान स्वामी विद्यानन्द)

मेरे परिवार में उस समय पत्नी, तीन बच्चे और वृद्ध पिता थे जिनके भरण-पोषण का भार मेरे ऊपर था, परन्तु जब महात्मा नारायण स्वामीजी ने मेरे ऊपर अंगुली रखकर अपने 'पंज प्यारों' में शामिल कर लिया तो मेरे इन्कार करने का प्रश्न ही कैसे उठता ? मैंने 'सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्' की भावना से सहर्ष स्वीकार किया।

१९३९ में हैदराबाद सत्याग्रह के अवसर पर आर्य समाज के नाम पर संचालित डी० ए० वी० द्वारा किये गये व्यहार को मैं भूला नहीं था। इस समय मैं एक प्रकार से जैनियों की सर्विस में था। सेठ शान्तिप्रसाद जैन संस्थान के चेयरमैन और श्री राजेन्द्रकुमार जैन मैनेजिंग डायरेक्टर थे। सत्याग्रह भी उस सत्यार्थप्रकाश की रक्षार्थ किया जा रहा था जिसका एक पूरा समुल्लास जैन मत की आलोचना से भरा था। ऐसी अवस्था में सत्याग्रह की अवधि के दिनों के लिए छुट्टी दिये जाने की तो मैं सोच भी नहीं सकता था। इसलिए मैं अपना त्यागपत्र लेकर ही मैनेजिंग डायरेक्टर के पास पहुँचा। श्री जैन ने पूछा—'त्यागपत्र क्यों दे रहे हो ?' मैंने कहा—'सत्याग्रह में जा रहा हूँ। पता नहीं लौटूंगा या नहीं और यदि लौटूंगा भी तो पता नहीं कब।' श्री जैन ने मेरा त्यागपत्र फाड़कर मेज़ के नीचे रक्खी रद्दी की टोकरी में फेंक दिया और बोले—'तुम निश्चिन्त होकर जाओ, हर महीने की पहली तारीख को तुम्हारा पूरा वेतन तुम्हारे घर पहुँचता रहेगा।' एक वार फिर मुझे डी० ए० वी० के व्यवहार की याद ताज़ा हो गई। दोनों की तुलना करते हुए मैं भावविभोर हो उठा और मेरी आँखें गीली हो गईं। सत्याग्रह बहुत दिन नहीं चला। उस बीच एक बार पहली तारीख आई तो वेतन मेरे घर पहुँचा दिया गया, जैन साहब की ओर से मेरी पत्नी के नाम इस आश्वासन के साथ कि 'दीक्षितजी की अनुपस्थिति में अपने को असहाय मत समझना। जब

भी कोई आवश्यकता हो, बस एक चिट भर लिख भेज देना।' कुछ दिन बाद मुझे प्रिंसिपल सूरजभानजी का पत्र मिला जिसमें डी० ए० वी० कालिज, जालन्धर में मेरी नियुक्ति की सूचना दी गई थी। मैंने धन्यवादपूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया।

पहले ला० खुशहालचन्द, कुँवर चाँदकरण शारदा और राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री एक साथ कराची पहुँचे। दो दिन वाद मैं और स्वामी अभेदानन्दजी पहुँचे। नारायण स्वामीजी चाहते थे कि हम सब एक साथ गिरफ़्तार न हों। इसलिए उन्होंने मुझे और स्वामी अभेदानन्द-जी को तुरन्त लौट जाने और अगला आदेश मिलने तक मुलतान में ठहरने का आदेश दिया। हम मुलतान पहुँचकर प्रचार करते रहे। आदेश की प्रतीक्षा करते रहे।

सनातनधर्म के नाम से प्रसिद्ध पौराणिक मतों का खण्डन जिस कठोरता के साथ हुआ है, उसके रहते हैदराबाद सत्याग्रह की तरह इस सत्याग्रह में गैर आर्यसमाजियों के सहयोग की आशा नहीं की जा सकती थी, परन्तु सनातनधर्मियों ने आशा से अधिक सहयोग दिया। महामना पं० मदनमोहन मालवीय के वाद गोस्वामी गणेशदत्तजी सनातनधर्म के सबसे वड़े नेता थे। उन्होंने घोषणा की कि वेद की कील से जुड़े आर्यसमाजी और सनातनधर्मी कैंची के दो फलकों के समान हैं। कैंची के फलके एक दूसरे से टकराकर आवाज़ भले ही करें, परन्तु एक-दूसरे को काटते नहीं। कटता वही है जो दोनों के बीच में आ जाता है। इसी प्रकार आर्यसमाजी और सनातनधर्मी आपस में भले ही लड़ते-झगड़ते रहें परन्तु तीसरे के मुक़ावले में एक होकर आक्रान्ता से जूझेंगे। ऐसी ही एक विचित्र वात यह हुई कि साधुओं के अनेक संगठनों ने इस सत्याग्रह में आर्यसमाज का साथ देने की घोषणा कर दी। उनका कहना था कि हमें इससे कोई मतलब नहीं कि सत्यार्थप्रकाश में क्या लिखा है। हम तो इतना जानते हैं कि हमारे एक साधु की लिखी पुस्तक पर मुसलमानों ने प्रतिवन्ध लगा दिया है।

इसे हम सहन नहीं करेंगे और ५६ लाख साधु लाठियाँ और चिमटे लेकर पिल पड़ेंगे।

राष्ट्रिय स्तर पर न केवल महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू और बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने, बल्कि मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और खान अब्दुलगफ्फार खाँ आदि ने भी सिन्ध सरकार के आदेश की कठोर शब्दों में भर्त्सना की।

ला० खुशहालचन्द, कुँवर चाँदकरण शारदा और राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री सिन्ध सरकार के आदेश की अवहलेना करके कराची के बाज़ारों में सत्यार्थप्रकाश बेचने, ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने और हाथ की मशीन पर छापने में लगे रहे। पाँच दिन तक यह क्रम चलता रहा और पुलिस असहाय होकर देखती रही। किसी के विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं हुई। जिस आदेश का उल्लंघन करनेवालों की सर्वत्र जयजयकार होती रहे और सरकार मूकदर्शक बनी देखती रहे, उसका मूल्य ही क्या है ? फलतः महात्मा नारायण स्वामीजी ने उसे Dead letter घोषित कर सत्याग्रह समाप्त कर दिया। हम (मैं और स्वामी अभेदानन्दजी) आदेश की प्रतीक्षा करते रहे।

वाँ अदू के हाथ में ख़ंजर निकलके रह गया।
और यहाँ शौके शहादत हाथ मलके रह गया॥

सिन्ध सरकार के सत्यार्थप्रकाश पर पाबन्दी सम्बन्धी आदेश के कारण सत्यार्थप्रकाश का खूब प्रचार हुआ। सत्यार्थप्रकाश में ऐसा क्या है जिसके कारण देश-भर में एक तूफ़ान-सा खड़ा हो गया है—इस उत्सुकता के कारण सिन्ध में तो उर्दू और सिन्धी भाषाओं में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश की दीमक की खाई प्रतियाँ भी हाथों हाथ बिक गईं।

आर्य केन्द्रीय सभा की गतिविधियाँ

पहले ऋषि बोधोत्सव तथा ऋषि निर्वाणोत्सव प्रत्येक आर्यसमाज अपने-अपने मन्दिर में मना लिया करती थी। जब सब समाजों की

ओर से सम्मिलित रूप में आर्य केन्द्रीय सभा के तत्त्वावधान में मनाये जाने लगे तो समाज मन्दिरों से निकलकर गांधी ग्राउण्ड, रामलीला मैदान, कोटला ग्राउण्ड आदि में पहुँच गये। २४ के स्थान पर जब ये पर्व २०० आर्यसमाजों की ओर से मनाये जाने लगे तो इनका रूप ही बदल गया। ऋषि निर्वाणोत्सव गम्भीर वातावरण में मनाया जानेवाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उत्सव होता है जो प्रारम्भ से ही रामलीला मैदान में मनाया जाता रहा है। ऋषिबोधोत्सव पहले बदल-बदलकर नगर के विभिन्न भागों में केन्द्रीय स्थानों पर मनाया जाता था। कुछ समय पश्चात् मैंने सोचा कि ऋषि दयानन्द के नाम और काम से बच्चों को परिचित कराने के लिए उनकी रुचि के अनु-रूप कोई कार्यक्रम होना चाहिए। इसलिए वसन्त पंचमी की तरह किसी पर्व को मेले का रूप देना चाहिए। इस प्रकार ऋषि बोधोत्सव को कोटला फ़ीरोज़शाह के मैदान में ऋषि मेले के रूप में मनाया जाने लगा। ऋषि मेले में ही सायंकाल के समय ऋषि को श्रद्धांजलि देने की परम्परा है। इससे प्रेरणा लेकर कुछ वर्षों से टंकारा में शिवरात्रि के अवसर पर और अजमेर में दीवाली के अवसर पर ऋषि मेलों का आयोजन होने लगा है।

श्रद्धानन्द दिवस पहले श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट की ओर से मनाया जाता था। श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट के मंत्री ला० नारायणदत्तजी ने श्रद्धानन्द दिवस को भविष्य में आर्य केन्द्रीय सभा की ओर से मनाये जाने का सुझाव रक्खा। लालाजी ही उन दिनों केन्द्रीय सभा के प्रधान थे। उस समय तक केन्द्रीय सभा के तत्त्वावधान में होनेवाली समस्त गतिविधियों के लिए धन जुटाने की ज़िम्मेदारी मेरी थी। मैंने कहा—यदि खर्च की ज़िम्मेदारी श्रद्धानन्द ट्रस्ट लेने को तैयार हो तो आयोजन की ज़िम्मेदारी लेने को मैं तैयार हूँ। लालाजी ने इस पर होनेवाले व्यय की राशि ट्रस्ट की ओर से देना स्वीकार कर लिया। श्रद्धानन्द बलिदान दिवस का मुख्य आकर्षण उसका जुलूस था जो

आर्यसमाज की सामूहिक शक्ति का परिचायक था। स्वामीजी का बलिदान सन् १९२६ में २३ दिसम्बर को हुआ था। इसलिए उसी दिन जुलूस निकाला जाता था। परन्तु वह स्वामीजी के विराट् व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं होता था। उसका मुख्य कारण यह था कि उन दिनों आर्यसमाज में अधिसंख्य सरकारी कर्मचारी ही सक्रिय थे। सार्वजनिक अवकाश न होने के कारण वे बड़ी संख्या में शामिल नहीं हो सकते थे। सबका एक साथ अवकाश लेना भी सम्भव नहीं था। तब २३ दिसम्बर के निकटतम पहले या बाद के रविवार को जुलूस निकाला गया। दो वर्ष के अनुभव ने बताया कि अब भी जलूस फीका-सा रहता है। उसका कारण था, रविवार के दिन सभी बाज़ारों के बन्द होने के कारण जलूस को देखनेवाले नहीं होते थे। कई दिन तक निरन्तर मैं इस समस्या पर विचार करता रहा। आख़िर समाधान सूझ गया। २५ दिसम्बर को सरकारी कार्यालयों में बड़े दिन की छुट्टी होती है और रविवार न होने कारण प्रायः बाज़ार खुले होते हैं। इसलिए २५ दिसम्बर के दिन ही श्रद्धानन्द बलिदान दिवस मनाने का निश्चय किया गया। इसका औचित्य यह बना कि यद्यपि स्वामी श्रद्धानन्दजी का बलिदान २३ दिसम्बर को सायंकाल हुआ था, उनकी अर्थी का जुलूस २५ दिसम्बर को निकाला गया था। तब से २५ दिसम्बर को ही जुलूस निकलता है और जुलूस की समाप्ति पर थोड़े से समय के लिए सभा होती है। रामलीला के अवसर पर निकलनेवाली श्री रामचन्द्रजी की बारात के बाद हिन्दुओं का यह सबसे शानदार जुलूस होता है और लालकुआँ जैसे मुसलिम-बहुल क्षेत्र में गुज़रनेवाला तो हिन्दुओं का यह एकमात्र जुलूस है।

यह ठीक है कि इन आयोजनों में दिल्ली के सभी भागों से आकर लोग सम्मिलित होते हैं परन्तु सुविधा के कारण जितनी संख्या में लोग अपने क्षेत्र में होनेवाले उत्सव में सम्मिलित हो सकते हैं, उतनी संख्या में १०-१५ मील चलकर तो नहीं आ सकते। इसलिए मैंने

आर्यसमाज स्थापना दिवस आर्यसमाजों द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में मनाये जाने के लिए छोड़ दिया था। मेरे पानीपत चले जाने के वाद इसे भी सम्मिलित रूप दे दिया गया, किन्तु सभा द्वारा आयोजित अन्य समारोहों की तुलना में यह फीका रहता है।

सभा द्वारा मनाये जानेवाले इन समारोहों में जिन राष्ट्रिय स्तर के नेताओं ने भाग लिया उनमें कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण नाम ये हैं—

डा० राजेन्द्रप्रसाद, सरदार वल्लभभाई पटेल, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, अनन्तशयनम् आयंगर, जगजीवनराम, गणेश वासुदेव मावलंकर, कैलाशनाथ काटजू, नरहरि विष्णु गाडगिल, श्यामाप्रसाद मुकर्जी, हरेकृष्ण मेहताव, घनश्यामसिंह गुप्त, देशवन्धु गुप्त, इन्द्र विद्यावाचस्पति, नेकीराम शर्मा, जुगलकिशोर बिड़ला, स्वामी सत्यानन्द, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, महाशय कृष्ण, पं० रामचन्द्र देहलवी, मेहरचन्द महाजन, बख्शी टेकचन्द, महात्मा आनन्द स्वामी, पं० भगवद्दत्त, लाला हंसराज गुप्त, एन० सी० चटर्जी आदि।

इन उत्सवों में १९४५ में सम्पन्न ऋषिबोधोत्सव और १९४९ व १९५० में सम्पन्न ऋषि निर्वाणोत्सव की कुछ वातें स्मरणीय हैं।

जगजीवनरामजी से सार्वजनिक विवाद—आर्य केन्द्रीय सभा के तत्त्वावधान में गांधी ग्राउण्ड में आयोजित ऋषि वोधोत्सव के अवसर पर मेरठ कालिज (अब यूनिवर्सिटी) में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० धर्मेन्द्रनाथ तर्कशिरोमणि ने अपने भाषण में कहा—राजनीतिक दल किसी हरिजन को एम० एल० ए० या एम० पी० अथवा मिनिस्टर बना सकते हैं, किन्तु सवर्णों के घरों में पुरोहित बनाकर पूजास्पद आर्यसमाज ही बना सकता है। इसके उत्तर में श्री जगजीवनरामजी ने कहा—हम अपना भला-बुरा समझने में समर्थ हैं। हमारे लिए पुरोहित वनना अच्छा है या मिनिस्टर, इसका निर्णय हम स्वयं कर सकते हैं, पर कितने आर्यसमाजी हैं जिन्होंने अपनी लड़कियाँ हरिजनों को दी

हैं ? इत्यादि । मैं इसके प्रत्युत्तर में कुछ कहना चाहता था कि देशबन्धुजी ने मुझे इशारे से रोक दिया । वह स्वयं खड़े हुए और वोले—जब बच्चे अपना भला-बुरा समझने योग्य हो जाते हैं तो निश्चय ही माता-पिता को बड़ी प्रसन्नता होती है, परन्तु बच्चों को अपने माता-पिता को यह कहना शोभा नहीं देता कि अब आप हमें कुछ न कहें, क्योंकि हम अपना भला-बुरा समझने के योग्य हो गये हैं । जगजीवनरामजी उन दिनों को क्यों भूल गये जब लोग उन्हें दरी का कोना भी नहीं छूने देते थे । आज वे जो कुछ हैं आर्यसमाज की बदौलत है और इसलिए उन्हें उसका कृतज्ञ होना चाहिए । तब ला० नारायणदत्तजी खड़े हुए । उन्होंने कहा कि यदि जगजीवनरामजी अपनी बेटी किसी भंगी के लड़के से ब्याह दें तो मैं किसी सवर्ण की बेटी उनके बेटे को दिला दूँगा । स्मरण रहे कि चमार भंगी को अपने से नीच समझते हैं और इसलिए उनसे रोटी-वेटी का व्यवहार नहीं करते ।

राजगोपालाचार्य—१६४६ में ऋषि निर्वाणोत्सव के अध्यक्ष थे केन्द्रीय मन्त्री श्री नरहरि विष्णु गाडगिल और मुख्य अतिथि थे श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और कभी आर्यसमाज के सर्वाधिक लोकप्रिय कथावाचक स्वामी सत्यानन्दजी जिन्हें काफ़ी दिन पहले अपना सम्प्रदाय चलाने के कारण आर्यसमाज से निष्कासित कर दिया गया था । राजाजी ने अपने भाषण में कहा कि अब स्वामी दयानन्द ने प्रत्येक भारतीय के दिल में घर कर लिया है । अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री गाडगिल ने कहा कि यदि देश स्वामी दयानन्द द्वारा दिखाये रास्ते पर चला होता तो आज कश्मीर का मामला यू० एन० ओ० (संयुक्त राष्ट्र संघ) में लटका हुआ न होता । मैंने सबका धन्यवाद करते हुए कहा कि राजाजी ने कहा है कि अब स्वामी दयानन्द ने सबके दिल में घर कर लिया है परन्तु मैं समझता हूँ कि अभी एक दिल उससे खाली है और वह स्वयं राजाजी का दिल है । यदि ऐसा न होता तो वे अपने भाषण में मूर्त्तिपूजा की वकालत न करते । दबी

जवान से उन्होंने ऐसा किया था।

मानवता अपनी चरम सीमा पर—भारत के अन्तिम वायसराय लार्ड माउण्टवेटन १९४९ में विदा हुए। उनसे चार्ज लिया चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने जो प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल थे और गवर्नर जनरलों की परम्परा में अन्तिम। वर्तमान में राष्ट्रपति के समकक्ष उनका स्थान था। इसलिए उनके पद के अनुरूप ही सारी व्यवस्था होनी थी। सदा की भाँति दीवाली से पहला मेरा सारा दिन रामलीला मैदान में ही वीता। रात को ७ बजे पण्डाल-निर्माण का कार्य पूरा हुआ ही था कि पहले वड़े जोर की आँधी और फिर वर्षा आई। पण्डाल खड़ा करनेवाले मजदूर वहीं थे। पण्डाल गिर पड़ा। हम सावधान थे, इसलिए वच गये। शामियाने के कुछ खड़े रह गये. भाग के नीचे हमने शरण ली। ९ बजे वर्षा थमी और फिर से पण्डाल को खड़ा करना शुरू किया। रात के २ वजे के लगभग एक गाड़ी पास आकर लगी। गाड़ी में से ८० वर्षीय ला० नारायणदत्तजी निकले। पास आकर बड़े स्नेह से पूछा—तुमने रोटी खाई? लाला नारायणदत्तजी अत्यन्त सम्पन्न व्यक्ति थे। हर प्रकार की सुख-सुविद्याओं में जीनेवाले ८० वर्षीय लालाजी को मेरी चिन्ता हुई और अमावस्या की ऐसी भयंकर और वरसाती रात में दो बजे रामलीला मैदान में पहुँचे। मेरे लिए इससे बड़ा पुरस्कार और क्या हो सकता था! मैंने खुशी के आँसुओं से रुँधे हुए कण्ठ से बस इतना ही कहा—आपको इस समय यहाँ पाकर मैं सब प्रकार से तृप्त हो गया। ऐसे थे आर्य केन्द्रीय सभा के पहले प्रधान। ४ वजे तक फिर से शामियाना खड़ा हुआ। मैं दरियागंज में रहता था। घर चला गया। ७ बजे फिर लौटा तो पण्डाल टपक रहा था। तभी देशबन्धुजी पहुँच गये। जल्दी में जो अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था हो सकती थी, करने का प्रयत्न किया।

डा० राजेन्द्रप्रसाद—सन् १९५० में ऋषिबोधोत्सव पर डा० राजेन्द्र प्रसाद को आना था। उस समय वे १, क्वीन विक्टोरिया (अब राजेन्द्र-

प्रसाद) रोड पर रहते थे। मैं और पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति उनसे मिलने गये और उन्हें आमन्त्रित किया। उन्होंने आना स्वीकार कर लिया। किन्तु यह क्या! ऋषि बोधोत्सववाले दिन प्रातः ७ बजे एक चमचमाती लम्बी गाड़ी दरियागंज में मेरे मकान के बाहर आकर रुकी और उसमें से निकलकर रंग-बिरंगी सुनहरी पेटियोंवाले दो व्यक्तियों ने मुझे एक लिफ़ाफ़ा थमा दिया। राजेन्द्रबाबू ने उत्सव में आने में अपनी असमर्थता प्रकट की थी। बाद में मिलने पर उन्होंने पं० इन्द्रजी को बताया कि जब मैंने आना स्वीकार किया था तब मैं संविधान परिषद् के अध्यक्ष और केन्द्रीय मंत्री के नाते क्वीन विक्टोरिया रोड पर रहता था। तब मैं स्वतंत्र था। २६ जनवरी को राष्ट्रपति भवन में पहुँच गया। वहाँ के तौर तरीकों से मैं सर्वथा अनजान था। उस दिन प्रातःकाल के समय मैंने अपने सेक्रेटरी से कहा कि आज मुझे ऋषि बोधोत्सव में जाना है। मुझे बताया गया कि आप वहाँ नहीं जा सकेंगे। आपको बहुत दिन पहले बताना चाहिए था। राष्ट्रपति भवन से समारोह स्थल तक के बीच आवश्यक व्यवस्था होनी थी। वह अब नहीं हो सकती। तब मैंने जाना कि अब मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, राष्ट्रपति भवन में बन्दी बनकर रह गया हूँ। १९६२ में राष्ट्रपति पद से मुक्त होने पर रामलीला मैदान में आयोजित बिदाई समारोह में भाषण करते हुए राजेन्द्रबाबू ने कहा था—आज मुझे वैसी प्रसन्नता हो रही है, जैसी स्कूल के बच्चों को छुट्टी की घण्टी बजने पर होती है। वास्तव में वे अजातशत्रु और विदेह थे।

सरदार पटेल—इन बड़े लोगों तक मेरी पहुँच नहीं थी। ला० देशबन्धु गुप्त ही मेरा माध्यम थे। अगले वर्ष मैंने उनसे कहा कि मेरी इच्छा इस बार ऋषिनिर्वाणोत्सव पर सरदार वल्लभभाई पटेल को बुलाने की है। लालाजी ने रोष-भरे स्वर में कहा—अब ऐसा कुछ नहीं होगा। एक तरफ ये लोग तुम्हारे आदमियों की गालियाँ खाएँ और दूसरी ओर पण्डित नेहरू उनकी खिंचाई करें। 'आखिर बात क्या है'? मेरे

पूछने पर देशबन्धुजी बोले—गत वर्ष गाडगिल साहब ने कहा था न कि देश स्वामी दयानन्द के रास्ते पर चला होता तो आज कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्रसंघ में लटका हुआ न होता। यह वाक्य जमय्यतुल उल्मा ए हिन्द के अखबार 'अलजमीयत' में प्रमुखता से प्रकाशित किया गया, इस टिप्पणी के साथ कि गाडगिल साहब शुद्धि का प्रचार करते हैं। 'अलजमीयत' का यह पर्चा किसी ने मौलाना आज़ाद को दिखाया और मौलाना आज़ाद ने पण्डित नेहरू को। नेहरूजी ने गाडगिल साहब से जवावतलबी की। इधर तुम्हारा रामगोपाल उन लोगों के कांग्रेसी होने के कारण उन्हें कोसता रहता है। जैसे-तैसे मैंने देशबन्धुजी को शान्त किया। सरदार पटेल आये। सरदार पटेल जैसे तेजस्वी पुरुष का आर्यसमाज के मंच पर पहली बार आगमन हो रहा था। इस बार सभा की अध्यक्षता बख्शी टेकचन्दजी ने की और ध्वजारोहण किया महात्मा आनन्द स्वामीजी ने। प्रातःकाल से ही घुड़सवार पुलिस रामलीला मैदान में फैली हुई थी। आर्य केन्द्रीय सभा के तत्त्वावधान में आयोजित किसी समारोह में इतनी उपस्थिति फिर कभी नहीं हुई। आर्यसमाज के इतिहास में पहली बार बी० बी० सी० लन्दन से आर्यसमाज के किसी उत्सव का समाचार प्रसारित हुआ था। कारण ? पहली रात्रि को देर तक केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल की बैठक में नेपाल के सम्बन्ध में भारत की प्रतिक्रिया पर विचार हुआ। तत्सम्बन्धी निर्णय की घोषणा सरदार पटेल ने ऋषि निर्वाणोत्सव की सभा में की थी। यह अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का विषय था। इसलिए उसे बी० बी० सी० ने प्रसारित किया, इन शब्दों के साथ—'Sardar Patel was speaking at the death anniversary celebrations of Swami Dayanand Saraswati, founder of Arya Samaj.' इसके कुछ ही दिन बाद सरदार पटेल का बम्बई में निधन हो गया। कुछ समाचार पत्रों ने उस अवसर पर जो एक फ़ोटो प्रकाशित किया था, उसके नीचे लिखा था—'His last public appearance.'

यह ऋषि निर्वाणोत्सव पर लिया गया फ़ोटो था। उसके बाद वे कोई भाषण नहीं दे सके थे—यह उनके जीवन का अन्तिम भाषण था।

नोआखली का हत्याकाण्ड—१९४६ में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए Direct Action के नाम से देश-भर में हिंसात्मक आन्दोलन छेड़ा। सबसे भयंकर हत्याकाण्ड नोआखली (पूर्वी बंगाल) में हुआ। हज़ारों हिन्दुओं को मौत के घाट उतारा गया, स्त्रियों का सतीत्व लूटा गया और न जाने कितनों को वलात् मुसलमान बनाया गया। महामना पं० मदनमोहन मालवीय बीमार थे। इस आघात को न सह सके और उन्हीं दिनों उनका देहावसान हो गया। डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी उस समय अखिल भारत हिन्दू महासभा के प्रधान थे। इस सारी समस्या पर विचार करने के लिए उन्होंने हिन्दू महासभा भवन में एक बैठक बुलाई। सनातनधर्मियों के प्रतिनिधि के रूप में उसमें स्वामी करपात्रीजी उपस्थित थे और आर्यसमाज की ओर से मैं। डा० मुकर्जी ने विशेष रूप से दो प्रश्न प्रस्तुत किये—

१. वलात् मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को कैसे वापस लाया जाए।

२. हिन्दू महासभा के हाथों में शासन की बागडोर कैसे आये?

पहले प्रश्न के उत्तर में स्वामी करपात्रीजी ने कहा कि जो फिर से हिन्दू वनना चाहेगा, उसे एक पाव गौ का गोबर खाना होगा। अपनी बारी में मैंने कहा—जो यह कहे कि मैं हिन्दू हूँ, उसे हिन्दू मान लिया जाए। उसके लिए किसी प्रकार के संस्कार की आवश्यकता नहीं है। डा० मुकर्जी ने मेरी बात का समर्थन करते हुए आपबीती एक अत्यन्त मार्मिक घटना सुनाई। उन्होंने कहा कि जब मैं नोआखली गया तो मुझे एक वुढ़िया मिली। उसने मुझे वताया कि मुझे और मेरी तरह अन्य बहनों को इस प्रकार मुसलमान वनाया कि दो मौलवियों ने पगड़ी का एक-एक छोर पकड़ा और हमें तलवार का भय दिखाकर पगड़ी को हाथ से पकड़ने का आदेश दिया। डर के मारे हमने पगड़ी

अपने हाथों में लेगी। मौलवियों ने कलमा पढ़ा और हमें मुसलमान मान लिया गया। परन्तु जिस समय वे कलमा पढ़ रहे थे, उस समय मैं मन-ही-मन राम-राम कर रही थी। मुझे बताओ, वह बुढ़िया मुसलमान कब हुई जो मैं उसे फिर से हिन्दू बनने के लिए एक पाव गोबर खाने के लिए कहूँ ? मैं दीक्षितजी से पूरी तरह सहमत हूँ।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में करपात्रीजी ने कहा कि हम अपने धर्म में सरकारी हस्तक्षेप नहीं सहन कर सकते। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ३०-३५ करोड़ सनातनधर्मी हिन्दू महासभा को अपना मत देकर जिता सकते हैं, यदि आप यह विश्वास दिलाएँ कि आपकी सरकार हमारे धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेगी, अर्थात् ऐसे कानून नहीं बनाएगी जिनके अधीन छूतछात को अपराध माना जाएगा, बाल-विवाह बन्द होंगे और विधवा-विवाह की इज़ाज़त होगी, मन्दिरों में हर किसी को जाने की छूट होगी, वर्णव्यवस्था को जन्म की बजाए कर्मों पर आश्रित माना जाएगा इत्यादि। डा० मुकर्जी ने कहा—तो हमें शासन करने की आवश्यकता ही क्या है, यदि हम हिन्दू जाति की रक्षा और उन्नति न कर सकें ?

झूठ के पाँव नहीं होते—श्रद्धानन्द बलिदान दिवस आया। उस समय श्री रामगोपाल शालवाले आर्य केन्द्रीय सभा के उपमंत्री थे। मैं दरियागंज में रहता था। लालाजी चाँदनी चौक में रहते थे। पोस्टर छापनेवाला प्रेस भी वहीं है। मैंने पोस्टर लिखकर उसे छपाने का काम उपमंत्री लालाजी को सौंप दिया। पोस्टर छप गया, परन्तु यह क्या ! उसमें कई ऐसे बड़े-बड़े नेताओं के नाम भी छपे थे जो मैंने नहीं लिखे थे। वास्तव में उस बार उन्हें उत्सव में आमंत्रित ही नहीं किया गया था। मैंने लालाजी से कहा कि यह आपने क्या किया ? उन्होंने उत्तर दिया कि यह प्रोपेगण्डा का युग है। मैंने कहा कि प्रोपेगण्डा का युग तो है—सदा रहा है, परन्तु यह प्रोपेगण्डा नहीं, झूठ है। झूठ का युग कभी नहीं रहा। मैंने उन्हें समझाने का प्रयास किया कि जिन

नेताओं को बुलाया ही नहीं गया, वे सभा में आने से तो रहे। उस अवस्था में जनता में कुछ लोग तो उन्हें दोष देंगे कि ये बड़े लोग हाँ तो कर देते हैं, परन्तु समय पर आते नहीं और कुछ लोग मुझे और लाला देशवन्धु गुप्त को कोसेंगे कि ये लोग भीड़ इकट्ठी करने के लिए झूठ-मूठ बड़े लोगों के नाम छाप देते हैं। वास्तव में मिथ्याचारी को तो कोई जानेगा भी नहीं। मैंने इन पोस्टरों को नष्ट करके नये पोस्टर छपाने का निश्चय किया, फिर भी इस विषय में सभा के तत्कालीन प्रधान श्री देशबन्धुजी से बात करना आवश्यक समझा। वह मुझसे सहमत थे। नये पोस्टर छपाये गये। रामगोपालजी को अच्छा नहीं लगा। मैं आज भी उसी निश्चय के साथ कह सकता हूँ कि झूठ के पाँव नहीं होते। आज झूठ का सहारा लेकर किसी को बहकाया जा सकता है, लेकिन कब तक ? अगली बार कौन विश्वास करेगा ? खोखली दीवारों पर खड़ा किया गया मकान देर तक नहीं टिक सकता। आज के नेताओं के मिथ्याचरण के कारण ही आर्य-समाज लड़खड़ा रहा है।

हिन्दू कोड बिल

समस्त हिन्दू समाज में सामाजिक दृष्टि से एकरूपता लाने के विचार से तत्कालीन विधिमंत्री डा० अम्बेदकर ने एक समान आचार संहिता बनाने की योजना बनाई और इस निमित्त उन्होंने हिन्दू कोड बिल के नाम से एक विधेयक प्रस्तुत किया। पं० जवाहरलाल नेहरू का समर्थन उन्हें प्राप्त था। समस्त हिन्दू समाज इसका विरोध कर रहा था। विरोध के दो कारण थे—

१. यह हिन्दू धर्म में सरकार का हस्तक्षेप है जिसे सहन नहीं किया जा सकता।

२. इसमें कुछ धाराएँ ऐसी हैं जिनसे हिन्दुओं की परम्परागत मान्यताओं पर कुठाराघात होता है, जैसे—सगोत्र विवाह, तलाक,

लड़कियों का सम्पत्ति में अधिकार, १८ वर्ष से कम आयु की लड़की और २१ वर्ष से कम आयु के लड़के के विवाह पर प्रतिबन्ध आदि।

१९२९ में आर्यसमाज के नेता और परोपकारिणी सभा के मंत्री दीवान हरविलास शारदा ने केन्द्रीय धारा सभा (वर्त्तमान में लोक-सभा) से शारदा एक्ट के नाम से प्रसिद्ध बालविवाह निरोधक कानून (Child Marriage Restraint Act) बनवाया था जिसके अनुसार १८ वर्ष से कम आयु के लड़के और १४ वर्ष से कम आयु की लड़की के विवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। तत्पश्चात् १९३४ में आर्य-समाज के प्रसिद्ध नेता श्री घनश्यामसिंह गुप्त ने Arya Marriage Validation Act पास कराया था जिसके अनुसार जन्म के आधार पर जातपाँत को तोड़कर किये जानेवाले विवाहों को क़ानूनी मान्यता प्रदान की गई थी। इसलिए आर्यसमाज सरकार के समाज सुधार सम्बन्धी क़ानून बनाने के अधिकार को चुनौती नहीं दे सकता था। हमारी मान्यता के अनुसार लड़के की विवाह-योग्य आयु कम मे कम २५ वर्ष और लड़की की १६ वर्ष होनी चाहिए। प्रस्तावित बिल में शारदा ऐक्ट में निधारित १८ और १४ वर्ष की आयु को बढ़ाकर २१ और १८ किया जा रहा था। इस धारा के विरोध का कोई औचित्य नहीं था। तलाक़ के लिए निर्धारित शर्तों में एक पति या पत्नी का धर्म परिवर्त्तन कर लेना थी। दूसरी दोनों में किसी का असाध्य रोग से ग्रस्त होना था। पहली शर्त मुझे स्वीकर थी, जबकि दूसरी को मैं अनुचित मानता था। इसी प्रकार उक्त बिल की कई धाराएँ विवादास्पद थीं। अधिसंख्य हिन्दू इस बिल के पूरी तरह विरोधी थे। आर्यसमाज में इस विषय में मिश्रित प्रतिक्रिया थी। उन दिनों मैं आर्य केन्द्रीय सभा का मंत्री होने के अतिरिक्त सार्वदेशिक सभा का सहायक मंत्री भी था। आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति (बाद में स्वामी धर्मानन्द सरस्वती) मेरे मत के प्रबल पोषक थे। सनातन-धर्मानुयायी कतिपय बुद्धिजीवियों से संपर्क करने पर पता चला कि

उनमें भी एक वर्ग मेरे मत का था। जगह-जगह हिन्दू कोड बिल विरोधी समितियाँ बनी हुई थीं। हिन्दू कोड बिल विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व स्वामी करपात्रीजी तथा वर्त्तमान जगद्गुरु शंकराचार्य, पुरी (स्वामी निरंजनदेवजी) कर रहे थे। बिल में समाहित धाराओं की दृष्टि से मैं बीच की स्थिति में था। इसलिए मैंने हिन्दू कोड बिल विचार समिति बनाई। सनातन धर्म के उस समय के सर्वोच्च नेता गोस्वामी गणेशदत्त-जी उसके प्रधान और पं० हरिहरस्वरूप शर्मा (पं० मौलिचन्द शर्मा के भाई) कार्यकर्त्ता प्रधान बने। मुझे उसका मंत्री नियुक्त किया गया। हमारा निश्चित मत था कि हिन्दू कोड बिल की धाराओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके जो उचित लगें उनका समर्थन और जो अनुचित हों उनका विरोध करना चाहिए। इन सन्दर्भ में मैंने तीन बार डा० अम्बेदकर से उनके निवासस्थान पर भेंट की। उनका कहना था—

१. मेरा इस बात पर कोई आग्रह नहीं है कि हिन्दू कोड बिल में क्या हो, परन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि सम्पूर्ण हिन्दू समाज की एक आचार संहिता हो। संविधान में प्रावधान होते हुए भी तबतक सबके लिए समान आचार संहिता (Universal Civil Code) आम चर्चा का विषय नहीं बनी थी।

२. सनातनधर्मियों के विरोध की मुझे चिन्ता नहीं, क्योंकि वे तो सदा से हर अच्छी बात का विरोध करते आये हैं और ६ महीने से अधिक उनका विरोध चलता नहीं। आर्यसमाज से बात करने के लिए मैं हर समय तैयार हूँ, क्योंकि सब बातों में उससे सहमत न होते हुए भी मैं इतना तो मानता ही हूँ कि उसकी बात बुद्धिपूर्वक होती है।

एक बार जब मैं उनसे मिलने गया तो वे मुझे एक बड़े से कमरे में ले गये। वहाँ दूर-दूर तक मेज़ों पर बड़ी-बड़ी पुस्तकें फैली हुई थीं और अनेक विद्वान्, जिनमें एक-दो संन्यासी भी थे, उनका अध्ययन कर रहे थे। डा० अम्बेदकर ने बताया कि जो लोग हिन्दू कोड बिल

को हिन्दू धर्म का विरोधी कहते हैं, उनके सामने मैं इसकी एक-एक धारा के लिए हिन्दू शास्त्रों से १०-१० प्रमाण प्रस्तुत करूँगा और डा० अम्बेदकर के लिए ऐसा करना कुछ कठिन नहीं था। इस सन्दर्भ में मुझे एक अन्य घटना का स्मरण आता है। अत्यधिक लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'सरिता' में एक लेख किन्हीं रतनलाल बंसल का प्रकाशित हुआ था जिसमें यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया था कि हिन्दू शास्त्रों में अनेकत्र गोवध का विधान मिलता है। इसके विरोध में एक शिष्टमण्डल ले-जाकर मौलाना अबुलकलाम आज़ाद को एक ज्ञापन देने का निश्चय किया गया। हम चाहते थे कि इस शिष्टमण्डल में आर्यसमाजियों के साथ सनातनधर्मी भी चलें। जब इसकी चर्चा गोस्वामी गणेशदत्तजी से हुई तो वे बोले—आप हमें न ले-चलें। हिन्दू शास्त्रों में तो सब-कुछ मिल जाएगा। आप तो यह कहकर छूट जाएँगे कि हम केवल वेद और वेदानुकूल ग्रन्थों को ही प्रमाण मानते हैं, परन्तु हम तो ऐसा नहीं कह सकेंगे। इसलिए आप लोग ही जाएँ।

मैंने देश के उच्चकोटि के ५०० हिन्दू विद्वानों और धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक नेताओं को एक परिपत्र भेजा। यह परिपत्र जवाबी पोस्टकार्ड के रूप में था। मैंने उसमें लिखा था—हिन्दू कोड बिल के सम्बन्ध में तीन प्रकार के मत हैं—

१. इसके एक-एक अक्षर का विरोध किया जाए।

२. इसके एक-एक अक्षर का समर्थन किया जाए।

३. इसपर विचार करके उसमें जो अच्छी बातें हों, उनका समर्थन और जो अनुचित हों उनका विरोध करना चाहिए।

साथ में संलग्न जवाबी कार्ड में क्रमशः तीनों मत उद्धृत हैं। आप जिससे सहमत हैं, उसे छोड़कर शेष दोनों को काट दें और अपने हस्ताक्षर करके लौटा दें। ५०० में से लगभग ३०० (तीन सौ) व्यक्तियों ने उत्तर भेजे। उनमें से केवल एक केन्द्रीय मंत्री श्री नरहरि

विष्ण गाडगिल ने बिल के एक-एक अक्षर का समर्थन किये जाने के पक्ष में अपना मत दिया था। इसी प्रकार केवल मध्य प्रदेश के एक भूतपूर्व मुख्यमंत्री तथा उस समय हिन्दू महासभा के नेता श्री नारायण भास्कर खरे ने इसके एक-एक अक्षर का विरोध किये जाने के पक्ष में अपनी सम्मति दी। शेष सबने विचारोपरान्त उचित बातों का समर्थन करने तथा अनुचित का विरोध करने के पक्ष में अपना मत दिया। मैंने यह विवरण डा० अम्बेदकर को भेज दिया। आखिर एक दिन (सम्भवतः दिसम्बर १९४९) वह बिल लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। उस दिन लोकसभा की दर्शक गैलरी खचाखच भरी हुई थी। मुझे उस दिन लोकसभा के उपाध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर के प्रियजनों के लिए सुरक्षित कक्ष में स्थान मिल गया।

डा० अम्वेदकर ने उक्त विवरण प्रकाशनार्थ 'हिन्दुस्तान टाइम्स' को दे दिया था। उस दिन अखबार का तीसरा पृष्ठ मेरे वक्तव्य से भरा था। उससे राजनीतिक क्षेत्र में तहलका-सा मच गया था। आचार्य कृपलानी विनोदप्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने कहा—'Some people oppose this bill because their religion is in danger. I support it because my house is in danger." अर्थात् कुछ लोग इस विल का इसलिए विरोध कर रहे हैं, क्योंकि उनका धर्म ख़तरे में है। मैं इसका समर्थन इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि मेरा घर ख़तरे में है। यह कहते हुए उन्होंने श्रीमती सुचेता कृपलानी की ओर देखा जो लोकसभा की सदस्य के नाते उस समय वहाँ उपस्थित थीं। हिन्दू कोड विल के कुछ अंश विशेषतः स्त्रियों के हितों के रक्षक कहे जाते थे। इस पर व्यंग्य करते हुए आचार्य कृपलानी ने कहा—आज स्त्रियों के नहीं, पुरुषों के अधिकारों की रक्षा की समस्या है। यदि सड़क पर या वाज़ार में या कहीं भी एक पुरुष और एक स्त्री में किसी वात पर झगड़ा हो जाए तो बिना कुछ पूछे सब लोग स्त्री का पक्ष लेते हुए पुरुष को बुरा-भला कहने लग जाते हैं। इसी प्रकार के कुछ अन्य

उदाहरण भी उन्होंने दिये ।

समाप्ति पर मैं संसद् भवन की सीढ़ियों से उतरकर बाहर आ रहा था तो श्री अटलबिहारी वाजपेयी से भेंट हो गई । उन्होंने व्यंग्य किया—अव तो दीक्षितजी सरकारी आदमी हो गये हैं, चार सौ रुपये महीना मिलते हैं और सरकारी गाड़ी उनके दरवाज़े पर खड़ी रहती है। मैं आश्चर्यचकित था। मैं दरियागंज में रहता था और डा० अम्वेदकर की कोठी तिलक मार्ग पर थी। मैं सदा बस से आता-जाता था। एक आध वार बस न मिलने के कारण रात्रि में पैदल भी लौटना पड़ा था। चार सौ रुपये तो क्या, चार पैसे भी कहीं से नहीं मिले थे। फिर यह गाड़ी कहाँ से आ गई ? कुछ दिन बाद रहस्य खुला। ऊपर राष्ट्रपति भवन से आई गाड़ी का उल्लेख हो चुका है जो मुझे ऋषि वोधोत्सव में राष्ट्रपति के न पहुँच सकने की सूचना देने आई थी। यह सव उसी का करिश्मा था।

हिन्दू कोड विल का विरोध वड़े व्यापक स्तर पर हो रहा था। तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को भी यह पसन्द नहीं था। १९५१ में उन्होंने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को अपने मन की वात कह दी। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को अपनी आपत्ति संसद् को भेजने का अधिकार है। नेहरूजी ने राष्ट्रपति को ऐसा न करने की सलाह दी। उन्होंने इस वात का भी संकेत कर दिया कि 'यदि वे ऐसा करेंगे तो मैं प्रधानमंत्री पद से त्याग-पत्र दे दूंगा।' राष्ट्रपति ने नेहरूजी की वात मानते हुए सलाह दी कि वह इस विल पर अगले आम चुनावों तक कोई कार्यवाही न करें। यदि उन्होंने ऐसा किया तो वह (राष्ट्रपति) संसद् द्वारा पास किये बिल पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे। दोनों ने एक दूसरे की बात रख ली और उस समय यह संकट टल गया। १९५६ में संशोधित बिल दो हिस्सों में बँटकर Hindu Marriage Act और Hindu Succession Act के नाम से पास हो गया और राष्ट्रपति ने उसपर अपनी स्वीकृति दे दी।

महात्मा हंसराजजी का जन्मदिन पहली वार केन्द्रीय सभा की ओर से डी० ए० वी० हाई स्कूल दरियागंज में मनाया गया। प्रमुख वक्ताओं में एक रायज़ादा हंसराज थे जिनकी वहन स्वामी श्रद्धानन्द (उस समय लाला मुंशीराम) से ब्याही थीं। उन्होंने अपने भाषण में 'वहन' के लिए 'हमशीरा' शब्द का प्रयोग किया। उन दिनों आल इण्डिया रेडियो (अव आकाशवाणी) के महानिदेशक डाक्टर ए० एस० बुखारी थे। उनकी हिन्दी विरोधी नीति के कारण देश-भर के हिन्दी लेखकों, कवियों आदि ने पूरी तरह आकाशवाणी का वहिष्कार कर रक्खा था। रायज़ादा हंसराज के भाषण की समाप्ति पर मैंने कहा—अच्छा हुआ कि इस समय वुखारी साहव यहाँ नहीं पहुँचे। यहाँ होते तो कहते कि जो लोग वहन को 'वहन' न कहकर 'हमशीरा' कहते हैं उन्हें रेडियो की हिन्दी विरोधी और उर्दू समर्थक नीति का विरोध करने का क्या अधिकार है? दूसरे प्रमुख वक्ता थे केन्द्रीय मंत्री श्री नरहरिविष्णु गाडगिल। उनके वैठते ही मैंने पं० श्री रामचन्द्रजी देहलवी से भाषण देने की प्रार्थना की। गाडगिलजी मंच से उतरकर जा रहे थे कि देहलवी जी ने अपना भाषण यह कहते हुए आरम्भ किया कि मेरा शिकार तो जा रहा है, मैं अपना तीर किस पर चलाऊँ? जैसे बाल-विवाहों को रोकने के लिए शारदा ऐक्ट वनाया गया है, वैसे ही वृद्ध विवाहों को रोकने के लिए भी कानून बनना चाहिए। वात यह थी कि श्री गाडगिल (जो काका कहलाते थे) ने उन्हीं दिनों वृद्धावस्था में विवाह रचाया था। इसी की ओर देहलवीजी का संकेत था।

मैंने चाहा और अव भी चाहता हूँ कि श्रद्धानन्द दिवस की तरह हंसराज दिवस भी आर्य केन्द्रीय सभा के तत्त्वावधान में मनाया जाया करे। महात्माजी को किसी दल विशेष का वनाकर छोड़ देना उचित नहीं हैं। आर्य केन्द्रीय सभा सवका साँझा संगठन है। इतना अवश्य है कि यदि केन्द्रीय सभा की ओर से इसका आयोजन किया जाए तो उसका कार्यक्रम महात्माजी के पवित्र जीवन के अनुरूप ही होना

चाहिए। सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर असांस्कृतिक कृत्यों के लिए उसमें कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

मिस इण्डिया का चुनाव—१९५३ में पहली बार भारत सुन्दरी (Miss India) का चुनाव किया गया। सौन्दर्य प्रतियोगिता का आयोजन अफ़गान स्नो (Afghan Snow) के निर्माताओं की ओर से दिल्ली स्थित इम्पीरियल होटल में किया गया था। अब तो अनेक शहरों में विभिन्न संगठनों, कम्पनियों और पत्र-पत्रिकाओं की ओर से प्रतिवर्ष इस प्रकार के आयोजन होते रहते हैं, परन्तु उस समय नारी के नग्न शरीर का प्रदर्शन और उसके अंग-प्रत्यंग की नापतोल बिल्कुल नई बात थी। दिल्ली-भर में यह चर्चा का विषय बन गई। उस समय डाक्टर युद्धवीरसिंह आर्य केन्द्रीय सभा के प्रधान थे। उनसे परामर्श करके मैंने सार्वजनिक सूचना माध्यमों द्वारा उसका विरोध करने के लिए इम्पीरियल होटल पर धरने (पिकेटिंग) की घोषणा कर दी। शाम के ५ बजे सौ के लगभग स्त्री-पुरुष इम्पीरियल होटल पर पहुँच गये। होटल के एक गेट पर पुरुषों ने और दूसरे पर महिलाओं ने अधिकार कर लिया। यही समय सरकारी संस्थानों, कार्यालयों आदि के बन्द होने का होता है। इम्पीरियल होटल वर्त्तमान जनपथ पर स्थित था। हज़ारों कर्मचारियों के घर के रास्ते में पड़ता था। वहाँ से गुज़रनेवालों ने होटल के बाहर नारे लगते सुने तो उत्सुकतावश सड़क पर खड़े होते गये। इस प्रकार वहाँ हज़ारों लोग आते गये और चलते गये। श्री रामगोपाल शालवाले के अभिनन्दन ग्रन्थ में इस विषय में प्रकाशित विवरण नितान्त मिथ्या है—न उन्होंने इस आन्दोलन का नेतृत्व किया और न वहाँ धरना देनेवालों की संख्या १५,००० थी। साधारणतया धार्मिक कृत्य में प्रवृत्त आदमी को गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता। इसलिए गेट पर बैठे हम लोग बहुत देर तक सन्ध्या के मंत्र दुहराते रहे। किसी को भीतर नहीं जाने दिया। अन्ततः हमें गिरफ्तार कर लिया गया और दो बसों में भरकर कुतुब मीनार के

पास छोड़ दिया गया। पुलिस अफ़सर आर्यसमाजी थे। उन्होंने हमें ऐसे वस स्टाप के पास छोड़ा जहाँ से इम्पीरियल होटल की ओर आने वाली बस आसानी से मिल जाती थी। ९ वजे के लगभग होटल पर पहुँचकर एक बार फिर हमने मोर्चा सँभाल लिया। ११ बजे हमें दुबारा गिरफ़्तार करके पार्लियामेंट स्ट्रीट के थाने में बन्द कर दिया गया। उधर होटल में देर रात गये सौन्दर्य प्रतियोगिता सम्पन्न हो गई। रात्रि को २ वजे हमें बसों में भरकर अपने-अपने घर पहुँचा दिया गया।

सौन्दर्य प्रतियोगिता को हम नहीं रोक सके, परन्तु उस कुकृत्य के विरुद्ध शहर-भर में रोष की लहर फैलाने में अवश्य सफल रहे। राजधानी के अंग्रेज़ी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने आर्य केन्द्रीय सभा के इस कदम की सराहना करते हुए अपना सम्पादकीय लिखा। उस समय मैं और पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति सार्वदेशिक सभा के स० मंत्री थे। हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' और 'नवभारत टाइम्स' ने 'सार्वदेशिक सभा के दोनों उपमंत्री गिरफ्तार' उपशीर्षक के साथ इस समाचार को छापा।

महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से पत्राचार

गांधीजी—महात्मा गांधी अपनी प्रार्थना सभा में प्रतिदिन प्रवचन करते थे। एक दिन उन्होंने अपने भाषण में कहा—"हिन्दू लोग मेरी प्रार्थना सभा में कुरान का पाठ किये जाने पर क्यों आपत्ति करते हैं, जवकि उनकी उपनिषदों में एक 'अल्लोपनिषद्' भी है।" मैंने गांधीजी को पत्र लिखा कि 'वर्त्तमान में उपलब्ध उपनिषदों में इस नाम की कोई उपनिषद् नहीं है। कृपया उसका अता-पता देकर अनुगृहीत करें।' गांधीजी ने सरल भाव से उत्तर लिखा—"मुझे मेरे एक मित्र ने बताया था कि उसने ऐसा किसी पुस्तक की भूमिका में पढ़ा था।" (खेद है कि गांधीजी का वह पत्र आर्य केन्द्रीय सभा के रिकार्ड में सुरक्षित

नहीं रहा) । मैंने प्रत्युत्तर में उन्हें लिखा कि "आप जैसे महापुरुष को, जिसकी वाणी या लेखनी से निकला एक-एक शब्द महत्त्वपूर्ण होता है, सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करके कुछ नहीं कहना चाहिए ।" इसके पश्चात् मैंने सत्यार्थप्रकाश के आधार पर 'अल्लोपनिषद्' के विषय में वास्तविक जानकारी देते हुए लिखा कि अकबर ने 'दीन इलाही' नाम से एक नया मत चलाया था । हर मत का कोई धर्मग्रन्थ अवश्य होता है । अकबर ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को मान्य मत की स्थापना की थी । इसलिए उस मत के मान्य ग्रन्थ का नाम भी मिला-जुला 'अल्लोपनिषद्' रक्खा । उसकी भाषा भी अरबी-संस्कृत मिश्रित रक्खी गई । इस तथाकथित उपनिषद् को हिन्दुओं की मान्य उपनिषदों में गिनना उचित नहीं है ।

जस्टिस नियोगी—नागपुर हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस एम० बी० नियोगी (केन्द्रीय मंत्री के० सी० नियोगी के भाई) ने महावीर जयन्ती पर भाषण देते हुए कहा कि वेदों में स्वर्ग-प्राप्ति का एक ही मार्ग बताया है और वह है यज्ञ में पशुओं की बलि देना । मैंने पत्र लिखकर उन्हें उन मंत्रों को लिख भेजने के लिए कहा जिनमें ऐसा लिखा है । उन्होंने अपने उत्तर में जैन ग्रन्थों से कुछ उद्धरण लिख भेजे । मैंने प्रत्युत्तर में लिखा कि अपने भाषण में तो आपने यह कहा था कि ऐसा वेदों में लिखा है, परन्तु प्रमाण आप वेदों से न देकर जैन ग्रन्थों से दे रहे हैं । अपराधी तो जैन ग्रन्थ हैं, परन्तु आपने अपराधी घोषित कर दिया वेदों को । एक हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश से इस अन्याय की आशा नहीं की जा सकती ।

आचार्य विनोबा भावे—विनोबाजी ने अपनी लोकप्रिय पुस्तक 'गीता-प्रवचन' में लिख दिया कि एक बार महर्षि वसिष्ठ वाल्मीकि आश्रम में पहुँचे तो आश्रम के छात्रों में चर्चा हुई कि आज हमारे आश्रम में एक दाढ़ीवाला शेर आ रहा है जो हमारी गाय के सद्योजात बछड़े को मारकर खा जाएगा । गीता में इसका प्रसंग न होने पर भी

आचार्य विनोबा भावे के इस लेख का प्रयोजन यह बताना था कि प्राचीन काल में ऋषि-मुनि भी गोमांस खाते थे। मैंने दो बार पत्र लिखकर पूछा कि आपके इस लेख का आधार क्या है ? उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ समय बाद वे पानीपत पहुँचे और वहाँ के खादी आश्रम में ठहरे। मैंने खादी आश्रम के व्यवस्थापक के माध्यम से मिलने का समय माँगा। उन्होंने मिलने से इन्कार कर दिया। तब विवश होकर मैंनें उनके विरोध में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। आचार्य विनोबा भावे के विरोध में सभा का आयोजन आश्चर्यजनक बात थी। सभा में बहुत बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए। अपने दो घण्टे के भाषण में मैंने युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध किया कि ऐसी बात किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं लिखी है। वाममार्ग के ज़माने में लिखे गये केवल एक नाटक के आधार पर इतनी बेहूदा बात कोई समझदार आदमी नहीं लिख सकता। परिणामतः कुछ समय बाद प्रकाशित संस्करणों से यह प्रसंग निकाल दिया गया।

विनोबा भावे स्वभाव से दुराग्रही, अभिमानी तथा पूर्वाग्रहों से युक्त जीव थे। एक बार उन्होंने अपने भाषण में कह दिया—'जो किसी पुस्तक पर विश्वास करता है, वह पन्थ कहाता है, क्योंकि आर्यसमाज एक पुस्तक वेद में आस्था रखता है, इसलिए वह एक पन्थमात्र है। मैंने एक रजिस्टर्ड पत्र में उन्हें लिखा कि यह ठीक है कि आर्यसमाज की वेद में आस्था है, परन्तु यह अन्धविश्वास पर आधारित नहीं है। वैशेषिक दर्शन के रचयिता महान् वैज्ञानिक महर्षि कणाद के शब्दों में 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'—वेद में जो लिखा है, वह बुद्धि की कसौटी पर खरा उतरता है। और महर्षि मनु के अनुसार आर्यसमाज 'यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः।' इसके विपरीत गीता पर आपकी अन्ध श्रद्धा है जो गीता प्रवचन की भूमिका में लिखे आपके इन शब्दों से सिद्ध है—"गीता का और मेरा सम्बन्ध तर्क से परे है। तर्क को काट-

कर श्रद्धा के पंखों से ही मैं गीतागगन में उड़ान भरता हूँ।"

यदि वेद पर बुद्धिपूर्वक आस्था रखने के कारण आर्यसमाज पन्थ है तो गीता पर अन्धश्रद्धा रखनेवाले आपको क्या कहा जाए ?" इस पत्र का उन्होंने उत्तर नहीं दिया।

कन्हैयालाल मुंशी—गुजराती के महान् साहित्यकार तथा सुप्रसिद्ध राजनेता श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने अपनी पुस्तक 'लोपामुद्रा' में वेद और वैदिक आर्यों के जीवन के सम्बन्ध में बेसिर-पैर की अनेक वेहूदा बातें लिख डालीं। पुस्तक की भूमिका में उन्होंने यह भी लिख दिया कि इस पुस्तक में मैंने जो कुछ लिखा है, ऋग्वेद के आधार पर लिखा है। मैंने पत्र लिखकर उनसे पूछा कि ऋग्वेद के किन मन्त्रों में ये सब बातें लिखी हैं तो उन्होंने अपने पत्र दिनांक २।२।५० के द्वारा मुझे सूचित किया कि मैंने जो कुछ लिखा है, वह वेदों के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के विचारों के आधार पर लिखा है। मैंने प्रत्युत्तर में उन्हें लिखा कि आपकी लिखी एक पुस्तक है—'Creative Art of life.' उसमें आपने लिखा है—"Westernism has taught us false values." अर्थात् पाश्चात्य लोगों ने हमें जो कुछ बताया है, झूठ है। इसके आगे स्वामी दयानन्द के विषय में आपने लिखा है—"Dayanand was learned beyond the measure of man." अर्थात् दयानन्द की विद्वत्ता का कोई पार नहीं पा सकता, परन्तु जब आप पुस्तकें लिखते हैं तो दयानन्द की बजाए पाश्चात्य विद्वानों के आधार पर लिखते हैं। ऐसा क्यों ? श्री मुंशी ने उत्तर दिया कि इस विषय में किसी दिन आपसे मिलकर विचार करूँगा। पर ऐसा अवसर आने से पहले ही उनका निधन हो गया।

बाबू सम्पूर्णानन्द—उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री, महान् शिक्षाविद् और उच्च कोटि के विद्वान् बाबू सम्पूर्णानन्दजी ने एक पुस्तक लिखी 'गणेश'। इसमें उन्होंने यजुर्वेद के २३वें अध्याय के १९वें मंत्र 'गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे' इत्यादि को उद्धृत करके उसका

महीधरकृत अर्थ प्रस्तुत करते हुए लिखा कि यह अर्थ बड़ा ही अश्लील और वेहूदा है, किन्तु क्या करें, दूसरा कोई अर्थ है भी तो नहीं। मैंने उन्हें इस मंत्र का वास्तविक अर्थ लिखकर बताया कि इस मंत्र में राष्ट्रपति पद के लिए अपेक्षित गुणों का वर्णन किया गया है। अपने पत्र दिनांक १५ फ़रवरी, १९५१ में सम्पूर्णानन्दजी ने स्वीकार किया कि आपका किया अर्थ भी हो सकता है, परन्तु इसके साथ ही उन्होंने यह भी लिखा कि यहाँ मैंने महीधरकृत अर्थ को जान-बूझकर लिखा है। सनातनधर्मी (पौराणिक) लोग इस मंत्र से गणेशपूजन करते हैं। इस अर्थ को प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य उन्हें यह बताना है कि इस मंत्र में तुम्हारे सूँडवाले गणेश का उल्लेख नहीं है और यह तुम्हारे मान्य वेदभाष्यकार महीधरकृत अर्थ से स्पष्ट है।

विषयान्तर करके सम्पूर्णानन्दजी अपने उक्त पत्र में इतना और लिख गये कि "मैं ऐसा मानता हूँ कि वैदिककाल में मद्य-मांस आदि का प्रयोग होता था। पशुबलि भी होती थी।" अजमेर में १९६६ में दीवाली के अवसर पर हुए ऋषि मेले में परोपकारिणी सभा ने वेद सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए इन्हीं सम्पूर्णानन्दजी को आमंत्रित किया था, क्योंकि उस समय वे राजस्थान के गवर्नर थे। परोपकारिणी सभा समय पर राजनीतिक लाभ उठाने की आशा में महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का खून करने में संकोच नहीं करती।

एक सफल प्रयोग—समाज के बुद्धिजीवी वर्ग, राजनेताओं तथा आर्यसमाजेतर प्रमुख पुरुषों आदि का आर्यसमाज से कोई सम्पर्क नहीं होता। वे न हमारे साप्ताहिक सत्संगों में आते हैं, न वार्षिकोत्सवों में और न विशेष समारोहों में। जिन एक-दो विशिष्ट व्यक्तियों को हम कहीं अध्यक्षता, उद्घाटन आदि के लिए बुलाते हैं, केवल वे ही आते हैं और अपनी बात कहकर चले जाते हैं। ऐसे लोगों के उन्हीं के स्तर के अनुरूप किसी विशेष आयोजन में आने की आशा हो सकती है। इस उद्देश्य से एक बार ऋषिबोधोत्सव से एक दिन पूर्व महर्षि दयानन्द

के जन्मदिन के नाम पर कंस्टीट्यूशन क्लब में एक चाय पार्टी का आयोजन किया गया। यह ऐसा स्थान था जहाँ संसत्सदस्य प्रायः आते रहते थे। यद्यपि इस समारोह का सारा व्यय आर्य केन्द्रीय सभा ने वहन किया, इसके लिए भेजे गये निमंत्रण-पत्र पर आमंत्रित करनेवाले १५ व्यक्ति भी उसी स्तर के—मंत्री—संसत्सदस्य आदि—थे। आर्यसमाजियों में से भी जस्टिस मेहरचन्द महाजन, देशवन्धु गुप्त, इन्द्र विद्यावाचस्पति, हंसराज गुप्त जैसे व्यक्तियों के नाम थे जिनकी आर्यसमाजेतर क्षेत्रों में भी मान्यता थी। सभा का मंत्री होने के नाते मेरा नाम केवल संयोजक के रूप में था। सभा की अध्यक्षता श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने की थी। जिस वर्ग या स्तर के लोगों को हम चाहते थे, वे काफ़ी संख्या में उपस्थित थे। श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, रामचन्द्र देहलवी, देशवन्धु गुप्त और गंगाप्रसाद उपाध्याय जैसे सुलझे हुए विद्वान् नेताओं के ही भाषण कराये गये। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री आयंगरजी ने कहा था कि किसी आर्यसमाजी को सामने से आता देख मेरा सिर उसके चरणों में झुक जाता है, क्योंकि यदि महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना न की होती तो मैं अनन्तशयनम् की जगह नूर इलाही या मुहम्मद अली होता।

हर दृष्टि से यह कार्यक्रम सफल रहा। हिन्दी और अंग्रेज़ी के दैनिक पत्रों ने भी उसकी कार्यवाही को प्रमुखता से छापा। इसके बाद मैं पानीपत चला गया। बाद में होनेवाले आयोजनों का स्तर गिरा, इसके लिए आयोजकों के सिवाय किसे दोष दिया जा सकता है? इस बार (१९८८ में) मेरे एतद्विषयक सुझाव पर विचार करके निश्चय हुआ कि स्वामीजी का जन्मदिन M.D.H. की फ़ैक्टरी में मनाया जाए। कहाँ से कहाँ पहुँच गये हम!

सरदार पटेल का निधन—जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, दयानन्द निर्वाणोत्सव पर दिया गया भाषण सरदार पटेल के जीवन का अन्तिम भाषण था। दिल्ली में उनके निधन पर हुई शोकसभा उनके

महान् व्यक्तित्व के अनुरूप थी। आर्यसमाज की ओर से सरदार पटेल को श्रद्धांजलि देने के लिए मुझे आमंत्रित किया गया।

महात्मा गांधी की हत्या—३० जनवरी, १९४८ को गांधीजी की हत्या हुई। तत्काल यह ख़बर फैल गई कि उन्हें किसी राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ के आदमी ने मारा है। इसलिए जनता का क्रोध संघ के विरुद्ध भड़क उठा। अहमदाबाद में एक आर्यसमाज मन्दिर के बाहर आर्य वीर संघ का बोर्ड लगा था। उसमें 'संघ' शब्द को देखते ही लोगों ने आर्यसमाज मन्दिर को आग लगा दी। उन दिनों महात्मा नारायण स्वामीजी सार्वदेशिक सभा के प्रधान थे। मैं उपमंत्री था। स्वामीजी ने इस घटना की जाँच के लिए मुझे अहमदाबाद भेजा। मैंने वहाँ के पुलिस कमिश्नर से उनके निवास स्थान पर भेंट की। बात-चीत के प्रसंग में मैंने उनसे कहा—आखिर आपकी कोई Conscience भी है? कमरे में एक खूँटी पर उनकी पेटी टँगी हुई थी। उसकी ओर संकेत करते हुए वे बोले—इस समय मेरी पेटी खूँटी पर टँगी हुई है और मेरी Conscience मेरे पास है। जब ड्यूटी पर जाता हूँ तो पेटी उतारकर पहन लेता हूँ और उसकी जगह Conscience को खूँटी पर टाँग देता हूँ। घर लौटने पर शाम को फिर बदल लेता हूँ। कुछ ऐसा ही उत्तर आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व भीष्म पितामह ने दिया था—'अर्थस्य पुरुषो दासः'।

स्वराज्य दर्शन—१९४७ में मेरी पहली पुस्तक 'स्वराज्य दर्शन' के नाम से प्रकाशित हुई। सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड द्वारा प्रकाशित यह पहली पुस्तक थी। जिसके प्रकाशन का व्यय भी मैंने ही वहन किया था। तत्कालीन सभा मंत्री श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने उसकी भूमिका में लिखा था—'जिस समय (१९४६ में) दीक्षितजी ने यह पुस्तक लिखी थी उस समय स्वराज्य दरवाजे में से झाँक रहा था, भीतर नहीं आया था।' इस पुस्तक में महर्षि दयानन्द के राज-नीति सम्बन्धी विचारों को संस्कृत में सूत्रबद्ध करके उन्हीं के ग्रन्थों में

उपलब्ध उद्धरणों के आधार पर हिन्दी में उनकी व्याख्या की गई थी। परिशिष्टों में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के देश की स्वाधीनता आन्दोलन में योगदान पर प्रकाश डाला गया था। महात्मा नारायणस्वामी, श्री घनश्यामसिंह गुप्त, स्वामी स्वतंत्रानन्दजी, राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री (स्वामी ध्रुवानन्द), पं० हरिदत्त शास्त्री नवतीर्थ तथा पं० बिहारीलाल शास्त्री ने इस पुस्तक की वहुत अधिक प्रशंसा की। पं० बिहारीलाल शास्त्री के अनुसार "चाणक्य के अर्थशास्त्र के वाद संस्कृत में इस विषय का यह पहला मौलिक ग्रन्थ था।" श्री उपाध्यायजी के शब्दों में "श्री दीक्षितजी की यह पुस्तक बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के लिए उपयोगी है, क्योंकि यह ऋषि दयानन्द के परिपक्व विचारों के आधार पर लिखी गई है।" स्वामी स्वतंत्रानन्दजी ने लिखा था—"मैं आशा करता हूँ कि दीक्षितजी इसी प्रकार महर्षि के भावों पर और पुस्तक लिखने का यत्न करेंगे।" डा० हरिदत्त शास्त्री ने लिखा—"यद्यपि इस विषय पर औरों ने भी लिखा है, पर ऐसा सुन्दर विवेचन हमें कहीं देखने को नहीं मिला।"

इस सवसे मेरा उत्साह बढ़ा, यद्यपि उसका प्रतिफल पर्याप्त समय वाद सामने आया।

सन् १९५० में डा० राजेन्द्रप्रसाद भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। २६ जनवरी को उनका—स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति का—स्वतंत्र भारत की राजधानी में जुलूस निकलना था। १५ जनवरी को सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा की बैठक हुई। उसमें निश्चय हुआ कि सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास के आधार पर वैदिक राजनीति का एक ग्रन्थ हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में तैयार किया जाए और जिस समय राष्ट्रपति का जुलूस चाँदनी चौक में से गुज़रे तब आर्यसमाज दीवान हाल के निकटस्थ मोती सिनेमा के पास सार्वदेशिक सभा के प्रधान पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति राष्ट्रपति को भेंट करें। तदनन्तर इसकी एक-एक प्रति लोकसभा तथा राज्यसभा के

भी हैं, परन्तु वे आर्यसमाज से दूर हटकर बैठे हैं। तिकड़म के सहारे वोट बटोरकर आनेवाले वे नहीं हैं। ठकुरसुहाती कहनेवाले भी वे नहीं हैं। स्वतंत्र चिन्तनवाले इन लोगों को तो निहोरे करके लाना होगा। कोई भी समझदार व्यक्ति इस कीचड़ में पैर रखने के लिए आसानी से तैयार नहीं होगा।

सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा का सदस्य तो मैं बरसों रहा। पाँच वर्ष तक सहायक मंत्री रहा। उन दिनों सहायक मंत्री रहने पर मुझे गर्व है। जब महात्मा नारायणस्वामी या पं० इन्द्र विद्या-वाचस्पति जैसे प्रधान हों और पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जैसे मंत्री हों तो उनका सहायक होना भी गौरव की बात थी। आज की स्थिति में मैं मंत्री या प्रधान होने में भी गौरवान्वित अनुभव नहीं करूँगा। किनका प्रधान ? बताने में भी लाज लगेगी।

सन् १९५५ में बाबू कालीचरणजी मंत्री बने। लाला रामगोपाल-जी रह गये। जहाँ तक मेरी जानकारी है, सार्वदेशिक सभा के इतिहास में पहली बार वोटिंग हुआ। जब मैंने इस बात की चर्चा पं० इन्द्रजी से की तो वे बोले—अब तो यह होता ही रहेगा। एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। फिर प्रधान भी मतदान से बनने लगा। चुनाव अब भी होता है। पहले प्रति वर्ष होता था, अब तीन और कभी-कभी चार वर्ष में होता है। यह तीन वर्ष का समय अगले चुनाव की तैयारी में लगता है। देशभर में तीन वर्ष तक घूम-घूमकर वोट सुनिश्चित करने और तदर्थ अपेक्षित उचित-अनुचित साधन अपनाने का साहस हर कोई कैसे जटा सकता है ? परिणामतः चुनाव तमाशा बनकर रह गया है। पहले सभाएँ अपना-अपना चुनाव अपने आप कर लेती थीं। अब अभीष्ट फल की उपलब्धि के लिए प्रायः शिरोमणि सभा के प्रधान ही सर्वत्र जा-जाकर चुनाव कराते हैं, और उनकी परिणति अदालतों में जाकर होती है।

३१ मार्च, १९७८ को प्रो० शेरसिंह की कोठी पर एक मीटिंग

हुई जिसमें कई प्रान्तीय सभाओं के प्रमुखों ने भाग लिया। अधिसंख्य लोगों का विचार था कि लाला रामगोपाल प्रधान न बन पाएँ, चाहे अन्य कोई भी बन जाए। इसके लिए उन्होंने कुछ तैयारी भी कर रक्खी थी। मैं लाला रामगोपालजी को आर्यसमाज की शिरोमणि सभा के प्रधान पद के योग्य नहीं मानता। इसलिए यहाँ तक तो मैं उनके साथ सहमत था कि वह न बनें, किन्तु अन्य चाहे कोई बन जाए—इस अंश से सहमत नहीं था। मैं परिवर्त्तन की खातिर परिवर्तन नहीं चाहता था। रामगोपालजी से बेहतर आदमी को लाने के उद्देश्य से परिवर्त्तन चाहता था, उससे घटिया को नहीं। मेरा सुझाव था कि पहले सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद के लिए अपेक्षित योग्यताएँ निर्धारित कर ली जाएँ। फिर जो भी उस कसौटी पर पूरा उतरे, ऐसे किसी व्यक्ति को प्रधान चुना जाना चाहिए, परन्तु अधिसंख्य लोगों को यह स्वीकार्य नहीं था। मेरा बल योग्यता पर था, जबकि उनका आग्रह व्यक्तिविशेष के लिए था। वे लोग बार-बार मुझसे किसी नाम को प्रस्तुत करने का अनुरोध कर रहे थे। अन्ततः मैंने स्वामी सत्यप्रकाशजी का नाम प्रस्तुत किया। अधिकांश लोगों का मत था कि स्वामी सत्यप्रकाशजी रामगोपाल से टक्कर नहीं ले सकेंगे। वह निश्चित रूप से हारेंगे। जीतने के ख़याल से श्री ओम्प्रकाश त्यागी उपयुक्त रहेंगे। 'जिस संगठन में स्वामी सत्यप्रकाश जैसे विद्वान् व्यक्ति से रामगोपाल जैसा घटिया आदमी जीत जाएगा, ऐसे घटिया संगठन में मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है', यह कह मैं वहाँ से उठ गया। मैंने अगले दिन होनेवाले चुनाव में भाग लेने से इन्कार कर दिया। साथ ही यह भी घोषणा कर दी कि जिस समाज में योग्यता और चरित्र से तिकड़म बड़ी है, जहाँ चतुर्वेदभाष्यकार की तुलना में चौधरी कसरतराय बड़े हैं, उस समाज का मैं परित्याग करता हूँ। मैंने तत्काल सार्वदेशिक सभा, हरियाणा प्रतिनिधि सभा और आर्यसमाज पानीपत की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। जैसी कि आशंका थी, रात्रि में

११ बजे के लगभग रामगोपालजी और ओम्प्रकाश त्यागी में पूर्व की भाँति समझौता हो गया। अगले दिन हुए चुनाव में असन्तुष्ट वर्ग ने श्री रघुवीरसिंह शास्त्री को खड़ा किया। तीन वर्ष तक वोट बटोरने में व्यस्त लालाजी एक रात की तैयारीवाले शास्त्रीजी से मात्र २५ वोटों से जीत सके। जीत तो गये, किन्तु लालाजी की सर्वसम्मति की पोल खुल गई।

आजीवन सदस्यता—सार्वदेशिक सभा की नियमावली के अनुसार प्रान्तीय सभाओं से चुनकर आये हुए प्रतिनिधियों को ५ प्रतिष्ठित सदस्यों को सहयुक्त (co-opt) करने का अधिकार है। एक बार जो ५ नाम प्रस्तुत हुए उनमें एक नाम स्वामी आत्मानन्दजी का था। उनके मुकाबले पर एक वकील साहब चुने गये जो तत्कालीन सभा प्रधानजी के लिए बड़े उपयोगी थे। यद्यपि स्वामी आत्मानन्दजी को इसका तनिक भी मलाल नहीं था—वे तो वीतराग थे, परन्तु एक तपस्वी विद्वान् की इस उपेक्षा से मुझे मर्मान्तिक पीड़ा हुई। इसी के साथ मेरा ध्यान सभा की नियमावली की उस धारा की ओर गया जिसके अनुसार कोई व्यक्ति पाँच सौ रुपये देकर सभा का आजीवन सदस्य बन सकता था। येन-केन प्रकारेण लाखों-करोड़ों रुपये कमाकर उनमें से मात्र पाँच सौ रुपये देकर कोई सभा पर सदा के लिए अधिकार कर सकता है, किन्तु निःस्वार्थ भाव से सारा जीवन समाज को सर्वात्मना समर्पित त्यागी और तपस्वी मूर्धन्य विद्वान् हेय समझा जाता है, यह स्थिति मेरे लिए असह्य थी। इस धारा को निरस्त किये जाने के उद्देश्य से एक टैस्ट केस बनाने की दृष्टि से मैंने एक प्रार्थना-पत्र सभा प्रधान राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री को दिया। मैंने लिखा था—

१. मैंने एक पुस्तक 'स्वराज्य दर्शन' सभा को लिखकर दी और उसकी छपाई पर हुआ सम्पूर्ण व्यय भी मैंने दिया। बदले में कुछ नहीं लिया।

२. सभा की ओर से राष्ट्रपति को भेंट की जानेवाली दो पुस्तकें

हिन्दी और अंग्रेजी में १० दिन में तैयार करके दीं। बदले में कुछ नहीं लिया।

३. वर्ष-भर में कम से कम ५० व्याख्यान देता हूँ। यह काम मैं वर्षों से करता आ रहा हूँ। कभी कहीं से एक पैसा नहीं लिया।

४. कई वर्षों से दरियागंज से बलिदान भवन प्रतिदिन नियमित रूप से आकर सभा के स० मंत्री के रूप में कार्य करता आ रहा हूँ। कभी एक पैसा नहीं लिया।

इस सबका मूल्य ५०० रुपये मानकर मुझे सभा का आजीवन सदस्य स्वीकार कर लिया जाए।

इसके उत्तर में मुझे सूचित किया गया कि नियमानुसार ५०० रुपये नकद आना आवश्यक है।

जीवन-भर तन-मन की पूरी पूँजी लगाकर महामनाओं ने आर्य-समाज की जो प्रतिष्ठा बनाई थी हमने उसे मात्र ५०० रुपये में लक्ष्मीपुत्रों के पास गिरवी रख दिया। इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष मैंने जारी रक्खा। अन्ततः भविष्य के लिए इस नियम को समाप्त कर दिया गया।

□

खण्ड ३—पानीपत में

सन् १९५४ में मेरी नियुक्ति आर्य कालिज पानीपत में हो गई जहाँ मैं १९७४ तक रहा। दिल्ली में अनेक संस्थाओं से जुड़ा होने के कारण प्रारम्भिक कुछ वर्षों में मेरा एक पाँव दिल्ली में तो दूसरा पानीपत में रहा। १९५६ तक आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली का मंत्री भी बना रहा। धीरे-धीरे दिल्ली से सम्पर्क कम होता गया और पानीपत में व्यस्तताएँ बढ़ती गईं। १९५४ में मेरी नियुक्ति प्राध्यापक के पद पर हुई थी। १९५५ में मैं उपाचार्य बना। दिल्ली में रहते सार्वजनिक सभाएँ व सम्मेलन आयोजित करने का अभ्यास हो गया था। एक दिन दिल्ली आया और श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन को कालिज में आने का निमंत्रण दे बैठा। टण्डनजी ने मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया। पानीपत लौटकर मैंने इसकी सूचना कालिज के प्रिंसिपल श्री सुन्दरदास मल्होत्रा को दी। मल्होत्राजी चिन्ता में पड़ गये। वस्तुतः वे सरकारी सर्विस में और वह भी एक देसी रियासत (जम्मू-कश्मीर) में रहे थे। सार्वजनिक जीवन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा था और स्वयंसेवी संस्थाओं में कार्य करने का अनुभव भी उन्हें नहीं था। टण्डनजी उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष थे। मल्होत्राजी कहने लगे कि टण्डनजी के नाम पर तो लाखों आदमी आ जाएँगे। उन्हें कौन, कैसे सँभालेगा? उन्होंने बताया कि जम्मू या श्रीनगर में जब कालिज में कोई समारोह होता था तो आमंत्रित किये जानेवाले व्यक्तियों की सूची महाराजा हरिसिंह को भेजी जाती थी। वहाँ से स्वीकृति आने

पर लोगों को निमंत्रण-पत्र भेजे जाते थे। यदि बाद में दो नाम और याद आते थे तो फिर स्वीकृति के लिए भेजे जाते थे। इस प्रकार उन्हें कुछ सौ अर्थात् सैकड़ों व्यक्तियों तक की व्यवस्था का अनुभव था। लाखों की कल्पना करके उनका घबरा जाना स्वाभाविक था। उधर मुझे होशियारपुर में डेढ़ लाख तक की भीड़ को सँभालने का अनुभव था। मुझे वह खेल लगता था, परन्तु मैं प्रिंसिपल महोदय को आश्वस्त न कर सका। मेरे लिए टण्डनजी को आने से रोकना कठिन था। यह काम उन्होंने अपने ज़िम्मे ले लिया।

१९५६ में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का वार्षिक अधिवेशन रोहतक में हुआ जिसके फलस्वरूप निरन्तर ७० वर्ष से चला आ रहा पंजाब का एकाधिकार समाप्त हो गया और पंजाब सभा हरियाणा-वालों के हाथों में आ गई। पंजाब के एकाधिकार का अर्थ था कि उन ७० वर्षों में पंजाब सभा में हरियाणा का कोई व्यक्ति कभी अधिकारी नहीं बना था। कभी-कभी अन्तरंग सभा के ३५ सदस्यों में एक हरियाणा का हो जाता था। हरियाणावालों के हाथ में सभा के आने पर पंजाबवालों का हिस्सा बना रहा तथापि कुल मिलाकर हरियाणावालों का हाथ ऊपर रहा। रोहतक के अधिवेशन में स्वामी आत्मानन्दजी प्रधान और स्वामी वेदानन्दजी मंत्री निर्वाचित हुए। रायबहादुर दीवान बद्रीदास उपप्रधान बनाये गये और वीरेन्द्रजी उपमंत्री। वीरेन्द्रजी इससे पहले मंत्री रहे थे। उपमंत्री बनना उन्हें अपने तईं अपमानजनक लगा। महाशय कृष्ण के सहयोगी श्री चरणदास पुरी बड़े गम्भीर और दूरदर्शी व्यक्ति थे। उन्होंने वीरेन्द्रजी को समझाने का प्रयास किया कि ये दोनों संन्यासी हैं—विद्वान् वक्ता हैं। उपदेशक होने के कारण ये लोग प्रायः बाहर रहेंगे। स्वामी आत्मानन्द-जी के बाहर रहने से जालन्धर में बैठे दीवान बद्रीदास प्रधान का काम करेंगे। इसी प्रकार स्वामी वेदानन्दजी के बाहर रहने से तुम मंत्री का काम सँभालोगे। सभा तुम्हारे ही हाथ में रही चलेगी,

किन्तु वीरेन्द्रजी के अहम् को यह स्वीकार न हुआ। इसकी परिणति अन्ततः १९७५ में पंजाब सभा के त्रिशाखन—पंजाब, हरियाणा और दिल्ली—के रूप में हुई।

स्वामी वेदानन्दजी ने मुझे पानीपत के आर्य गर्ल्स हाई स्कूल का प्रधान नियुक्त किया। मेरी पत्नी उन दिनों वहाँ संस्कृताध्यापिका थीं। प्रबन्ध समिति का प्रधान बनते ही मैंने उनसे त्यागपत्र दिलवा दिया। संस्कृताध्यापिका मिलना बड़ा कठिन था। इसलिए जब तक (कई मास तक) नहीं मिली तबतक वह अवैतनिक रूप से कार्य करती रहीं।

हिन्दी सत्याग्रह

पंजाब में कांग्रेस का शासन था। सरदार प्रतापसिंह कैरों मुख्य-मंत्री थे। पंजाब की बहुसंख्यक जनता की लिखने-पढ़ने की भाषा हिन्दी थी, परन्तु सरकार द्वारा स्वीकृत भाषा योजना के अन्तर्गत हिन्दी की उपेक्षा करके पंजाबी को बलात् थोपा जा रहा था। इस कारण पंजाब भर में, विशेषतः पंजाब के हिन्दुओं में और हरियाणा प्रदेश की सारी जनता में व्यापक रोष था। इस अन्याय का प्रतिकार करने के लिए स्वामी आत्मानन्दजी की अध्यक्षता में पंजाब हिन्दी रक्षा समिति का गठन करके उसके द्वारा सत्याग्रह करने का निश्चय किया गया। मैं इस समिति के प्रमुख सदस्यों में था। जब पत्राचार और बातचीत का कोई परिणाम न निकला तो अन्तिम निश्चय करने के लिए पंजाब हिन्दी रक्षा समिति की एक महत्त्वपूर्ण बैठक आर्य-समाज, अड्डा होशियारपुर, जालन्धर में बुलाई गई। निर्णय हो जाने पर समिति के प्रवक्ता के रूप में उसकी घोषणा करने का काम मुझे सौंपा गया। बाहर भारी भीड़ जमा थी। जैसे ही मैं अकेला बाहर मंच पर पहुँचा, लोगों को आभास हो गया कि निर्णय हो गया है और दीक्षितजी उसकी सूचना देने के लिए आये हैं। चारों ओर शान्ति छा

गई, किन्तु यह शान्ति देर तक न रह सकी। मैंने महाभारत के युद्ध के सन्दर्भ में कुन्ती द्वारा अपने पुत्रों को भेजे गये सन्देश के इतने ही शब्द कहे थे—'यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः' (जिस दिन के लिए क्षत्राणी पुत्र जनती है वह दिन आ गया है) कि हिन्दी में इसके अनुवाद की प्रतीक्षा किये बिना ही चारों ओर उत्साह की लहर दौड़ गई। तब उस तुमुल नाद के बीच आगे अपनी पूरी बात कहना मुश्किल हो गया।

इस निर्णय के अनुसार ५ मई, १९५७ को एक सद्भावना मिशन स्वामी श्री आत्मानन्दजी के नेतृत्व में अम्बाला से चण्डीगढ़ के लिए रवाना हुआ। उनके साथ जानेवाले ४ अन्य संन्यासी महानुभाव थे—सर्वश्री महात्मा आनन्द स्वामी, महात्मा आनन्दभिक्षु, स्वामी विज्ञानानन्द तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी। मुझे पर्यवेक्षक के रूप में साथ भेजा गया। अम्बाला से चण्डीगढ़ तक रास्ते में जगह-जगह भारी संख्या में उपस्थित जनता ने मिशन का स्वागत किया। ११ बजे के लगभग हम लोग चण्डीगढ़ पंजाब सरकार के सचिवालय में पहुँचे। तबतक वर्त्तमान विधान सभा, सचिवालय आदि के भवन नहीं बने थे। इंजीनियरिंग कालिज की बिल्डिंग में सचिवालय चलता था। हमारे वहाँ पहुँचने की सूचना पाकर मुख्यमंत्री सरदार प्रतापसिंह कैरों बाहर आये और चरणस्पर्श करके स्वामी आत्मानन्दजी को प्रणाम किया। बाहर लान में शामियाना लगा हुआ था जिसके नीचे बैठने की समुचित व्यवस्था थी। दिन-भर बैठे रहने पर भी सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं की। परिणामतः शाम को हम अम्बाला लौट आये।

१९ मई को सार्वदेशिक सभा के साधारण अधिवेशन में इस विषय को विचारार्थं प्रस्तुत किया गया। सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित 'सार्वदेशिक सभा के निर्णय' नामक पुस्तक में इस विषय में लिखा है—

"पंजाब में हिन्दी समस्या का विषय प्रस्तुत हुआ···पर्याप्त विचार

और विवाद के पश्चात् श्रीयुत लक्ष्मीदत्तजी दीक्षित ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया—

"सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में हिन्दी के साथ हो रहे अन्यायपूर्ण व्यवहार पर चिन्ता प्रकट करती है। हिन्दी पंजाब की बहुसंख्यक जनता की मातृभाषा होने के साथ-साथ उसकी धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक प्रेरणा का स्रोत है, अतः पंजाब की भाषा योजना वहाँ की जनता की धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता पर कुठाराघात है।

राष्ट्रभाषा होने के कारण देश के किसी भी भाग में हिन्दी पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध समूचे राष्ट्र का अपमान है, अतः पंजाब की भाषा योजना सर्वथा अराष्ट्रिय एवं अप्रजातांत्रिक है। इतना ही नहीं, संविधान की अनेक धाराओं के विरुद्ध होने के कारण यह योजना राष्ट्रवासियों के धार्मिक अधिकारों में हस्तक्षेप है और सभी देशभक्तों के लिए खुली चुनौती है। राष्ट्रियता पर साम्प्रदायिकता की विजय की प्रतीक इस योजना के विरुद्ध सभी राष्ट्रिय तत्त्वों का संगठित होना आवश्यक है।

यह सभा पंजाब हिन्दी रक्षा समिति द्वारा इस अन्याय के प्रतिकार के लिए किये गये अब तक के प्रयत्नों की सराहना करती है तथा शान्तिपूर्ण उपायों के असफल हो जाने पर उसके ५ मई, १९५७ के सद्भावना यात्रा विषयक निश्चय का स्वागत करती है। और देश के सभी न्यायप्रिय नागरिकों, विशेषतः आर्यसमाजियों, से अपील करती है कि वे हिन्दी रक्षा समिति पंजाब द्वारा हिन्दी की रक्षार्थ किये जानेवाले इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए तन-मन-धन से पूरी सहायता करें।

यह सभा हिन्दी रक्षा समिति को विश्वास दिलाती है कि उसे इस पुण्य कार्य में इस सभा तथा उससे सम्बद्ध देश-विदेश की सभी प्रतिनिधि सभाओं का हर प्रकार का सहयोग प्राप्त होगा और

आवश्यकता पड़ने पर यह सभा इस आन्दोलन का संचालन स्वयं अपने हाथों में लेने को तैयार होगी।

इस सभा की ओर से इस आन्दोलन की गतिविधि को देखने और सभा को तद्विषयक परामर्श देने के लिए एक समिति नियुक्त की जाए।

श्रीयुत पं० भीमसेन विद्यालंकार ने इस प्रस्ताव पर निम्नलिखित संशोधन प्रस्तुत किया—

"१. सार्वदेशिक सभा पंजाब की भाषानीति के सम्बन्ध में विचार करने के लिए नियत उपसमिति की रिपोर्ट का समर्थन करती है और पंजाब के हिन्दी प्रेमियों की प्रतिनिधि हिन्दी रक्षा समिति द्वारा उपस्थित की गई सात माँगों का समर्थन करती है।

२. यह सभा वर्त्तमान रीजनल फ़ार्मूले का विरोध करती है, क्योंकि इसके द्वारा भाषा के आधार पर पंजाब को विभक्त किया गया है। इस निर्णय के कारण पंजाब की हिन्दी प्रेमी जनता को ज़बरदस्ती शासन प्रबन्ध तथा भाषा पार्थक्य के रूप में थोपा जाना अनुचित है।

इसलिए यह सभा केन्द्रीय सरकार से साग्रह निवेदन करती है कि पंजाब सरकार को इस स्थिति को बदलने के लिए प्रेरित करे, क्योंकि अनेक अनुनय-विनय करने पर भी कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला, इसलिए लाचार होकर हिन्दी रक्षा समिति को सद्भावना यात्रा का निश्चय करना पड़ा।

यह सभा पंजाब तथा भारत की हिन्दी प्रेमी जनता से साग्रह अनुरोध करती है कि वह इस आन्दोलन का तन, मन, धन से समर्थन करे और इस आन्दोलन के सर्वाधिकारी के आदेशों का पालन करने का संकल्प करे।"

परन्तु इसका समर्थन न होने से इसपर विचार न किया जा सका और दीक्षितजी का प्रस्ताव पास हुआ।

यह भी निश्चय हुआ कि इस समिति को नियुक्त करने का अधिकार अन्तरंग सभा को दिया जावे।"

इस प्रस्ताव के अनुसार अन्तरंग सभा ने श्री घनश्यामसिंह गुप्त की अध्यक्षता में 'सार्वदेशिक भाषा स्वातंत्र्य समिति' बना दी। इस समिति के १७ सदस्य थे, जिनमें एक मैं भी था। इसके बाद हिन्दी आन्दोलन का संचालन इस समिति के द्वारा होने लगा, तथापि पंजाब हिन्दो रक्षा समिति को भंग नहीं किया गया। मुझे पंजाब, उत्तर प्रदेश व विहार में संगठन और प्रचार का काम सौंपा गया। एक दिन मैं इसी निमित्त पठानकोट गया हुआ था। किसी के मकान पर गुप्त बैठक हो रही थी। पता चला कि श्री आनन्द स्वामी और महाशय कृष्ण को गिरफ़्तार करके पठानकोट के रास्ते धर्मशाला ले जाया जा रहा है। उत्सुकतावश कुछ स्थानीय लोगों के साथ मैं भी वहाँ जा पहुँचा जहाँ उन्हें ले-जानेवाली गाड़ी रुकी खड़ी थी। गाड़ी में बैठे पुलिसवाले कह रहे थे—और तो सब पकड़े गये, पर दीक्षितजी पकड़ में नहीं आये। महात्मा आनन्द स्वामीजी ने बाहर खड़े मुझे देखा और धीरे से मुस्करा दिये।

काफ़ी दिनों बाद मुझे दिल्ली में चाँदनी चौक स्थित एक बैंक से बड़े नाटकीय ढंग से गिरफ़्तार किया गया। गिरफ़्तार करके मुझे कार द्वारा गुड़गावाँ जेल में ले-जाया जा रहा था। उस समय कार में पिछली सीट पर मेरे दोनों ओर पिस्तौल सहित एक-एक सिपाही बैठा था। आगे भी ड्राइवर के बराबरवाली सीट पर इसी प्रकार एक सिपाही बैठा था। बाद में पता चला कि ड्राइवर भी बिना वर्दी का हथियारबन्द पुलिस का अपना ही आदमी था। यह सब इसलिए हुआ कि बिहार से पंजाब सरकार को मिली सी० आई० डी० की रिपोर्ट के अनुसार मुझे निहायत ख़तरनाक आदमी समझा गया था। कैरों सरकार का तख्ता पलटने की चेष्टा करने के अपराध में मुझे नज़रबन्द किया गया था। अगले दिन शाम को मुझे गुड़गावाँ जेल से

अम्बाला सेण्ट्रल जेल में भेज दिया गया। दिल्ली स्टेशन पर मेरे परिवार के लोग भी खाना और आवश्यक सामान लेकर पहुँचे हुए थे। अपने परिजनों के साथ मैं अम्बाला जानेवाली गाड़ी में बैठने के लिए पुल पर से गुज़र रहा था। पुलिस का कोई आदमी साथ में नहीं था। अचानक पं० बुद्धदेव विद्यालंकार मिल गये। वे आश्चर्यचकित थे। बोले—आज सुबह के अख़बार में तो छपा है कि तुम गिरफ़्तार हो गये हो। तब तुम यहाँ इस प्रकार कैसे ? मैंने कहा कि आपने ठीक पढ़ा। इस समय मैं पुलिस की हिरासत में हूँ। सिपाही गाड़ी में मेरे सोने की व्यवस्था करने आगे चले गये हैं। बात यह थी कि मुझे ले-जानेवाले सिपाहियों में एक सिपाही ऐसा था जिसका यज्ञोपवीत स्वामी श्रद्धानन्दजी ने कराया था। उसे विश्वास था कि एक आर्य-समाजी, और वह भी एक कालिज का प्रोफ़ेसर, धोखा देकर भागेगा नहीं। इस विश्वास के साथ वह और उसका साथी मुझे अपने परिजनों के साथ छोड़कर निश्चिन्त होकर चले गये थे। प्रो० शेरसिंह और रोहतक के प्रसिद्ध राष्ट्रिय नेता पं० श्रीराम शर्मा कैरों मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र देकर सत्याग्रह आन्दोलन में शामिल हुए थे। शर्माजी जेलमंत्री थे। पटियाला जेल में हम एक ही बैरक में बन्द थे। एक दिन मैंने उनसे मज़ाक में कहा—शर्माजी, यहाँ आना था तो त्यागपत्र देने से पहले इस वार्ड को तो सब सुविधाओं से युक्त करवा लेते जिससे हम-आप यहाँ ज़रा आराम से रह पाते।

बातों-बातों में एक दिन शर्माजी बोले—जवाहरलाल नेहरू को पंजाब की स्थिति के बारे में सही जानकारी कैसे हो सकती है ? वे पंजाब के जिन लोगों के सम्पर्क में आते हैं, वे हैं—पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रतापसिंह कैरों, पंजाब कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफ़िर, केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में पंजाब का प्रतिनिधित्व करनेवाले सरदार स्वर्णसिंह और लोकसभा के उपाध्यक्ष (बाद में अध्यक्ष) सरदार हुकमसिंह। इनमें एक भी तो हिन्दू नहीं। दूसरे पक्ष

की जानकारी कैसे मिले ?

मैं गिरफ़्तार न होता यदि फ़ीरोज़पुर जेल में सत्याग्रहियों पर इख़लाक़ी (Criminal) कैदियों ने बेदर्दी से लाठियाँ न बरसाई होतीं और सुमेरसिंह की हत्या न की गई होती। मैं जब जेल के भीतर पहुँचा तो जो कुछ मैंने देखा उससे लगता था कि मैं इस समय जेल में न होकर किसी बड़े हस्पताल के सर्जिकल वार्ड में हूँ जिसमें किसी रेल दुर्घटना में घायल लोगों को दाखिल कर रक्खा है। प्रत्येक सत्याग्रही का शरीर पट्टियों से भरा हुआ था। शायद ही कोई ऐसा रहा होगा जिसका कोई-न-कोई अंग-भंग न हुआ हो। पंजाब के प्रसिद्ध वकील और हिन्दू नेता लालचन्द सब्बरवाल (जिनका अभी पिछले दिनों निधन हुआ है) का तो एक हाथ ही बेकार हो गया था। इस दृश्य को देखकर मैं विचलित हो उठा और रात्रि को शहर में आयोजित सार्वजनिक सभा में भावावेश में बहुत-कुछ कह गया। परिणामतः मैं भूमिगत न रहकर बिहार से पंजाब में अवतरित हो प्रकट हो गया और पानीपत पुलिस के सहयोग से नाटकीय ढंग से दिल्ली में पकड़ा गया।

पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा इस काण्ड की जाँच के लिए नियुक्त कांग्रेस संसदीय दल के महामंत्री संसत्सदस्य पं० अलगूराम शास्त्री ने इस हत्याकाण्ड की तुलना जलियाँवाला बाग काण्ड से करते हुए अपनी रिपोर्ट में लिखा था—'पण्डितजी (नेहरूजी), यदि आप जेल के भीतर उस दृश्य को अपनी आँखों से देख लेते तो दीवार से अपना सिर पटके बिना न रहते।'

लालाजी का शौक़—सत्याग्रह की समाप्ति पर दीवान हाल में एक सभा हुई जिसमें लाला रामगोपालजी ने श्री घनश्यामसिंह गुप्त को बिना कुछ पाये—बिना माँगों को स्वीकार कराये—सत्याग्रह की समाप्ति के लिए बड़े अपमानजनक शब्दों में ज़िम्मेदार ठहराया। इस पर श्री गुप्तजी ने सत्याग्रह की समाप्ति से पूर्व दिया गया स्वयं

लालाजी का वक्तव्य पढ़कर सुनाया जिसमें उन्होंने कहा था—"सरकार ने हमारी नौ में से साढ़े सात माँगें स्वीकार कर ली हैं, इसलिए सत्याग्रह समाप्त कर देना चाहिए।" लालाजी बगलें झाँकने लगे। 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे' की कहावत को चरितार्थ करते हुए उन्होंने पैंतरा बदला और श्री घनश्यामसिंहजी से पूछा—"यदि आपको स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी में से एक को छोड़ना पड़े तो आप किसको छोड़ेंगे?" गुप्तजी ने कहा कि मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता। इस प्रकार की स्थिति कभी नहीं आ सकती जिसमें मुझे इन दो में से एक को चुनना पड़े। वस्तुतः इसका वहाँ कोई प्रसंग नहीं था, परन्तु तेली ने कहा 'जाट रे जाट तेरे सिर पर खाट' तो बदले में जाट बोला—'तेली रे तेली तेरे सिर पर कोल्हू।' किसी ने कहा—भाई, तुक नहीं मिली। जाट ने कहा—बोझ से तो मरेगा। लालाजी जाट का रोल कर रहे थे। इसलिए अपनी बात पर अड़े रहे। तब लालाजी की आशा के विपरीत घनश्यामसिंहजी ने स्पष्ट कह दिया—'मैं महात्मा गांधी को छोड़ दूँगा, पर स्वामी दयानन्द को कभी नहीं छोड़ूँगा।' लालाजी मुँह देखते रह गये।

जैसाकि पहले लिखा ज़ा चुका है, हैदराबाद सत्याग्रह की समाप्ति पर सत्याग्रहियों का अभिनन्दन करने के लिए आयोजित सार्वजनिक सभा में भी लालाजी ने 'हमें क्या मिला?' नामक एक पर्चा बाँटा था। स्मरण रहे कि स्वयं लालाजी ने न हैदराबाद के युद्ध में भाग लिया था और न हिन्दी सत्याग्रह में। बड़ों की पगड़ी उछालने का शौक़ उन्हें सदा रहा है। सत्य तो यह है कि जहाँ तक हैदराबाद सत्याग्रह व सिन्ध सत्याग्रह में आर्यसमाज की सफलता का सम्बन्ध है, उसका श्रेय जहाँ सत्याग्रहियों के त्याग और बलिदान को है वहाँ श्री घनश्यामसिंह गुप्त और श्री देशबन्धु गुप्त के कुशल नेतृत्व को भी है। इसी प्रकार हिन्दी सत्याग्रह की सफलता का श्रेय सत्याग्रहियों के साथ-साथ श्री घनश्यामसिंह गुप्त के नेतृत्व को है। कुशल सेनापति

के विना सेना नहीं लड़ सकती। १६५८ में पंजाब के तत्कालीन गवर्नर श्री नरहरिविष्णु गाडगिल ने सरदार भाई जोधसिंह तथा श्री जयचन्द विद्यालंकार का एक गुडविल मिशन नियुक्त किया जो पंजाव भर में घूमकर लोगों की भावनाओं से अवगत हो सरकार को रिपोर्ट दे। तव मैं अपने कालिज का प्रिंसिपल था। पानीपत में मिशन मेरे पास ही ठहरा। भाई जोधसिंह ने वताया कि यह तो आप भी मानते हैं कि पंजाब की वोलचाल की भाषा पंजाबी है। झगड़ा लिखने-पढ़ने की भाषा का है। मैंने सुझाव दिया था कि पंजाबी की लिपि देवनागरी कर दी जाए। ऐसा हो जाता तो कुछ समय वाद झगड़े या मतभेद का आधार ही समाप्त हो जाता। किसी ने मेरी नहीं मानी। वात ठीक थी। मैंने कहा कि आप अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव फिर से दे दें। भाई जोधसिंह बोले—जव समय था, तव आर्यसमाजी नहीं माने। अव वहुत देर हो चुकी है, अब सिख नहीं मानेंगे।

उन दिनों भाषा के साथ-साथ हरियाणा के अधिकारों के हनन का विषय भी सामने आ गया था। मेरे यहाँ भोजन करते समय भाई जोधसिंह बोले—प्रो० शेरसिंह हरियाणा के अधिकारों की वात तो करते हैं, परन्तु सारे हरियाणा के कालिजों में हरियाणा का एक भी प्रिंसिपल नहीं है। मैंने कहा कि एक तो मैं ही हूँ। भाईजी बोले—आप तो मूलतः उत्तर प्रदेश के हैं, जैसे सोनीपत में डाक्टर भट्टाचार्य वंगाल के हैं। मैंने कहा कि इस स्थिति को समाप्त करने के लिए ही तो हरियाणावाले अपने लोगों की नियुक्ति का अधिकार पाने के लिए लड़ रहे हैं।

जब मैंने कालिज के प्रिंसिपल का पद सँभाला तो कालिज में एफ० एस-सी० और बी० ए० तक की पढ़ाई की व्यवस्था थी। कालिज की प्रबन्ध समिति बी० एस-सी० तक साइन्स की पढ़ाई चालू करना चाहती थी। मेरे पूर्ववर्त्ती प्रिंसिपल श्री सुन्दरदास मल्होत्रा से इस दिशा में प्रयत्न करने का अनुरोध किया गया। श्री मल्होत्रा बड़े

मेहनती और ईमानदार व्यक्ति थे, परन्तु कालिज का विकास करने में उनका गवर्नमेण्ट कालिजों का अनुभव आड़े आता था। सरकारी स्तर पर कामकाज की प्रक्रिया में पूरी योजना और उसके लिए अपेक्षित धन का ब्यौरा तैयार करके भेजा जाता है। अनेक विभागों में होकर सरकार द्वारा योजना के स्वीकृत होने और पूरी राशि का चैक प्राप्त होने पर काम चालू होता है। इसी अभ्यास के अनुसार प्रिंसिपल मल्होत्रा ने ५० हज़ार रुपये की व्यवस्था करने के लिए प्रवन्ध समिति को कहा। प्रबन्ध समिति के लिए इतनी बड़ी राशि की एक-साथ व्यवस्था करना सम्भव नहीं था। योजना दाखिल दफ़्तर हो गई। मेरे प्रिंसिपल बनते ही प्रबन्ध समिति ने मुझसे जल्दी-से-जल्दी बी० एस-सी० श्रेणियाँ चालू करने की माँग की और पूछा कि इसके लिए आपको कम-से-कम कितना रुपया चाहिए। मैंने आर्यसमाज सहित स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा संस्थापित स्कूलों-कालिजों को बनते देखा था—तब से देखता आ रहा था जब मैं डी० ए० बी० स्कूल होशियारपुर में पढ़ता था। इकट्ठा पैसा न होने पर प्राइवेट संस्थाएँ कैसे खड़ी होती हैं, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव था। मैंने कहा कि ५-७ हज़ार रुपये मिल जाएँ तो काम चल जाएगा। यह कोई बड़ी बात नहीं थी। इस रुपये से मैंने बने-बनाये कमरों में अपेक्षित परिवर्त्तन करके उन्हें बी० एस-सी० की पढ़ाई के लिए तैयार किया। Endowment Fund के लिए आवश्यक १५ हज़ार रुपये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से ऋण के रूप में प्राप्त किये और साइन्स का सामान एक साल के भीतर बिल चुकता करने का वायदा करके बाज़ार से ले लिया। यूनिवर्सिटी ने कमीशन भेजा और सब-कुछ ठीक-ठाक देखकर मंज़ूरी दे दी। इस प्रकार १९५९ में बी० एस-सी० कक्षाएँ चालू हो गईं।

इस सन्दर्भ में एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। यूनिवर्सिटी से आनेवाले कमीशन में फ़िज़िक्स डिपार्टमेण्ट के अध्यक्ष डाक्टर बी० एम० लाल और कैमिस्ट्री डिपार्टमेण्ट में रीडर डाक्टर

के० एस० नारंग थे। बी० एस-सी० की पढ़ाई के लिए एक आवश्यक शर्त थी गैस प्लांट का होना। गैस प्लांट के लिए आवश्यक टंकी कुएँ की तरह खुदाई करके ज़मीन के अन्दर लगती थी। उन दिनों हमारे कालिज का परिसर बरसात के दो महीनों में पानी में डूबा रहता था। इस कारण धरती में पानी इतना समा जाता था कि बरसात बीतने पर भी थोड़े-से फावड़े लगते ही पानी निकल आता था। इसलिए हम समय पर गैस की टंकी नहीं लगा सके थे। सरदार नारंग ने अपनी रिपोर्ट में लिख दिया—'The College has not put up the gas plant.' यह लिखकर वे शहर में अपने किसी सम्बन्धी से मिलने चले गये। डाक्टर आनन्द मुझसे बोले कि खालसा कालिज में चाहे कितनी कमियाँ हों, सरदारजी उनकी उपेक्षा कर देते हैं, किन्तु हिन्दुओं के कालिज के मामले में छोटी-से-छोटी कमी भी नहीं बख़्शते। उन्होंने सरदारजी के लिखे वाक्य को इस प्रकार संशोधित करके लिख दिया—'The College has not been able to put up the gas plant due to heavy rains. But necessary material is there on the site.' वर्षा के कुछ मास बाद काम हो गया।

अपने-पराये—समय-समय पर आर्य कालिज पानीपत को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। विभाजन के बाद वर्त्तमान आर्य हाई स्कूल का स्थान आर्य प्रादेशिक सभा अथवा डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी को दिये जाने की बात चल रही थी। अन्ततः वह आर्य हाई स्कूल मिटगुमरी के बदले आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को अलॉट हो गया। १९४८ में वहाँ आर्य हाई स्कूल खोल दिया गया। १९५३ में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का अधिवेशन पानीपत में हुआ। उस समय तक पानीपत में १० हाईस्कूल होते हुए भी कालिज नहीं था। वहाँ के लड़के-लड़कियों को अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए करनाल जाना पड़ता था। इसलिए सभा ने पानीपत में कालिज खोलने का निश्चय किया। पंजाब यूनिवर्सिटी को

affiliation के लिए आवेदन भेजने पर वहाँ से कमीशन भेजा गया। कमीशन के सदस्य थे सरदार भाई जोधसिंह और डी० ए० वी० कालिज जालन्धर के प्रिंसिपल लाला सूरजभान। श्री सूरजभानजी ने जानबूझकर कुछ ऐसी शर्तें लगानी चाहीं जिन्हें पूरा करना आसान नहीं था। यदि भाई जोधसिंह सहायता न करते तो कालिज न खुल पाता।

कुछ वर्ष बाद पानीपत में एक और कालिज (इन्द्रभान लैय्या कालिज) खोलने की योजना बनी। मुझे भनक पड़ी तो मैं चण्डीगढ़ पहुँचा। उस समय यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर डाक्टर ए० सी० जोशी थे। उन्होंने मुझे बताया कि प्रस्तावित कालिज के संचालक श्री शानूलाल नारंग मेरे पास आये अवश्य थे। मैंने उनसे पूछा कि क्या आर्य कालिज में छात्रों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि उसमें प्रवेश मिलना कठिन है। श्री नारंग ने कहा कि ऐसी बात तो नहीं है। फिर मैंने पूछा कि आप अपने कालिज में कौन-कौन से विषय पढ़ाएँगे तो उन्होंने बता दिये। तब मैंने जानना चाहा कि क्या इनमें कोई ऐसा विषय है जो आर्य कालिज में नहीं पढ़ाया जाता। शानूलाल-जी ने उत्तर दिया कि ऐसा कोई विषय नहीं है। तब मैंने उन्हें अपनी ओर से बताया कि जहाँ तक आर्य कालिज के शिक्षास्तर और अनु-शासन का प्रश्न है, Justice Mehr Chand Mahajan is all praise for it अर्थात् मेहरचन्द महाजन उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। ऐसी स्थिति में पानीपत में दूसरे कालिज के खोले जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। कुछ समय बाद यही चर्चा फिर उठी। उस समय लाला सूरजभान यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे। मैं उनसे मिलने शिमला पहुँचा। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि आपका कालिज तो आर्य-समाज का कालिज है, उसे मैं कैसे हानि पहुँचा सकता हूँ ? यही बात उन्होंने सभा के एक नेता श्री रामनाथ भल्ला से कही, परन्तु इस डबल आश्वासन के बावजूद उन्होंने दूसरे कालिज को affiliation

दे दी, जबकि यूनीवर्सिटी द्वारा निर्धारित एक भी शर्त वह कालिज पूरी नहीं करता था। यूनिवर्सिटी में उन्हें Vice-Chancellor Politicion कहा जाता था। बाद में पता चला कि किसी समय लाला सूरजभान-जी को ग्रेजुएट्स कंस्टीट्यूऐंसी से लेजिसलेटिव कौंसिल के चुनाव में श्री शानूलाल नारंग ने उनकी सहायता की थी। 'धरम से धड़ा प्यारा' सिद्ध हुआ।

१९६९ में एक बार फिर सनातन धर्म कालिज खुलने की बात खड़ी हुई। तब भी लाला सूरजभानजी वाइस चांसलर थे। फिर वही नाटक और वही संवाद और तीसरा कालिज खुल गया। कारण ताया गया चौधरी बंसीलाल का दबाव। इस सबसे आर्य कालिज को कोई आर्थिक हानि नहीं हुई। आज भी इस कालिज में छात्र-छात्राओं की संख्या शेष दोनों कालिजों से अधिक है, परन्तु मुक़ाबले (Competition) के कारण शैक्षिक स्तर और अनुशासन में गिरावट अवश्य आई। पानीपत में एकमात्र यही कालिज है जिसके पास शानदार छात्रावास और खेल के लिए विस्तृत मैदान हैं। यही अकेला कालिज है जिसमें सहशिक्षा नहीं है और छात्राओं की संख्या सबसे अधिक है। लड़कियों को गृहविज्ञान के पाठ्यक्रम में सब प्रकार के व्यंजन तैयार करने सिखाए जाते हैं, पर मांस या अण्डे का प्रयोग नहीं होता।

यहाँ एक घटना की चर्चा करना रुचिकर होगा। कालिज में बी० एस-सी० मेडिकल क्लास खोलने का निश्चय हुआ तो उसकी अनुमति प्राप्त करने के लिए आवेदन-पत्र लेकर मैं स्वयं चण्डीगढ़ गया और वाइस चांसलर से मिलकर तत्काल अनुमति प्रदान करने का अनुरोध किया। उन्होंने उसपर Urgent लिख दिया। मैं प्रसन्न-चित्त सम्बद्ध अधिकारी के पास पहुँचा तो वह बोले कि आप जाइए, ४-५ दिन में आपको अनुमति डाक से पहुँच जाएगी। तब मेरे स्वयं चण्डीगढ़ जाने का क्या लाभ हुआ ? ५ बज चुके थे। मैं सीधा वाइस

चांसलर के निवास पर पहुँचा और शिकायत के स्वर में कहा कि आपके Urgent लिखने पर भी सुपरिण्टेण्डेण्ट ने ४-५ दिन के लिए टाल दिया। वाइस चांसलर महोदय ने बताया कि यूनिवर्सिटी की व्यवहार की भाषा में Urgent का अर्थ ४-५ दिन ही होता है। एक-दो दिन के लिए Immediate शब्द का प्रयोग होता है और दिन-के-दिन काम होना हो तो At once लिखा जाता है।

मेरे प्रिंसिपल बनने के वाद सन् १९५९ में कालिज में पहली वार गणतंत्र दिवस मनाया गया। परम्परा के अनुसार उस दिन राष्ट्रिय ध्वज फहराया जाता है। यह व्यवस्था एन० सी० सी० के द्वारा होती है। कालिज के हाल पर ओम् का झण्डा सदा लहराता रहता है। तव भी लहरा रहा था। एन० सी० सी० के अधिकारी ने कहा कि राष्ट्रिय ध्वज से ऊँचा कोई ध्वज नहीं रह सकता। इसलिए पहले ओम् का झण्डा उतारा जाए, तत्पश्चात् राष्ट्रिय ध्वज फहराया जाएगा। मैंने कहा कि यह शर्त राजनीतिक और साम्प्रदायिक झण्डों पर लागू होती है, ओम् के झण्डे पर नहीं, क्योंकि यह संसार के सभी झण्डों से वड़ा है। किसी भी अवस्था में ओम् का झण्डा नहीं उतारा जा सकता। वह जहाँ है, वहीं रहेगा। एन० सी० सी० आफ़ीसर अपनी वर्दी उतारकर एक तरफ खड़े हो गये और राष्ट्रिय ध्वज को स्थानीय आर्यसमाज के प्रधान श्री जयभगवान् दासजी के हाथों विधिवत् लहरा दिया गया।

उसी वर्ष कालिज में दीक्षान्त भाषण के लिए पंजाब के गवर्नर श्री नरहरि विष्णु गाडगिल को आमंत्रित किया गया था और उन्होंने सहर्ष आना स्वीकार कर लिया था। जब मैं उन्हें स्मरण कराने तथा कार्यक्रम को अन्तिम रूप देने के विचार से उनसे मिला तो उन्होंने बड़े सहज भाव से कह दिया कि गणतंत्र दिवस के अवसर पर आपके कालिज में राष्ट्रिय ध्वज का अपमान हुआ है, इसलिए मैं आपके यहाँ दीक्षान्त भाषण के लिए नहीं आऊँगा। श्री गाडगिल ने स्पष्ट कह

दिया कि जब तक केन्द्रीय गृह मंत्रालय से इस बात का निर्णय नहीं हो जाता तबतक आपके यहाँ मेरा आना सम्भव नहीं होगा। तब मुझे पता चला कि पानीपत के कुछ कांग्रेसियों ने इस मामले को कितने विकृत रूप में प्रस्तुत किया है। मुझे विश्वास था कि ओम् का झण्डा सब झण्डों से ऊँचा रह सकता है। आर्यसमाज के मान्य नेता श्री घनश्यामसिंह गुप्त उस संविधान परिषद् (Constituent Assembly) के महत्त्वपूर्ण सदस्यों में थे जिसने राष्ट्रिय झण्डे के सम्बन्ध में अपेक्षित निश्चय किये थे। उनकी सहायता से मैंने उस समय की कार्यवाही की छानबीन कराई। पं० गोविन्दवल्लभ पन्त उन दिनों केन्द्रीय गृहमंत्री थे। उन्होंने यह मामला निर्णय के लिए विधि मंत्रालय (Law Ministry) को सौंप रक्खा था। अन्ततः विधि मंत्रालय ने निर्णय कालिज के पक्ष में दिया कि ओम् का झण्डा राष्ट्रीय झण्डे से ऊँचा फहरा सकता है। श्री गाडगिल दीक्षान्त भाषण के लिए कालिज में आये। गवर्नर महोदय के कालिज में आने पर नियमानुसार राष्ट्र-ध्वज फहराया गया। ओम् ध्वज सदा की भाँति हॉल पर लहरा रहा था। मैंने गाडगिलजी को स्मरण कराया कि २६ जनवरी को भी दोनों झण्डे इसी स्थिति में थे जिस स्थिति में आप इस समय देख रहे हैं। श्री गाडगिल सर्वथा सन्तुष्ट थे।

इस प्रसंग में उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) के भी एक निर्णय का संकेत करना उपयोगी होगा। हरियाणा से हुए लोकसभा चुनाव में एक बार आर्यसमाज के नेता श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती विजयी हुए थे। उनके विरुद्ध पराजित प्रत्याशी श्री प्रतापसिंह दौलता ने उनके निर्वाचन को इस आधार पर चुनौती दी कि चुनाव में किसी सम्प्रदाय की धार्मिक भावनाओं को भड़काना नियम-विरुद्ध है। श्री सिद्धान्ती ने अपनी जीप पर ओम् का झण्डा लगाकर इस नियम का उल्लंघन किया है, इसलिए उनके चुनाव को अवैध घोषित किया जाए। इस पर पहले पंजाब हाईकोर्ट ने और फिर सुप्रीमकोर्ट ने

निर्णय दिया कि ओम् का झण्डा साम्प्रदायिक नहीं है।

शायद ही कोई ऐसा कालिज होगा जिसे इतनी बड़ी संख्या में नेताओं, विद्वानों, साहित्यकारों, शिक्षाशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, कलाकारों आदि ने पधारकर गौरवान्वित किया हो। यहाँ उनमें से कतिपय अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम दिये जा रहे हैं—

१. श्री लालबहादुर शास्त्री—प्रधानमंत्री
२. श्री मोरारजी देसाई—प्रधानमंत्री
३. श्री अनन्तशयनम् आयंगर—अध्यक्ष, लोकसभा
४. श्री मेहरचन्द महाजन—प्रधान न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय
५. श्री यशवन्तराव चह्वाण—केन्द्रीय रक्षामंत्री
६. श्री जगजीवनराम—केन्द्रीय रेलमंत्री
७. श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित—प्रथम महिला अध्यक्ष, संयुक्त राष्ट्रसंघ
८. श्री नरहरि विष्णु गाडगिल—केन्द्रीय मंत्री व गवर्नर, पंजाब
९. श्री वी० एन० चक्रवर्ती—गवर्नर पंजाब व प्रतिनिधि संयुक्त राष्ट्रसंघ
१०. हाफिज़ मुहम्मद इब्राहीम—केन्द्रीय मंत्री व गवर्नर पंजाब
११. श्री विश्वनाथदास—गवर्नर उत्तरप्रदेश व मुख्यमंत्री उड़ीसा
१२. श्री मेहरचन्द खन्ना—केन्द्रीय मंत्री
१३. राव वीरेन्द्र सिंह—केन्द्रीय मंत्री व मुख्यमंत्री हरियाणा
१४. श्री इन्द्रकुमार गुजराल—केन्द्रीय मंत्री व राजदूत सोवियत रूस
१५. श्री जयसुखलाल हाथी—केन्द्रीय मंत्री व गवर्नर पंजाब
१६. श्री भक्तदर्शन—केन्द्रीय मंत्री
१७. ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफ़िर—कवि व लोकसभा सदस्य

१८. श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा—केन्द्रीय मंत्री
१९. श्री लाला जगत् नारायण—पत्रकार व सदस्य राज्यसभा
२०. श्री अलगूराम शास्त्री—लोकसभा सदस्य व वैदिक विद्वान्
२१. श्री पृथिवीसिंह आज़ाद—क्रान्तिकारी स्वतंत्रता सेनानी
२२. श्री रामधारी सिंह दिनकर—राष्ट्रकवि व सदस्य राज्य सभा
२३. श्री वियोगी हरि—सन्त व साहित्यकार
२४. श्री सेठ गोविन्ददास—कवि व नाटककार
२५. श्री जैनेन्द्र कुमार—चिन्तक व साहित्यकार
२६. श्री उदयशंकर भट्ट—कवि व नाटककार
२७. डा० आत्माराम—वैज्ञानिक व महानिदेशक सी० एस० आई० आर०
२८. डा० एस० एम० मुकर्जी—F.N.I. of Collaign—Mukerji Reaction Repute
२९. डा० ए० सी० जोशी—वाइस चांसलर पंजाब यूनिवर्सिटी
३०. डा० गोवर्धनलाल दत्त— „ „ विक्रम यूनिवर्सिटी, उज्जैन
३१. श्री उमाशंकर मिश्र—सितारवादक
३२. श्री जमालुद्दीन भारती—„ „
३३. श्री सुनील मुकर्जी—सरोदवादक
३४. श्री अमरनाथ—संगीतज्ञ
३५. श्री विनयचन्द्र मौद्गल्य—संगीताचार्य गन्धर्व महाविद्यालय
३६. श्री फ़ैयाज़ अहमद—तबलावादक
३७. श्री लतीफ़ अहमद खाँ—तबलावादक
३८. श्री जयचन्द्र विद्यालंकार—इतिहासवेत्ता

आर्यसमाज के क्षेत्र के जो विद्वान् आमंत्रित किये गये, उनमें से कुछ नाम हैं—

१. श्री रामसहाय तिवारी—संसत्सदस्य
२. श्री नरदेव स्नातक—संसत्सदस्य
३. श्री शिवकुमार शास्त्री—संसत्सदस्य
४. डा० युद्धवीरसिंह—स्वास्थ्य मंत्री दिल्ली प्रदेश
५. श्री स्वामी ज्ञानानन्द (महता जैमिनि)
६. श्री स्वामी ओमानन्द सरस्वती
७. श्री अमरस्वामी सरस्वती
८. श्री विद्यानन्द विदेह
९. श्री कुंवर सुखलाल आर्यमुसाफ़िर

सार्वदेशिक सभा की स्वर्णजयन्ती—सार्वदेशिक सभा की स्थापना १९०९ में हुई थी। १९६१ में १६ से २१ मई तक दिल्ली में उसकी स्वर्णजयन्ती तथा उसी के साथ नवम आर्य महासम्मेलन का आयोजन करने का निश्चय हुआ। इस समारोह की अध्यक्षता स्वामी ध्रुवानन्द-जी ने की थी। महात्मा आनन्दस्वामी उसके स्वागताध्यक्ष बनाये गये। रामलीला मैदान में हुए इस विशाल समारोह की स्वागतसमिति के मंत्री का भार मुझे सौंपा गया। सत्ता से च्युत कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों के विरोध और प्रचण्ड गरमी को देखते हुए इस समारोह की सफलता में सन्देह था। इसलिए इसे सफल करने के लिए अन्तरंग सभा ने श्री देसराज चौधरी को प्रबन्ध समिति का अध्यक्ष तथा मुझे उसका संयोजक बनाया। सरकार ने आदेश दे दिया कि बाहर से आनेवाले प्रतिनिधियों को सरकारी स्कूलों में नहीं ठहरने दिया जाएगा। डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी ने भी अपने स्कूलों को यही आदेश दे दिया। इन कठिन परिस्थितियों में हमें आर्यसमाज मन्दिरों, आर्य बालगृहों, धर्मशालाओं, तम्बुओं आदि में ठहरने की व्यवस्था करनी पड़ी। जुलूस के मार्ग को लेकर भी झगड़ा खड़ा हो गया। श्री लालबहादुर शास्त्री उन दिनों गृहमंत्री थे। मैं रात्रि के समय उनसे मिलने पहुँचा। बिजली गई हुई थी। शास्त्रीजी बाहर

लॉन में घूम रहे थे। चलते-चलते बातचीत होती रही। शास्त्रीजी बिगड़ी को सँभालने में सिद्धहस्त थे। इसलिए नेहरूजी के विश्वास-पात्र थे। कुछ मैं ढीला पड़ा और कुछ शास्त्रीजी ने सहारा दिया। बात बन गई। संघर्ष के कारण खेल बिगड़ने की आशा में बैठी हुई उछल-कूद कम्पनी को अवश्य निराशा हुई। अपने ढंग का यह अनूठा आयोजन था, जो पूरी तरह सफल रहा। तब तक आर्यसमाज का सरकारीकरण नहीं हुआ था। जो कुछ हुआ, आर्यसमाज के बलबूते पर हुआ—राजनीति से सर्वथा अछूता। सार्वदेशिक की अन्तरंग सभा ने अपनी २४ जून, १९६१ की बैठक में धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया जो इस प्रकार था—

"यह सभा स्वर्णजयन्ती समिति तथा नवम आर्य महासम्मेलन समिति को इन दोनों समारोहों की सफलता पर, देश-देशान्तर की आर्यजनता के साथ हार्दिक बधाई देती है—विशेष रूप से समिति के प्रधान श्री देशराज चौधरी तथा संयोजक पं० श्री लक्ष्मीदत्तजी दीक्षित का प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय रहा।"

उन्हीं दिनों एक बार मैं महाशय कृष्णजी से मिलने गया। लौटते समय महाशयजी मुझे अपनी कोठी के मुख्य द्वार तक छोड़ने आये। जब मैं चलने लगा तो मेरे एक कन्धे पर हाथ रखकर बोले—"यह रामगोपाल वर्कर बहुत अच्छा है, लेकिन लीडर बनने लायक़ नहीं है। पर यह लीडर बनना चाहता है।" महाशयजी से यह मेरी अन्तिम भेंट थी। काश, आर्यसमाज ने महाशयजी की बात मानी होती।

रक्षामंत्री पानीपत में—१९६२ में चीन ने भारत पर हमला किया। उसमें पराजित होने के कारण तत्कालीन रक्षामंत्री श्री वी० के० कृष्णमेनन के त्यागपत्र देने पर श्री यशवन्तराव चह्वाण को रक्षा-मंत्री बनाया गया। मैंने उनसे भेंट करके अपने कालिज में आने का अनुरोध किया। उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। जब वह आये तो पानीपत की नगरपालिका की सीमा पर अपनी गाड़ी रोकी और

गाड़ी से वाहर आकर वहाँ की धूल अपने माथे पर लगाई। पानीपत की तीसरी लड़ाई में, जो १७६७ में मरहठों और अहमदशाह अब्दाली के वीच हुई थी, श्री यशवन्तराव चह्वाण के पूर्वजों ने भी भाग लिया था—यहीं कहीं उनका भी ख़ून गिरा था। इसी कारण उनका यहाँ की धरती से इतना लगाव था। महात्मा गांधी के हत्यारे नाथूराम गोडसे ने भी फाँसी लगने से एक दिन पूर्व अपने पिता को जो पत्र लिखा था, उसने भी इसी भावना से उसमें लिखा था—"मुझे इस वात का सन्तोष है कि मैं जीवन की अन्तिम श्वास पानीपत की ओर से आनेवाली हवा में ले रहा हूँ।" गोडसे को अम्वाला जेल में फाँसी दी गई थी।

संस्कृत की बलि—पंजाब यूनिवर्सिटी के नियमों के अनुसार एफ० ए० में प्रत्येक विद्यार्थी को प्राचीन भाषाओं (Classical Languages) में से एक अवश्य पढ़नी पड़ती थी। प्राचीन भाषाओं में संस्कृत, फ़ारसी और अरबी आती थीं। हिन्दू विद्यार्थी प्रायः संस्कृत लेते थे। जब मैं डी० ए० वी० कालिज होशियारपुर में पढ़ता था, तब भी यह नियम था। परिणामतः एफ० ए० की श्रेणियों में लगभग तीन सौ विद्यार्थी संस्कृत पढ़ते थे। यही स्थिति १९६० के आसपास तक आर्य कालिज पानीपत में थी। पंजाब यूनिवर्सिटी की सिण्डीकेट का निर्वाचन होना था। यूनिवर्सिटी में दो प्रमुख दल थे—एक डी० ए० वी० जिसके नेता जस्टिस मेहरचन्द महाजन थे और दूसरा तद्विरोधी जिसके नेता सरदार भाई जोधसिंह थे। संघर्ष टालने के उद्देश्य से समझौते की बात चली। भाई जोधसिंह ने समझौते की एक शर्त यह रक्खी कि एफ० ए० के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में Classical Languages के स्थान पर Modern Indian Languages कर दिया जाए। महाजनजी ने हाँ कर दी। उनके दल को सिण्डीकेट में यथेष्ट स्थान मिल गयें, परन्तु संस्कृत की और उसके साथ पंजाव में भारतीय संस्कृति की बलि चढ़ गई। 'गढ़ आया पर सिंह गया।' परिणामतः आर्य कालिज पानीपत

में संस्कृत पढ़नेवालों की संख्या लड़कों में तीन सौ से तीस रह गई। Classical Languages में पंजाबी नहीं आती थी, Modern Indian Languages में पंजाबी के होने से वह स्थान पा गई। फिर पंजाब में सिखों का शासन हो जाने से Modern Indian Languages में होने पर भी हिन्दी निकल-सी गई। यह निकला सत्ता की दौड़ का परिणाम।

बाग़बाँ ने आग दी जब आशियाने को मेरे।
जिन पै तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे॥

भारत की नई शिक्षा नीति में भी Modern Indian Languages की आड़ में ही संस्कृत को निकाला गया है।

दयानन्द यूनिवर्सिटी—देश-भर में आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाओं का जाल-सा बिछा हुआ है। जस्टिस मेहरचन्द महाजन की कामना थी कि महर्षि दयानन्द के नाम पर एक यूनिवर्सिटी बननी चाहिए जिससे देश-भर के आर्यसमाज के कालिजों को सम्बन्धित (affiliate) किया जाए। उन्होंने इस उद्देश्य से 'आर्यसमाज शिक्षण संस्था परिषद्' की स्थापना की। श्री मेहरचन्द महाजन को उसका अध्यक्ष, प्रिंसिपल दत्तात्रेय वाब्ले को मंत्री, मुझे उपमंत्री और प्रिंसिपल शान्तिनारायण को कोषाध्यक्ष बनाया गया। कई बैठकें हुईं। एक बैठक कानपुर में हुई। उसमें इस प्रस्तावित योजना का तीन व्यक्तियों ने विरोध किया। वे थे प्रिंसिपल सूरजभान, प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार और स्वयं मैं। तीनों के विरोध के कारण भिन्न-भिन्न थे। श्री सूरजभान का कहना था कि यूनिवर्सिटी को बनाने के लिए शुरू में ही कई करोड़ रुपये चाहिएँ, जबकि आपने अपील कुल १० लाख की की है, और आया अब तक एक लाख भी नहीं। कानपुरवालों ने कहा कि यदि यूनिवर्सिटी कानपुर में बने तो करोड़ों की ज़िम्मेदारी हम लेते हैं। परन्तु श्री महाजनजी और श्री वाब्लेजी अजमेर में ही चाहते थे। कानपुर उन्हें स्वीकार नहीं था। मेरा कहना था कि दयानन्द के नाम पर बनी यूनिवर्सिटी का स्वरूप क्या होगा? उसमें और दूसरे विश्वविद्यालयों में क्या अन्तर होगा?

फिर, प्रत्येक यूनिवर्सिटी का सीमाक्षेत्र (Jurisdiction) निश्चित होता है। दयानन्द यूनिवर्सिटी को देश-भर के कालिजों को affiliate करने का चार्टर कैसे मिल सकता है ? महाजनजी का उत्तर था—'हम अभी से क्या बताएँ क्या हमारे दिल में है।' अभी बताने में तो खेल ही चौपट हो जाएगा। महाजनजी के शब्द थे—'The cat will be out of the bag.' जहाँ तक आल इण्डिया चार्टर का सम्बन्ध है, क्या हमेशा जवाहरलाल ही प्रधानमंत्री बना रहेगा ? मैं नहीं बन सकता। उनका आशय था कि मेरे प्रधानमंत्री बन जाने पर वैसा हो जाएगा। प्रो० सत्यव्रतजी का कहना था कि यदि महाजनजी को यूनिवर्सिटी के नाम में दयानन्द के नाम का ही आग्रह है तो गुरुकुल काँगड़ी बनी-बनाई यूनिवर्सिटी है। उसका नाम दयानन्द यूनिवर्सिटी कर दिया जाए। कालान्तर में यह योजना खटाई में पड़ गई। आर्य शिक्षण संस्था परिषद् भी अब स्मृतिशेष है, परन्तु जहाँ तक महाजनजी की कामना का सम्बन्ध है, वह पूरी हो गई। जनता पार्टी के शासन काल में रोहतक में पहले से बनी यूनिवर्सिटी को 'महर्षि दयानन्द यूनिवर्सिटी' का नाम दे दिया गया। मैंने सुझाव दिया था कि उसे केवल 'दयानन्द यूनिवर्सिटी' नाम दिया जाए। लोगों को वह सम्मानजनक नहीं लगा। अब वह M. D. University बनकर रह गई है। पर क्या हम उस पर गर्व कर सकते हैं ? जहाँ दूसरे विश्वविद्यालयों में संस्कृत की उच्चतम शिक्षा और वैदिक शोध के लिए 'दयानन्द वैदिक शोध पीठ' बनी हुई हैं, वहाँ दयानन्द के नाम पर बने विश्वविद्यालय में सब शून्य है। वहाँ भी वही सब हो रहा है जो अन्यत्र होता है। दयानन्द का नाम तो है, पर वह बदनाम है—misnomer है। क्योंकि दयानन्द के अनुरूप वहाँ कुछ भी नहीं है।

पंजाब का विभाजन

जिस दिन पाकिस्तान बना उसी दिन—बल्कि उससे पहले से ही सिखों ने खालिस्तान के लिए आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था। भारत

सरकार सिखों को इस माँग से विरत करने के लिए समय-समय पर रियायतें देती गई—कभी सच्चर फ़ार्मूला, कभी क्षेत्रीय (Regional) फ़ार्मूला, परन्तु सन्तुष्टिकरण की नीति का वही परिणाम निकला जो मुसलमानों को रियायतें देने का निकला था—'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।' सिखों को यह भी पता है कि मुसलमानों को पाकिस्तान किसी तर्क के आधार पर नहीं, हिंसा की मदद से मिला था। वह यह भी जानते हैं कि पाकिस्तान बन जाने पर भी भारत में रह गये मुसलमान पाकिस्तान के मुसलमानों की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी, सम्पन्न और सत्ताधारी हैं। खालिस्तान बन जाने पर भी उनका अपना एक देश तो हो ही जाएगा, भारत में रह जानेवाले सिख भी अल्पसंख्यकों के नाम पर बहुसंख्यकों की अपेक्षा अधिक सुखी होंगे। इसलिए उन्होंने खालिस्तान की प्राप्ति और भारत में रह जानेवाले सिखों की भलाई के लिए मुसलमानों की तरह मार-काट का रास्ता अपनाया।

नेहरूजी के समय में ही खालिस्तान की माँग ज़ोर पकड़ने लग गई थी। १९६५ में भारत-पाकिस्तान युद्ध की समाप्ति पर सिखों ने प्रचण्ड रूप से उसकी माँग शुरू कर दी। पंजाब की दोनों सभाओं—आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्य प्रादेशिक सभा—ने पंजाब के विभाजन का विरोध करने के लिए एक संयुक्त समिति बनाई। पंजाब के शिक्षा मंत्री श्री यश तथा प्रो० रामसिंह को और संयोजक के रूप में मुझे यह काम सौंपा गया। संयोजक होने के नाते सारा भार मुख्यत: मेरे ऊपर आ पड़ा। पंजाबी सूबे की माँग का इतिहास, विश्लेषण व उससे सम्भावित हानियों का विवरण देकर उसके अनौचित्य का प्रतिपादन करते हुए मैंने एक ज्ञापन (memorandum) तैयार करके सबको भेजा। पंजावी सूबे की माँग का आधार क्योंकि भाषा को बनाया गया था, इसलिए मैंने Facts about the language problem in Punjab नामक एक छोटी-सी पुस्तक तैयार की। उसमें मैंने यह सिद्ध करने का प्रयास
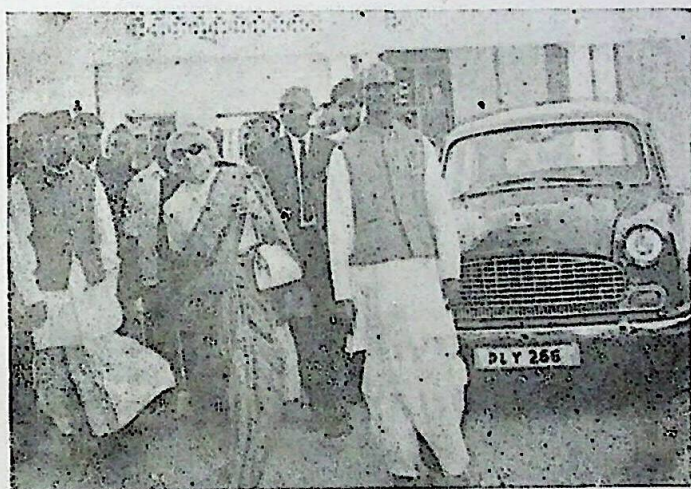
कालिज में पुरस्कार वितरण के लिए आमन्त्रित संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रथम महिला अध्यक्ष श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित का स्वागत करते हुए।
"बेटी (इन्दिरा गांधी) के राज्य में मैं पिछले बैंचों पर बैठने के लिए नहीं बनी हूँ।"
दिल्ली लौटने पर उसी दिन उन्होंने लोकसभा से त्यागपत्र दे दिया।

सन् १९६० में टोकियो (जापान)
में ओलम्पिक खेलों के अवसर
पर ब्रिगेडियर दलीपसिंह
से ओलम्पिक मशाल
ग्रहण करने के
वाद स्वामीजी।
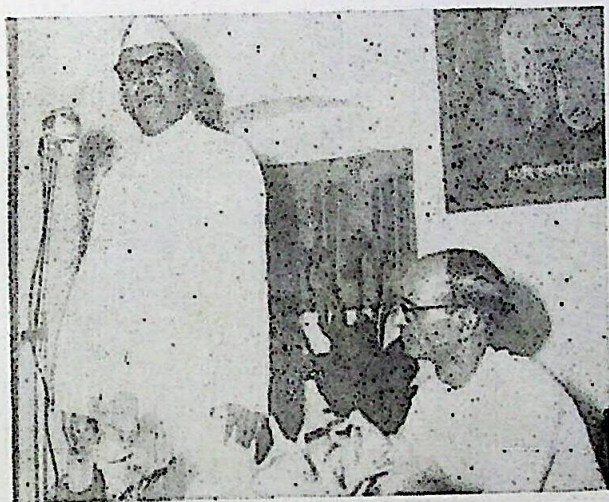
निरन्तर ४६ वर्ष तक एक ही निर्वाचन
क्षेत्र से चुने जाते रहनेवाले संसत्सदस्य,
वरिष्ठ साहित्यकार तथा हिन्दी को
राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित
कराने में अग्रणी
सेठ गोविन्ददास।
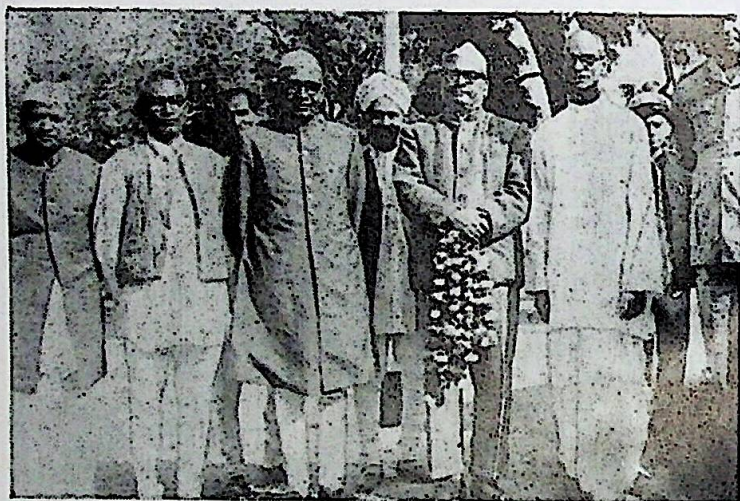
केन्द्रीय शिक्षा राज्यमन्त्री
श्री भक्तदर्शन का
आर्य कालिज में
आगमन ।
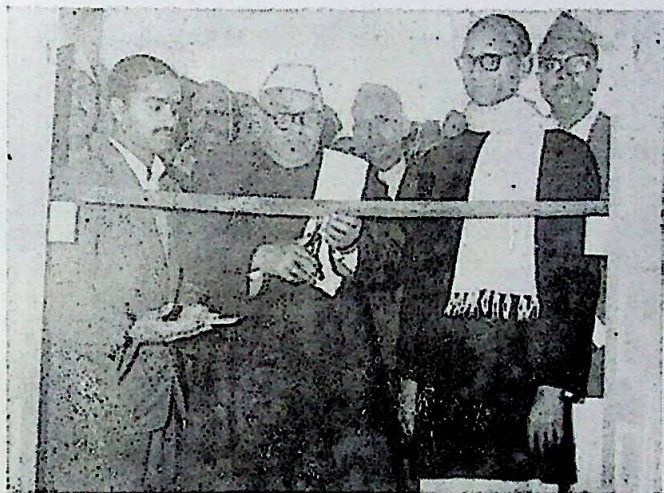
कालिज में मनाये गये आर्यसमाज स्थापना दिवस
पर विशेष रूप से आमन्त्रित लोकसभा के
अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर
कालेज में नये कक्ष तथा
पृथक् कन्याविभाग का
उद्घाटन कर
रहे हैं।
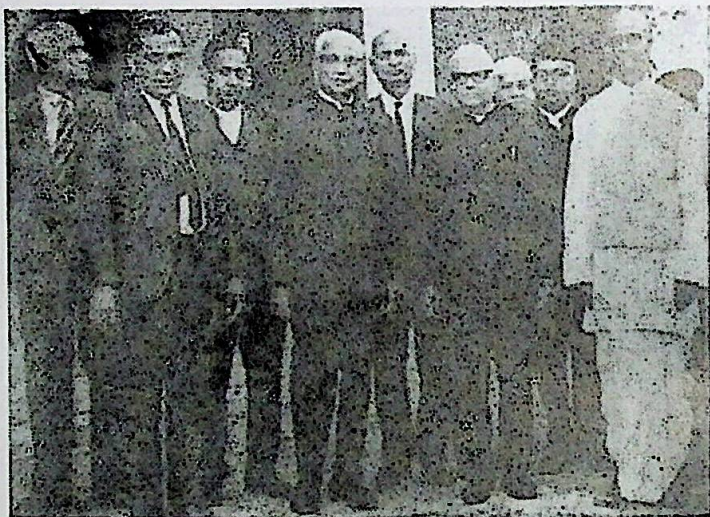
अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक
डॉ० आत्माराम के साथ। उनकी
दाईं ओर खड़े हैं—दिल्ली के
मेयर लाला हंसराज गुप्त
तथा सूचना एवं प्रसारण
मन्त्रालय में उपसचिव
श्री देसराज खन्ना।
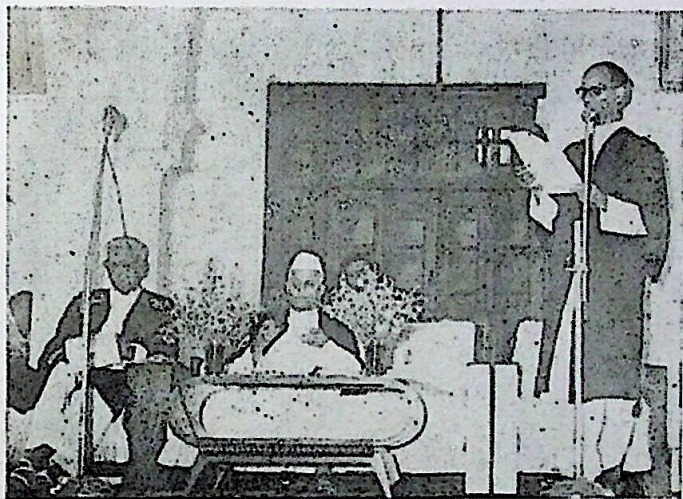
भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री श्री नरहरि विष्णु
गाडगिल की उपस्थिति में
कालिज का विवरण
प्रस्तुत करते हुए
स्वामीजी।

गृहविज्ञान विभाग का उद्‌घाटन करते
हुए श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा,
केन्द्रीय वित्त राज्य मन्त्री ।
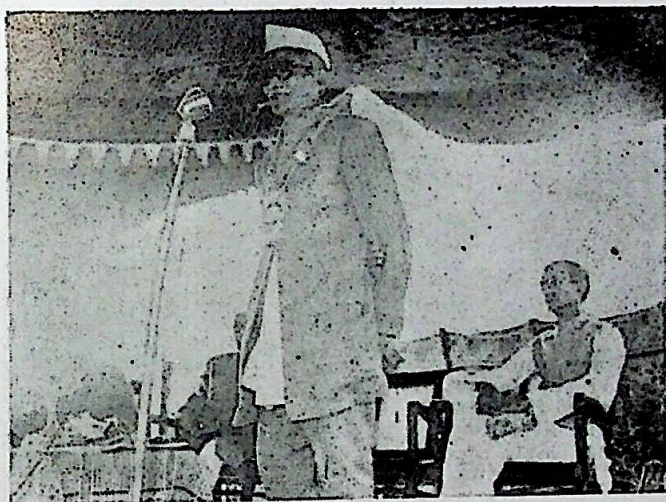
आर्यसमाज स्थापना दिवस पर
भाषण देते हुए आर्यसमाज
के यशस्वी नेता
श्री घनश्यामसिंह
गुप्त ।
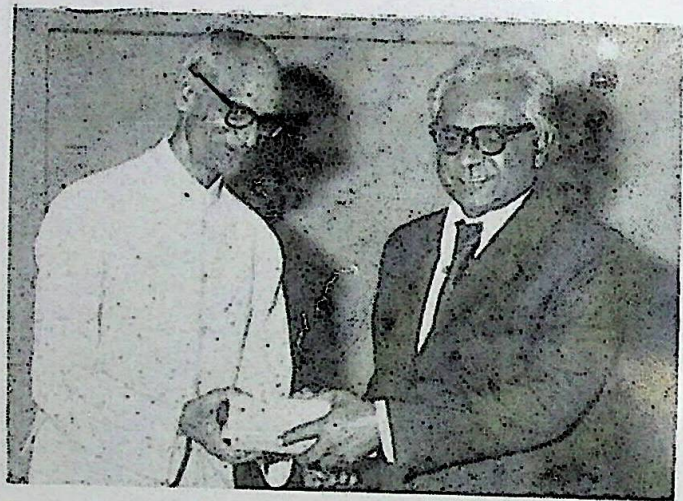
मारिशस के राजदूत
को वैदिक साहित्य
भेंट करते हुए
स्वामीजी ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में वर्षों तक भारत के
प्रतिनिधि व हरियाणा के गवर्नर
श्री वी० एन० चक्रवर्ती
(सपत्नीक) दीक्षान्त
भाषण देने पधारे।
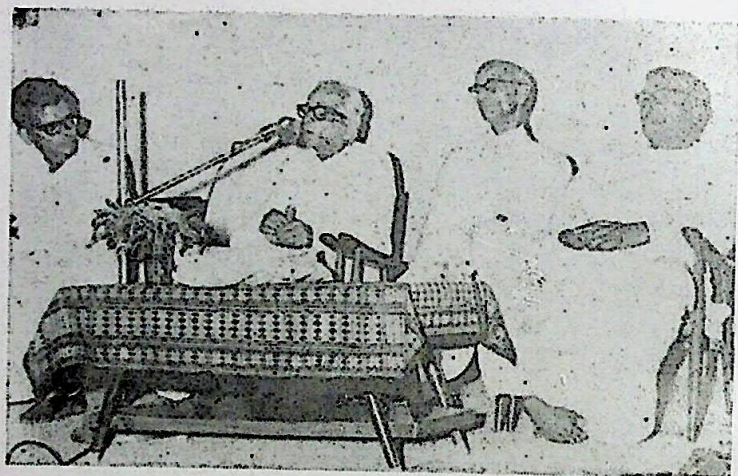
तुलसी जयन्ती के अवसर पर
अध्यक्ष पद से बोलते हुए
प्रसिद्ध विचारक तथा
मूर्धन्य साहित्यकार
श्री जैनेन्द्रकुमार।
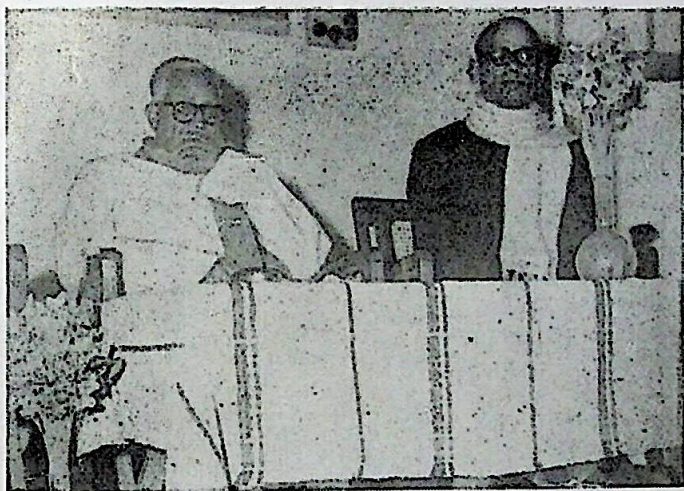
सावरमती आश्रम के संचालक तथा
व्रजभाषा के अन्यतम कवि
श्री वियोगी हरि की अध्यक्षता
में सम्पन्न वाल्मीकि जयन्ती
समारोह में भाषण
करते हुए
स्वामीजी।

पंजाब यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर
डा० अमरचन्द जोशी कालिज में
श्रद्धानन्द छात्रावास की
आधारशिला रखने
के बाद भाषण
दे रहे हैं।
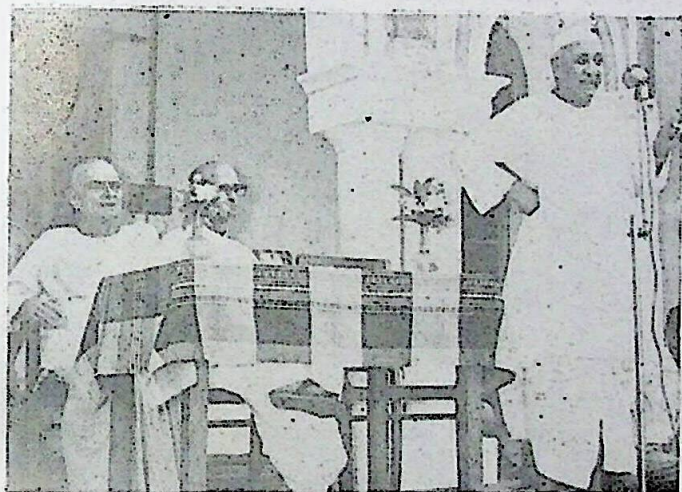
कालिज में स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष में आयोजित सभा को सम्बोधित करते हुए वरिष्ठ पत्रकार व राज्यसभा सदस्य अमर शहीद लाला जगतनारायण। स्वामीजी के साथ बैठे हैं प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० श्री बुद्धदेव विद्यालंकार।
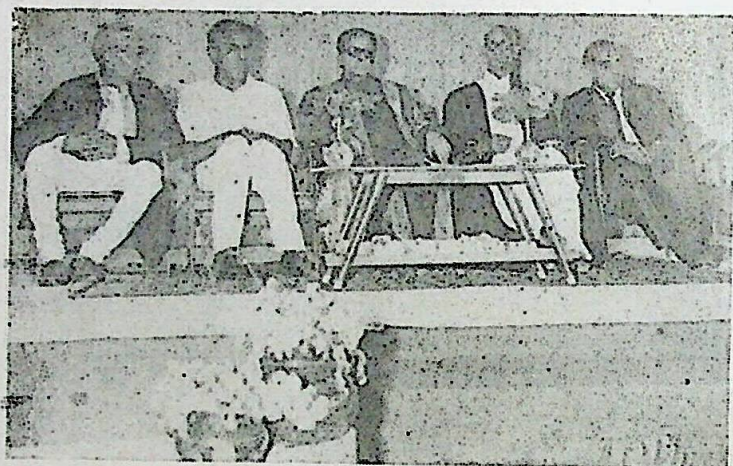
केन्द्रीय सूचना तथा प्रसारण मन्त्री
श्री इन्द्रकुमार गुजराल वार्षिक
पुरस्कार वितरण समारोह
में। उनके साथ बैठे हैं
श्री हकूमतराय
एम० एल० ए०।

किया था कि उस समय भी पंजाब के बहुसंख्यक लोगों की व्यवहार—लिखने-पढ़ने की भाषा हिन्दी थी, पंजाबी नहीं। इस सन्दर्भ में मुझे उस वर्ष हिन्दी और पंजाबी माध्यमों से परीक्षा देनेवाले छात्र-छात्राओं की संख्या जानने की आवश्यकता थी। इस कार्य के लिए मैं चण्डीगढ़ जाकर वाइस-चांसलर श्री सूरजभानजी से मिला। उन्होंने मुझे बताया कि हमारी यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार (श्री सुजानसिंह) के घर पर अकाली पार्टी की बैठकें होती हैं। मैं उससे प्रत्यक्ष रूप से ये आँकड़े नहीं माँग सकता। आप यहाँ से लौट जाएँ। जल्दी ही किसी दिन किसी बहाने मैं ये आँकड़े उपलब्ध कर टाइप कराके आपके पास भेज दूँगा, पर उस कागज़ पर मेरे हस्ताक्षर नहीं होंगे। उन्होंने वैसा ही किया। इतने से ही मेरा काम बन गया।

इस कार्य के लिए सरकार द्वारा नियुक्त संसदीय समिति (Parliamentary Commission) के समक्ष हमने अपना पक्ष प्रस्तुत किया। लोकसभा के अध्यक्ष होने के नाते सरदार हुकमसिंह उस कमीशन के अध्यक्ष थे। अध्यक्ष से आशा की जाती है कि वह निष्पक्ष होकर सबकी बात सुने, परन्तु सरदार हुकमसिंह के व्यवहार से ऐसा लगता था जैसे वे अकालियों के वकील हों। युक्तियों और प्रमाणों से वे उनके पक्ष का बलपूर्वक समर्थन कर रहे थे। वह मूलतः अकाली थे और लोकसभा के अध्यक्ष बनने से पूर्व स्वयं खालिस्तान की माँग करनेवालों में अग्रणी थे। जब मैंने उनके उन दिनों के वक्तव्य प्रस्तुत किये तो वे बड़ी दुविधा में पड़ गये। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री कामराज और पूर्व अध्यक्ष श्री ढेबर भाई से भी हमने भेंट की। जिन दो महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से हमने भेंट की, वे थे गृहमन्त्री श्री गुलज़ारी लाल नन्दा और प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री। नन्दाजी बोले—अब क्या करें, उन्होंने (अकालियों ने) रेल की पटरियाँ उखाड़ दीं, पोस्ट आफ़िस जला दिये···। प्रो० रामसिंह बोले—चलो दीक्षितजी ! हम भी पहले कुछ ऐसे ही काम कर आएँ, तभी नन्दाजी हमारी

सुनेंगे, और हम उठकर चले आये। अन्त में हम शास्त्रीजी से उनके संसद् भवन स्थित कार्यालय में मिले। उनसे काफ़ी देर तक शान्ति-पूर्वक बातें हुईं। यह सब बातचीत मेरे रिकार्ड में सुरक्षित है। अन्त में मैंने कहा—शास्त्रीजी, यदि पंजाबी सूबा बना तो वहाँ हिन्दू नहीं रह सकेंगे। शास्त्रीजी बोले—'यह तो मैं भी मानता हूँ, ऐसा तो होगा ही।' इसपर मैंने कहा—फिर जानते-बूझते पंजाबी सूबा क्यों दे रहे हैं ? शास्त्रीजी ने कहा—बातचीत में वक्त गुज़र जाएगा। हम आश्वस्त होकर चले आये। शास्त्रीजी रहते तो न पंजाबी सूबा बनता और न देश को बुरे दिन देखने पड़ते, परन्तु देश का दुर्भाग्य था, वक़्त तो नहीं गुज़रा, परन्तु ठीक दो महीने बाद ११ जनवरी, ६६ को शास्त्रीजी गुज़र गये (हमारी बातचीत उनसे १२ नवम्बर, ६५ को हुई थी)। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने गद्दी पर बैठते ही पंजाबी सूबे की घोषणा कर दी। आज पंजाब में जो कुछ हो रहा है, उसकी ज़िम्मेदारी एक-मात्र इन्दिरा गांधी पर है।

भाषा के आधार पर प्रदेशों के निर्माण की नीति देश के लिए घातक सिद्ध हुई। हरियाणा प्रदेश के पंजाब से पृथक् होने में उसका हित था, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है, परन्तु सीमान्त प्रदेश के रूप में पंजाब की स्वतन्त्र स्थिति समूचे देश के लिए कितनी भयावह हो सकती है, शास्त्रीजी यह समझते थे। इसलिए १२ नवम्बर को हुई उक्त भेंट-वार्ता में उन्होंने रहस्योद्‌घाटन किया था कि "मैंने जवाहरलालजी से कहा था कि यदि पंजाबी सूबा देना ही है तो वर्तमान (उस समय के) पैप्सु को पंजाबी सुबा बना दो, पर जवाहरलालजी नहीं माने।" शास्त्रीजी की बात मान ली जाती तो पंजाबी सूबे की सीमा पाकिस्तान की सीमाओं को छूती हुई न होती और वह शरारत करने की स्थिति में न होता। मास्टर तारासिंह ने कहा था कि हम ऐसा पंजाबी सूबा चाहते हैं जिसे विदेशों में अपने राजदूत नियुक्त करने का अधिकार होगा। सिखों का अन्तिम ध्येय पाकिस्तान की तरह Sovereign

Independent Sikh State अर्थात् प्रभुसत्तासम्पन्न स्वतन्त्र सिख राज्य की स्थापना करना है—यह अब अन्धें को भी दिखाई देता है। वस्तुतः पंजाव, हरियाणा, हिमाचल, कश्मीर और दिल्ली को एक क्षेत्र (Zone) बनाये विना इस देश की पश्चिमोत्तर सीमा की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता।

पंजाब सभा का बँटवारा—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में अन्तर्द्वन्द्व १९५६ से चला आ रहा था। स्थानीय अदालतों से लेकर हाईकोर्ट तक में मुकद्दमे चलते रहे। सन् १९६२ में सभा के अधिकारियों ने श्री वीरेन्द्र के साथ मिलकर सुलह-सफ़ाई का रास्ता निकालने का दायित्व मुझे सौंपा। तदनुसार हम दोनों आर्यसमाज मन्दिर चण्डीगढ़ में मिले और विचार किया। उस वर्ष सभा का वार्षिक अधिवेशन पानीपत में हुआ और योजना के अनुसार सर्व-सम्मति से निर्वाचन हो गया, परन्तु फिर वही ढाक के तीन पात रहे। दो बार सरकार द्वारा नियुक्त पर्यवेक्षक ने चुनाव कराया, परन्तु वह भी नहीं चला। आख़िर १९७५ में पंजाब सभा को पंजाव, हरियाणा और दिल्ली तीन शाखाओं में विभाजित कर दिया गया। इस विभाजन का आधार सार्वदेशिक सभा द्वारा १९५१ में किया गया वह निश्चय बताया गया जिसके अनुसार प्रदेशों की राजकीय सीमाओं को ही प्रदेशीय प्रतिनिधि सभाओं की सीमाएँ माना गया था। इस त्रिशाखन के पश्चात् भी पूरी शान्ति नहीं हो सकी। संयुक्त पंजाव सभा की सम्पत्ति के बँटवारे तथा गुरुकुल काँगड़ी विश्व-विद्यालय के नियन्त्रण को लेकर झगड़े पूर्ववत् चालू हैं। राजकीय सीमाओं सम्बन्धी निश्चय को पंजाब सभा पर ही क्यों लागू किया गया? एकबारगी सभी सभाओं का पुनर्गठन उस फ़ार्मूले के आधार पर क्यों नहीं किया गया? मैंने कई बार सार्वदेशिक सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है, किन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। वास्तविक बात कुछ और थी।

सार्वदेशिक सभा में प्रत्येक (प्रायः) प्रान्तीय सभा से १५ प्रतिनिधि आते हैं। जब से पंजाव सभा पर हरियाणावालों का अधिकार हुआ तब से पंजाव सभा से आनेवाले १५ प्रतिनिधि सार्वदेशिक सभा के ठेकेदार के अनुकूल नहीं होते थे। इसलिए चुनाव में ख़तरा वना रहता था। त्रिशाखन सें यह लाभ हुआ कि यदि हरियाणा सभा से आनेवाले १५ प्रतिनिधि विरोधी होंगे तो पंजाब और दिल्ली की सभाओं से आनेवाले ३० प्रतिनिधि अनुकूल होंगे। शेष प्रान्तीय सभाओं (जो अधिकतर मनोनीत Nominated जैसी हैं) से आनेवाले प्रतिनिधियों के प्रतिकूल होने की सम्भावना नहीं होती। आर्य प्रादेशिक सभा के प्रतिनिधि भी उस अवस्था में तटस्थ हो जाते हैं। वास्तव में पंजाब सभा के त्रिशाखन का आधार यह गणित था। इसी कारण सार्वदेशिक सभा के चुनाव के प्रत्यक्षतः सर्वसम्मति से होने की प्रतीति होती है।

१. महाराष्ट्र नाम का एक प्रदेश है जिसमें स्थित तीन सभाएँ सार्वदेशिक सभा से सम्वद्ध हैं—आर्य प्रतिनिधि सभा महाराष्ट्र नान्देड़, आर्य प्रतिनिधि सभा बम्वई और आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश नागपुर।

२. मध्य प्रदेश नाम का एक प्रदेश है जिसमें दो सभाएँ हैं—आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश और आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य भारत।

३. मध्य भारत व वम्वई नाम के कोई प्रदेश नहीं हैं, परन्तु दोनों में प्रतितिधि सभाएँ हैं।

४. नागपुर महाराष्ट्र में है, किन्तु वहाँ जिस प्रान्तीय सभा का मुख्यालय है, वह आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश है।

५. दिल्ली की अपनी प्रतिनिधि सभा है, किन्तु दयानन्द सेवा संघ माम से एक संस्था वनाकर उसे भी प्रान्तीय सभा के समकक्ष मानकर उसे सार्वदेशिक सभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है। उसके नाम

में 'अखिल भारतीय' शब्द जुड़ा है, किन्तु न उससे कोई समाज सम्बद्ध है और न उसके कोई सदस्य हैं, न कोई उससे परिचित है और न सभा कार्यालय से बाहर उसका कोई अस्तित्व है।

बार-बार ध्यान दिलाये जाने पर भी इन विसंगतियों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि वे सत्तारूढ़ लोगों के सत्ता में बने रहने में सहायक हैं।

सरकार और स्वयंसेवी संस्थाएँ—संयुक्त पंजाब में लगभग २५० कालिज थे। उनमें गवर्नमेण्ट कालिजों की संख्या २५ से अधिक नहीं थी। शेष सब कालिज जनता के विभिन्न वर्गों—स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा संचालित थे। उनके चलाने की ज़िम्मेदारी पूरी तरह प्रबन्ध समितियों पर थी। जहाँ तक आर्थिक सहायता का प्रश्न था, सरकार घाटे का लगभग २० प्रतिशत अनुदान देती थी—यह ऊँट के मुँह में ज़ीरे के समान था, परन्तु धीरे-धीरे सरकारी हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा था। प्रबन्ध समितियों के लिए कालिज चलाना कठिन होता जा रहा था, इसलिए तमाम कालिजों की प्रबन्ध समितियों ने मिलकर Non-Government College Managements Association बनाई जो अपनी समस्याओं को सरकार और यूनिवर्सिटी के सामने रक्खे। १९६६ में पंजाब का बँटवारा हो गया। तब हरियाणा की N. G. C. M. Association का अध्यक्ष श्री रामकिशन गुप्त, भूतपूर्व संसद् सदस्य को और महामन्त्री मुझे बनाया गया। सभी संगठनों की तरह मन्त्री होने के नाते कालिजों के इस संगठन के संचालन का अधिकतर भार मेरे ऊपर आ पड़ा। १९७२ में पंजाब और हरियाणा कालिजों के अध्यापकों ने हड़ताल कर दी। हड़ताल के दौरान कालिजों के प्राध्यापकों का व्यवहार वैसा ही देखने में आया जैसा छात्रों और मज़दूरों का। चौधरी बंसीलाल हरियाणा के मुख्यमन्त्री थे और ज्ञानी जैलसिंह पंजाब के। काफ़ी दिनों तक हड़ताल चली। मेरे आदेश पर तमाम कालिजों ने प्राध्यापकों की सेवाएँ समाप्त कर दीं। स्वभावतः सबका कोपभाजन मुझे बनना पड़ा।

अन्ततः अध्यापकों ने हड़ताल विना शर्त वापस ले ली। नाममात्र दण्ड देकर सब अध्यापकों को पुनः सर्विस में ले लिया गया।

उसी वर्ष मुझे कुलाधिपति के नाते भारत के उपराष्ट्रपति ने पंजाब यूनिवर्सिटी की सेनेट कर प्रतिष्ठित सदस्य (Fellow) नियुक्त किया था। केन्द्रीय राज्य मन्त्री प्रो० शेरसिंह और यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर श्री सूरजभान जी दोनों आर्यसमाजी थे। वे नहीं चाहते थे। ग़ैर-सरकारी कालिजों के हितों की रक्षा के लिए पंजाव के वित्तमन्त्री और सनातन धर्म सभा पंजाब के प्रधान श्री पं० मोहनलाल के सुझाव पर तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री गोपालस्वरूप पाठक ने उक्त दोनों महानुभावों की उपेक्षा करके मेरी नियुक्ति की थी। यूनिवर्सिटी के फैलो के रूप में मुझे स्मरण नहीं कि मैंने कोई कार्य निजी हित में किया हो। जो कुछ किया कालिजों की सहायता के लिए अथवा आर्यसमाज के हित में।

एक दिन सेनेट में M. A. Ancient History, Culture and Archaeology के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित होना था। पहले पत्र में सन्दर्भग्रन्थ के रूप में १५ पुस्तकों के नामों की सिफ़ारिश की गई थी—१४ पाश्चात्य और एक भारतीय विद्वान् द्वारा लिखित। मैंने आपत्ति की कि हम क्या थे, अर्थात् हमारा अतीत क्या था, यह भी हमें विदेशियों से जानना होगा। १५ में केवल एक पुस्तक का लेखक भारतीय है और उसका पत्र मेरे पास है कि मेरी पुस्तक में जो कुछ है, पाश्चात्य विद्वानों के आधार पर लिखा गया है। इसपर हुई बहस में कुछ कटुता भी आ गई—जब मैंने यह कहा कि पाश्चात्यों ने हमारा इतिहास विगाड़ने के उद्देश्य से तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है। वहाँ डी० ए० वी० संस्थाओं के कई प्रिंसिपल और प्रोफ़ेसर उपस्थित थे, किन्तु किसी ने मेरा समर्थन नहीं किया। मुझे समर्थन मिला तो खालसा कालिज गढ़दीवाला (होशियारपुर) के प्रिंसिपल सरदार हरनरेन्द्रसिंह से और यूनिवर्सिटी के मनोविज्ञान विभाग (Department

of Psychology) में रीडर मिस चन्देल से। वाइस चांसलर डाक्टर आर० सी० पाल ने मुझसे कहा कि आप भारतीय विद्वानों की लिखी पुस्तकों के नाम बताइए। यहाँ आकर मेरा सिर नीचा हो गया। हमने देश-भर में, विशेषत: पंजाव में, स्कूलों-कालिजों का जाल बिछा दिया, किन्तु सौ वर्ष में अपनी मान्यताओं की पोषक ऐसी एक-दो पुस्तकें भी तैयार नहीं करा सके जो स्कूलों या कालिजों में लगाई जा सकें। वाइस चांसलर ने उस समय मेरी सहायता करते हुए कार्यवाही में लिखवा दिया—"Principal Dikshit should be requested to send a list of such books later on for the consideration of the Board of Studies in History." सातवाँ पत्र १९वीं शताब्दी के समाज-सुधारकों से सम्वन्धित था। खेद है कि उस पत्र के सन्दर्भ में समाज-सुधारकों की सूची में राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, सर सैयद अहमद आदि के नाम थे, पर स्वामी दयानन्द का नाम नहीं था, यद्यपि बोर्ड के सात सदस्यों में से दो आर्यसमाज के कालिजों (जालन्धर और लुधियाना) के प्रोफ़ेसर थे। मैंने स्वामीजी का नाम सुझाया तो बढ़ा दिया गया।

मैंने सेनेट में विचारार्थ एक प्रस्ताव इस आशय का भेजा कि यूनिवर्सिटी में सेनेट आदि की कार्यवाही इंगलिश की वजाय हिन्दी में हुआ करे। (मैं स्वयं और प्रो० रामप्रकाश पहले ही से हिन्दी में बोलते थे)। एक दिन मुझे वाइस चांसलर का पत्र मिला जिसमें उन्होंने मुझे एक आवश्यक विषय पर बातचीत करने के लिए चण्डीगढ़ बुलाया था। मेरे मिलने पर उन्होंने वताया कि जब आपका पत्र सिंडीकेट में रक्खा गया तो मुझे अनुभव हुआ कि आपका प्रस्ताव अस्वीकार होकर हिन्दी की वजाय पंजावी आ जाएगी और जव मैंने यह देखा कि आपके अपने लोग भी पंजावी का पक्ष ले रहे हैं (अपने लोगों से डी० ए० वी० वाले अभिप्रेत थे) तो मैंने आपका प्रस्ताव आपकी अनुमति के बिना वापस ले लिया। सारी स्थिति से आपको अवगत

करना मेरे लिए आवश्यक था।

आर्यसमाजी नामधारी लोगों ने यूनिवर्सिटी में पहुँचकर अपनी संस्थाओं के हित में चाहे कितना ही काम किया हो, जहाँ तक मेरी जानकारी है, कभी किसी ने आर्यसमाज के दृष्टिकोण से अथवा आर्यसमाज की मान्यताओं के हित में आज तक कोई काम नहीं किया।

प्रिंसिपल के रूप में मुझे बड़ा कठोर समझा जाता था। अनुशासन व नियमों के पालन की दृष्टि से मैं कठोर था भी। वस्तुतः यह कठोरता कुछ स्वाभाविक थी और कुछ अर्जित। अध्ययन-काल में मुझे तीन महानुभावों ने अधिक प्रभावित किया था। अनुशासन में कठोरता मैंने प्रिंसिपल श्री लाला रामदासजी से सीखी थी। उनके विषय में विद्यार्थियों में यह प्रसिद्ध था—

जब मूँछ उठाकर 'नो' कह दी मानो ये हुकम ख़ुदा का है।
इस 'नो' के आगे अकड़ना लोहे के चने चबाना है॥

प्रिंसिपल द्वारा किसी विद्यार्थी को जब Character Certificate दिया जाता है तो उसके सम्बन्ध में कुछ प्रशंसात्मक बातें लिखी जाती हैं—साधारणतया वे सब बातें एक जैसी होती हैं। मेरे सर्टिफ़िकेट में प्रिंसिपल साहब ने एक ही वाक्य लिखा था, किन्तु वह इतना महत्त्व-पूर्ण था कि वह मेरे जीवन के लिए प्रेरणा और उत्साह का स्रोत बना रहा। उन्होंने लिखा था—

'He is likely to acquit himself well, howsoever adverse the circumstances may be under which he be placed.'

अर्थात्—चाहे कितनी ही विषम परिस्थितियों में उसे रहना पड़े, वह उनका सफलतापूर्वक सामना करेगा।

मेरे जीवन में जो लचीलेपन का अभाव और दृढ़ता है, वह उनकी देन है। सरलता, सादगी और निर्लोभता मैंने विशेषतः पं० श्री रलाराम जी (उस समय वाइस-प्रिंसिपल, कालान्तर में प्रिंसिपल और M.L.A.)

से पाई और मिश्नरी भावना श्री लाला देवीचन्दजी से मिली। वस्तुतः ये तीनों गुण मुझे घुट्टी में और विरासत में अपने पिताश्री से मिले थे। उन्हीं से प्राप्त अंकुरों को उक्त तीनों महानुभावों ने खाद-पानी देकर पल्लवित-पुष्पित करने में सहायता दी। यह कहना सर्वथा अनुपयुक्त नहीं होगा कि कुछ हद तक उन्होंने भी इन गुणों को मेरे पिताश्री से प्राप्त किया था। उनमें एक पं० श्री रलारामजी तो साक्षात् उनके शिष्य ही थे और शेष उनके सहयोगी थे। श्री लाला देवीचन्दजी के उनके नाम लिखे एक-दो पत्र मैंने देखे थे, जिनमें अपने हस्ताक्षरों के ऊपर 'आपका दास' अथवा 'दासानुदास' लिखा हुआ था। कुछ ऐसा ही भाव उनके (पिताश्री) सम्वन्ध में आचार्य विश्वबन्धुजी ने व्यक्त किया था, जव उन्होंने एक वार होशियारपुर में अपने संस्मरणों में कुछ ऐसी वातें वतायी थीं जिनका मुझे ज्ञान नहीं था। विचारों की अभिव्यक्ति में स्पष्टवादिता, दृढ़ता और निर्भीकता मेरे भीतर उन्हीं से संक्रमित हुई थी। आज वड़े-वड़े आर्यसमाजी आर्यसमाज की सदस्यता के चन्दे के रूप में अपनी आय का शतांश नहीं देते। पिताजी मनुस्मृति के आदेशानुसार वेतन लाते ही उसका दशांश दान के निमित्त अलग रख देते थे। इस वात में भी मैंने प्रायः उनका अनुकरण किया है।

यहाँ यदि मैं एक वात का उल्लेख न करूँ तो वड़ी भूल होगी। पानीपत में मैंने जो कुछ किया और उसमें जो सफलता प्राप्त की उसका काफ़ी श्रेय कालिज की प्रवन्ध समिति को है जिसका भरपूर सहयोग मुझे सदा प्राप्त रहा। उसके विना मेरा एक कदम भी चलना कठिन होता।

फिर होशियारपुर में—आर्य प्रतिनिधि सभा के १९७३ में हुए निर्वाचन के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों में मेरे जैसे व्यक्ति के लिए कार्य करना कठिन था जिसके लिए सिद्धान्त मुख्य है। इसलिए जून १९७४ में प्रिंसिपल पद से मैंने त्यागपत्र दे दिया। अभी मैं

कालिज से कार्यमुक्त नहीं हुआ था कि मुझे तार द्वारा डी० ए० वी० कालिज होशियारपुर से प्रिंसिपल के पद पर नियुक्ति की सूचना मिली। इस प्रकार मैं ३३ वर्ष बाद एक बार फिर होशियारपुर पहुँच गया। जिस कालिज में (जब वह इण्टरमीडिएट कालिज था) मैंने शिक्षा पाई थी, उसी कालिज में (जब वह पोस्ट-ग्रेजुएट कालिज बन गया था) ३३ वर्ष बाद प्रिंसिपल के पद पर नियुक्त होकर जाना मेरे लिए अत्यधिक गौरव और प्रसन्नता की बात थी। होशियारपुर से मेरा सम्बन्ध कभी टूटा नहीं था। वहाँ की आर्यसमाज के उत्सवों पर मैं प्राय: जाता रहता था। मेरे गुरुजनों में प्रमुख तीन पूज्य महानुभावों (जिनका मैं पहले उल्लेख कर चुका हूँ) में से एक श्री लाला देवीचन्द-जी का देहान्त हो चुका था। श्री लाला रामदासजी और श्री पं० रलारामजी तब जीवित थे। उनके अतिरिक्त श्री लाला मिलखीराम सूद एडवोकेट (जिन्होंने १९३४ में मुझे पहली बार नियुक्ति-पत्र दिया था) भी जीवित थे। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है कि प्रिंसिपल श्री रामदासजी और लाला श्री मिलखीरामजी अभी तक विद्यमान हैं—१०६ और १०८ वर्ष की अवस्था में। इन पूज्य महानुभावों ने मुझे सावधान किया। उन्होंने बताया कि अब तो कालिज भ्रष्टाचार और अनियमितताओं का अड्डा बना हुआ है। तुम्हारे जैसे आदमी के लिए यहाँ रहना सम्भव नहीं होगा। कुछ ही दिनों में मुझे इस सचाई का प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। उक्त चारों दिग्गज जिस स्थिति को न सँभाल सके और निराश व अपमानित होकर एक तरफ़ बैठ गये, उसे मैं कैसे सँभाल सकता था ? दो-चार घटनाओं के बाद मैंने वहाँ से हट जाने का निश्चय करके त्याग-पत्र दे दिया। ज्ञानी ज़ैलसिंह उन दिनों पंजाब के मुख्यमन्त्री थे। उन्होंने होशियारपुर के डिप्टी कमिश्नर के द्वारा मुझे सन्देश भेजा कि मैं अपना त्यागपत्र वापस ले लूँ। फिर वे (ज्ञानीजी) कालिज के सर्वेसर्वा चौधरी बलबीरसिंह को देख लेंगे। मैं झगड़े में नहीं पड़ना चाहता था। दिल्ली चला आया।

मेरे चले आने के कुछ ही दिन वाद देवतास्वरूप पं० श्री रलारामजी की हत्या कर दी गई। ज्ञानीजी स्वयं होशियारपुर पहुँचे, परन्तु पुलिस आज तक हत्यारे को नहीं पकड़ सकी और अब उसे कोई कभी नहीं पकड़ सकेगा। जिसे ज्ञानी ज़ैलसिंह न देख सके उसे १९८४ में आतंकवादियों ने देख लिया। □

खण्ड ४—फिर दिल्ली में

दिल्ली लौटने पर भी पानीपत के साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहा। पानीपत के आर्य कालिज, आर्य हायर (अब सीनियर) सैकेण्डरी स्कूल, आर्य गर्ल्स हाईस्कूल तथा आर्य बालभारती—चारों संस्थाओं की प्रबन्ध समितियों का पिछले कुछ दिनों तक अध्यक्ष बना रहा। वहाँ की आर्यसमाज तथा उसके माध्यम से आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा तथा सार्वदेशिक सभा से भी ज्यों-का-त्यों सम्बन्ध बना रहा। हाँ, १६७८ के बाद से मैंने हरियाणा सभा तथा सार्वदेशिक सभा की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेना छोड़ दिया। कुछ समय तक मैंने गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के आचार्य के पद पर भी कार्य किया।

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह—१६७५ में आर्यसमाज का शताब्दी समारोह दिल्ली में मनाया गया। स्वामी दयानन्द द्वारा सर्वप्रथम स्थापित जिस आर्यसमाज की शताब्दी मनाई जानी थी, वह आर्यसमाज बम्बई में बनी थी। इसलिए लोग चाहते थे कि शताब्दी समारोह बम्बई में मनाया जाए, परन्तु तिकड़म के बल पर इसे दिल्ली में मनाने की श्री रामगोपालजी शालवाले की योजना सफल हो गई। मैं उन दिनों बम्बई में था। रविवार को आर्यसमाज काकड़बाड़ी के साप्ताहिक सत्संग में शामिल हुआ। यह वही समाज है जिसकी स्थापना महर्षि दयानन्द ने चैत्र शुक्ला पंचमी, संवत् १६३२, तदनुसार १० अप्रैल, १८७५ को की थी और जिसकी शताब्दी विश्वभर में मनाई जा रही थी। सत्संग में कुल मिलाकर १६ व्यक्ति उप-

स्थित थे जिनमें ६ व्यक्ति वे थे जो दिल्ली में होनेवाले शताब्दी समारोह में सम्मिलित होने के लिए मारीशस से आये थे और स्वामी-जी द्वारा स्थापित पहली आर्यसमाज को देखने वहाँ पहुँचे थे। शेष ७ में एक वक्ता, १ मैं स्वयं और दो समाज के पुरोहित थे। इस प्रकार सत्संग में उपस्थित स्थानीय व्यक्ति कुल जमा ३ थे। आपस के झगड़ों के कारण आज भी उस समाज की वही स्थिति है। आय ख़ूब होती है और वही झगड़ों का सबसे बड़ा कारण है। भीड़ की दृष्टि से दिल्ली में हुआ यह समारोह सफल रहा। पैसा भी ख़ूब आया, और बस।

एक दिन मुझे प्रोफ़ेसर रामसिंहजी ने बताया कि सार्वदेशिक सभा के प्रधान लाला रामगोपाल शालवाले ने पंजाब यूनिवर्सिटी के पूर्व वाइस-चांसलर लाला सूरजभानजी को पत्र लिखा कि मैं चाहता हूँ कि शताब्दी के अवसर पर महर्षि दयानन्द या आर्यसमाज से सम्बन्धित एक लेख दिल्ली के किसी अंग्रेज़ी दैनिक में प्रकाशित हो। आप अंग्रेज़ी के कुशल लेखक हैं और वाइस-चांसलर होने के नाते आपकी प्रतिष्ठा है। ऐसा एक लेख आप लिखकर भेज दें तो मैं किसी अंग्रेज़ी दैनिक में छपवा दूँगा। लेख आ गया और छप भी गया, परन्तु उसपर लेखक के रूप में 'सूरजभान' की जगह 'रामगोपाल शालवाले' का नाम था। मुझे प्रो० रामसिंह पर विश्वास था, परन्तु यह बात इतनी विचित्र थी कि मैं सहसा उसपर विश्वास न कर सका। मैंने तत्काल सीधे लाला सूरजभानजी को पत्र लिखकर स्थिति को स्पष्ट करने का अनुरोध किया। उत्तर में उन्होंने लिखा—"What you say, did happen." शिरोमणि सभा के शिरोमणि नेता का यह चरित्र देखकर मैं स्तब्ध रह गया।

सत्यार्थप्रकाश शताब्दी—१६७६ में दिल्ली में सत्यार्थप्रकाश की शताब्दी मनाई गई। उसमें पधारनेवाले वक्ताओं में श्री अटलबिहारी वाजपेयी का नाम भी था। मैंने उन्हें पत्र लिखकर सावधान किया। मैंने लिखा—"जब आप इस अवसर पर बोलने खड़े होंगे तो निश्चय

ही 'जिसका व्याह उसके गीत' के अनुसार सत्यार्थप्रकाश के गीत गाएँगे। उसका एक पूरा समुल्लास खान-पान के सम्बन्ध में है। मैंने सुना है कि आप मांस-मदिरा का ख़ूब सेवन करते हैं। इसलिए या तो आप उत्सव में आएँ नहीं, आएँ तो इन व्यसनों का परित्याग करके आएँ अथवा खड़े होते ही यह घोषणा करें कि आज तक मेरे अन्दर ये दोष थे, आज इस पवित्र अवसर पर मैं इनका परित्याग करता हूँ। और यदि जो कुछ मैंने सुना है, वह असत्य है तो मैं आपसे पहले ही क्षमा माँग लेता हूँ।" श्री वाजपेयी उत्सव में नहीं आये। मेरे पत्र के उत्तर में उन्होंने इतना ही लिखा—'आपका कृपा पत्र मिला। बहुत-बहुत धन्यवाद।'

आर्य विद्वत्सम्मेलन—बहुत दिनों से मैं अनुभव करता आ रहा था कि आर्यसमाज का बड़ी तीव्र गति से पतन हो रहा है और यदि इसके कारणों और उपचार पर गम्भीरतापूर्वक विचार न किया गया तो इसका नाश अवश्यम्भावी है। एतदर्थ मैंने सार्वदेशिक सभा को पत्र द्वारा बार-बार प्रेरणा की, किन्तु किसी ने नहीं सुनी। तब मैंने अपनी बात देश के प्रमुख विद्वानों तथा नेताओं तक पहुँचाई। सभी ने इस प्रकार के सम्मेलन की आवश्यकता पर बल दिया। तदनुसार १-२ जनवरी, १९७७ को आर्यसमाज मन्दिर मार्ग के सहयोग से वहीं इस प्रकार के सम्मेलन का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन आर्य-जगत् के मूर्धन्य संन्यासियों—सर्वश्री स्वामी सर्वानन्दजी, स्वामी सत्यप्रकाशजी, आनन्द स्वामीजी, स्वामी धर्मानन्दजी और स्वामी ओमानन्दजी—की ओर से आमंत्रित किया गया था। मैं उसका संयोजक था और श्री भारतेन्द्रनाथजी मेरे परम सहायक। सार्वदेशिक सभा की ओर से इसमें बाधा डालने का प्रयास किया गया—यहाँ तक कि आमन्त्रित करनेवाले संन्यासियों को झूठ-मूठ तार द्वारा सम्मेलन के स्थगित हो जाने की सूचना दी गई। सौभाग्य से ये तार तब पहुँचे जब वे लोग अपने-अपने स्थान से चल चुके थे।

स्वामी सर्वानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में सम्पन्न यह सम्मेलन दो दिन तक चला। लगभग सवा सौ विद्वानों तथा नेताओं–संन्यासियों, उपदेशकों, लेखकों, पत्रकारों, शिक्षाशास्त्रियों, सार्वदेशिक सभा के भूतपूर्व मन्त्रियों तथा प्रान्तीय सभाओं के प्रमुख अधिकारियों—ने इसमें भाग लिया। एक स्वर से सबने अनुभव किया कि आर्यसमाज के सौ वर्ष के इतिहास में इस प्रकार का आयोजन और गम्भीर चिन्तन पहले कभी नहीं हुआ। दो दिन के मन्थन के पश्चात् दो दर्जन से अधिक निश्चय किये गये। ये सब प्रस्ताव श्री स्वामी सर्वानन्दजी महाराज के हस्ताक्षरों से सार्वदेशिक सभा को विचारोपरान्त कार्यान्वयन के लिए भेज दिये गये। सार्वदेशिक सभा ने उक्त सम्मेलन को अवैध घोषित करके उसके निश्चयों पर विचार करने से इन्कार कर दिया। बहुत प्रयास करने पर सभा ने विचार किया, पर इतना ही कि एक उप-समिति बना दी। हुआ कुछ नहीं। १९८२ में आर्यसमाज अजमेर की शताब्दी मनाई गई। लोगों को १९७७ के सम्मेलन की उपयोगिता और असफलता की याद आई तो उसी प्रकार का एक सम्मेलन उस अवसर पर भी मेरी अध्यक्षता में कर डाला। उसके फलस्वरूप श्री दत्तात्रेय वाव्ले के संयोजन में एक समिति बना दी गई। यह समिति आज भी हाथ-पैर मार रही है। मैं उससे अलग हो गया हूँ, क्योंकि अन्ततः—

राम कीन्ह चाहंहि अस होई।
करत अन्यथा अस नहिं कोई॥
होइ है वही जो राम रचि राखा।
फिर क्यों करि तरक बढ़ावै साका॥

१-२ जनवरी १९७७ को दिल्ली में सम्पन्न आर्य विद्वत् सम्मेलन में पारित प्रस्ताव—१. मनु को प्रमाण मानकर महर्षि दयानन्द ने लिखा है—"यदि एक अकेला वेदों को जाननेवाला, द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि

अज्ञानियों के लाखों-करोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करें, उसको कभी न मानना चाहिए।" एतदनुसार आर्यसमाज की सर्वोच्च सत्ता ३ अथवा ५ संन्यासियों में निहित होनी चाहिए। प्रथम बार इन संन्यासियों का चुनाव समस्त प्रान्तीय सभाओं के अन्तरंग सदस्यों द्वारा निर्मित निर्वाचन मण्डल द्वारा किया जाए। तदनन्तर रिक्त स्थानों की पूर्ति अवशिष्ट संन्यासी करते रहें।

उपर्युक्त संन्यासी मण्डल सर्वात्मना आर्यसमाज को समर्पित, पूरा समय आर्यसमाज के ही कार्य में संलग्न किसी विद्वान् तथा चरित्रवान् व्यक्ति (यथासम्भव संन्यासी) को सार्वदेशिक सभा का प्रधान नियुक्त करे। इस प्रकार नियुक्त सार्वदेशिक सभा के प्रधान के परामर्श से, सार्वदेशिक सभा के प्रधान के गुणों से युक्त व्यक्तियों की, प्रान्तीय सभाओं के प्रधान पद पर नियुक्ति भी संन्यासी मण्डल किया करे। अपने-अपने मन्त्रिपरिषद् की नियुक्ति का अधिकार तत्तत् प्रधान को होगा। मन्त्रिपरिषद् की नियुक्ति इस प्रकार की जाए कि जो व्यक्ति जिस कार्य के लिए उपयुक्त हो उसे वही कार्य सौंपा जाए तथा योग्यता के साथ-साथ यथासम्भव प्रतिनिधित्व का स्वरूप भी बना रहे। सार्वदेशिक सभा तथा प्रान्तीय सभाओं के मन्त्री भी पूरा समय देनेवाले विद्वान् पुरुष ही होने चाहिएँ। सार्वदेशिक तथा प्रान्तीय सभाओं के प्रधानों को बिना कारण बताये हटाने का अधिकार संन्यासी मण्डल को होगा।

२. सार्वदेशिक सभा तथा प्रान्तीय सभाओं की कार्यकारिणी सभाओं का निर्माण वर्तमान अन्तरंग सभाओं की तरह न होकर राजकीय मन्त्रिमण्डलों की पद्धति पर किया जाए। सभा द्वारा किये जानेवाले कार्य को विभिन्न विभागों में बाँटकर प्रत्येक विभाग के लिए एक मन्त्री, सचिव या अधिष्ठाता नियुक्त किया जाए। कार्यकारिणी में एक भी सदस्य ऐसा न हो जिसके ज़िम्मे कोई न कोई काम न हो।

३. जिन संगठनों या संस्थाओं का काम मात्र देश की सीमाओं

तक सीमित है उनके पास तो सैकड़ों नहीं हजारों व्यक्ति ऐसे हैं जो चौवीस घण्टे अपने संगठन के लिए सोचते और उसकी गतिविधियों में संलग्न रहते हैं, किन्तु 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का लक्ष्य लेकर सारे संसार की शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति को अपना उद्देश्य माननेवाले आर्यसमाज के उच्चस्तरीय (सार्वदेशिक व प्रादेशिक) संगठनों में भी ऐसे व्यक्तियों का अभाव है जो अपना सारा समय अपनी-अपनी सभा के कार्यों में लगा सकें। इसलिए सार्वदेशिक तथा प्रान्तीय सभाओं के मन्त्रिपरिषद् में ऐसे ही व्यक्तियों को नियुक्त किया जाए जो अपना सारा समय सभा के कार्य में लगा सकें। सार्वदेशिक तथा प्रादेशिक सभाओं में नियुक्त मन्त्रिपरिषद् के सदस्य एक दूसरे से भिन्न होने चाहिएँ।

४. प्रस्तावित पद्धति के अन्तर्गत कुछ विभागों के नाम इस प्रकार हो सकते हैं—

(१) संगठन, (२) वित्त, (३) कार्यालय, (४) आर्षशिक्षा, (५) प्रचारक विद्यालय व प्रचार की आधुनिक शैली का योजना विभाग, (६) अनुसन्धान, (७) प्रकाशन, (८) राजनीति, (९) दलितोद्धार, (१०) शुद्धि, (११) गोरक्षा, (१२) न्याय व अनुशासन, (१३) अन्धविश्वास निवारण, (१४) कुरीति निवारण, (१५) विदेश प्रचार, (१६) महिला प्रचार, (१७) युवा संगठन, (१८) वन-पर्वत प्रचार, (१९) राष्ट्रभाषा, (२०) संस्कृत, (२१) मांस-मदिरा निषेध, (२२) जनसम्पर्क, (२३) वर्ण-आश्रम विभाग।

५. प्रान्तीय सभाओं के साधन और सामर्थ्य सीमित होते हैं। इसलिए वे समूचे प्रान्त में व्यापक प्रचार की व्यवस्था नहीं कर पातीं। यदि हर ज़िले या तहसील को इकाई मानकर अपने-अपने ज़िले और तहसील में प्रचार की व्यवस्था का दायित्व ज़िले तथा तहसील के स्तर पर बनाये गये संगठन को सौंपा जाए तो निश्चय से प्रचार-कार्य में तेज़ी आ सकती है। इस दृष्टि से आर्यसमाज के विधान में ज़िले

तथा तहसील स्तर पर गठित उपसभाओं का प्रावधान होना चाहिए। ज़िला उपसभाओं के प्रधानों की नियुक्ति प्रान्तीय सभा के प्रधान द्वारा तथा तहसील उपसभाओं के प्रधानों की नियुक्ति ज़िला उपसभा के प्रधान द्वारा की जाएगी। अपनी-अपनी कार्यकारिणी बनाने का अधिकार सम्बद्ध उपसभाओं के प्रधानों को होगा।

६. प्रत्येक स्तर पर सभाओं की साधारण सभाओं का निर्माण अपने से निचली सभाओं द्वारा होगा। जिस प्रकार सार्वदेशिक सभा का निर्माण प्रान्तीय सभाओं से होता है, उसी प्रकार प्रान्तीय सभाओं का निर्माण ज़िला सभाओं से होना चाहिए।

७. सर्वोच्च सत्तासम्पन्न संन्यासी मण्डल के अतिरिक्त समस्त नियुक्तियाँ ३ वर्ष के लिए होंगी। एक बार तीन वर्ष के लिए नियुक्त व्यक्ति अगली ही बार दुवारा नियुक्त न हो सकेगा।

८. यह मात्र रूपरेखा है। इसे कार्यान्वित करने के लिए नीचे से ऊपर तक समस्त विधान को नये सिरे से तैयार करना होगा।

९. आर्यसमाज के संगठन में साप्ताहिक सत्संगों में २५ प्रतिशत उपस्थिति, आय का शतांश चन्दा तथा आचार सम्बन्धी उपनियमों का प्रायः बिलकुल पालन नहीं होता। अधिकांश आर्यसमाजों में तो न कोई रजिस्टर होता है, न साप्ताहिक सत्संग लगता है, न कोई आय का शतांश चन्दा देता है और न सभासद् घोषित करते समय सदाचार पर ध्यान दिया जाता है। यह जानते हुए भी कि हम जो कुछ कर रहे हैं यथार्थ के विपरीत है, प्रधान, मन्त्री व कोषाध्यक्ष हस्ताक्षर करते चले जाते हैं। परिणामतः आर्यसमाज का रिकार्ड नीचे से ऊपर तक झूठा बनता चला जाता है। फिर भी हम "सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचारकर करने चाहिएँ" की रट लगाये जाते हैं। इसलिए ऐसे एक भी सदस्य को आर्यसभासद् घोषित न किया जाए—

(क) जो अपनी आय का शतांश चन्दे के रूप में न देता हो।

(ख) जिसकी साप्ताहिक सत्संगों में उपस्थिति २५ प्रतिशत से कम हो।

(ग) जो किसी भी रूप में मांस या मदिरा का सेवन करता हो।

१०. मत देने के लिए २५ प्रतिशत उपस्थिति का नियम रहे किन्तु प्रधान या मन्त्री बनने के लिए ६५ प्रतिशत तथा अन्तरंग सभासद् बननेवाले के लिए ५० प्रतिशत उपस्थिति आवश्यक हो।

११. उपर्युक्त नियमों का कठोरता से पालन होने पर निश्चय ही सभासदों की संख्या कम हो जाएगी, किन्तु संख्या की अपेक्षा गुणों पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। संगठन के सभी स्तरों पर निराई करके यदि घास-फूँस या खरपतवार को निकाल फेंका जाए तो काम के पौधे अधिक पनप सकेंगे। ऐसे थोड़े-से आर्यसमाजियों को देखकर लोग आर्यसमाज की ओर अधिक आकृष्ट हो सकेंगे। ऐसे थोड़े-से ही व्यक्तियों से बना समाज अधिक सजीव व सशक्त सिद्ध होगा। झूठ के पाँव नहीं होते। उसके सहारे खड़ा समाज देर तक नहीं चल सकेगा। आज लड़खड़ा रहा है, कल गिर पड़ेगा।

१२. कभी अपने को आर्यसमाजी कहने में हमें गर्व अनुभव होता था। आज यदि लज्जा नहीं तो संकोच अवश्य होता है। आज ऐसी एक भी बात नहीं जिसे लेकर हम यह कह सकें कि और कुछ हो न हो, प्रत्येक आर्यसमाजी में अमुक गुण तो अवश्य मिलेगा। आर्यसमाजी अध्यापकों, उपदेशकों, दुकानदारों, व्यापारियों, उद्योगपतियों, वकीलों, अफसरों, बाबुओं, विधायकों, मन्त्रियों आदि में एक भी विशेषता ऐसी नहीं मिलेगी जो उनके आर्यसमाजी होने की परिचायक हो या जो उन्हें अपने ही वर्ग के आर्यसमाजेतर लोगों से अलग करती हो। आर्यसमाजी और ग़ैरआर्यसमाजी की जीवन-पद्धति में किसी के आर्यसमाजी होने के कारण कोई स्पष्ट अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। विधि-विधान के अनुसार नीचे से उपर तक संगठन का निर्माण हो। आर्यसमाजों की और उनके सदस्यों की संख्या भले ही कम हो जाए, किन्तु जितने भी

हों, खरे हों। खोटे सिक्कों से जेब भरी भी हो तो किस काम की ?

१३. हमारा लक्ष्य वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार मानव समाज का निर्माण करना है। आर्यसमाज स्वयं में साध्य नहीं है, बल्कि वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार के निमित्त साधन रूप में खड़ा किया गया आन्दोलन है, अतः समाज का विकास उसी रूप में उचित है जिसमें वह वैदिक धर्म के विकास में सहायक हो। यही उसकी उन्नति की कसौटी होनी चाहिए। 'क' नाम के आर्यसमाज के सदस्यों की संख्या एक वर्ष में ५० से १०० हो जाए, समाज मन्दिर में ४ कमरे और बन जाएँ, उत्सव पर १० हज़ार की बजाय १५ हजार चन्दा जमा हो जाए, उसके अधीनस्थ मिडल स्कूल का हाई स्कूल या हाई स्कूल का कालिज या उसके छात्र-छात्राओं की संख्या ६०० से बढ़कर १००० हो जाए। दूसरी ओर 'ख' नाम के आर्यसमाज के सदस्यों की संख्या ५० से घटकर २० रह जाए, मन्दिर में एक भी कमरा न बढ़े, चन्दा घटकर ५ हज़ार रह जाए, उसके अधीनस्थ शिक्षण संस्था टूट जाए अथवा विद्यार्थियों की संख्या ३०० रह जाए, परन्तु उसके सदस्यों में दैनिक यज्ञ आदि करने और नियमित रूप से वेदपाठ करनेवालों की संख्या २ से ५ हो जाए, उसके वकील सदस्य झूठे मुकद्दमे लेना छोड़ दें, शिक्षण-संस्था के अध्यापकों तथा छात्रों में अनुशासन आ जाए, बीड़ी, सिगरेट पीने या सिनेमा जानेवालों की संख्या कम हो जाए, दो दुकानदार सदस्यों के बारे में लोग कहने लगें कि ये आर्यसमाजियों की दुकानें हैं, वहाँ कोई भी चीज़ शुद्ध और ठीक दामों पर मिलती है, एक-दो व्यापारी सदस्यों की साख जम जाए कि इन्कम टैक्सवाले उनके हिसाब की जाँच-पड़ताल करना आवश्यक नहीं समझते। दोनों आर्यसमाजों की तुलना करने पर मैं 'ख' नामक आर्यसमाज को उन्नत और 'क' नामक आर्यसमाज को अवनत मानूँगा।

१४. आवश्यकता पड़ने पर जब किसी रोगी को खून चढ़ाया जाता है तो इस बात का ध्यान रखा जाता है कि चढ़ाया जाने वाला

खून रोगी के वर्ग का हो। उसकी प्रकृति के अनुकूल हो। विपरीत गुणोंवाला खून चढ़ाये जाने पर लाभ की वजाय हानि हो सकती है। नये खून के नाम पर जिन लोगों की भरती की जा रही है वे आर्यसमाज की मान्यताओं से कोसों दूर हैं। वेद पढ़ने की तो बात ही क्या, उनमें से अधिकांश को आर्यसमाज के १० नियमों तक का ज्ञान नहीं होता। उन्हें आर्यसमाज में लानेवाले अपनी-अपनी स्थिति मज़बूत करने के उद्देश्य से चुनाव में हाथ खड़ा करने के लिए लाते हैं और आनेवाले भी किन्हीं स्वार्थों से प्रेरित होकर आते हैं। फलतः हमारे सार्वदेशिक, प्रान्तीय तथा स्थानीय संगठनों की आज जो अवस्था है उसके होते हुए हम किस मुँह से दुनिया से कह सकते हैं कि आर्यसमाज में आने से तुम्हारे जीवन में पवित्रता आ जाएगी। अपने संगठन को वनाये रखने के लिए अदालतों और पुलिस का सहारा लेनेवाला समाज ऋग्वेद के एकता सूक्त का नारा लगाकर संसार का कल्याण करने की बात कैसे कह सकता है? आज हमारे संगठन का नेतृत्व पवित्र आचार-विचारवाले वैदिक विद्वानों, संन्यासियों के हाथों से निकलकर वोट बटोरने में सिद्धहस्त सांसारिक व्यवहार में कुशल उछल-कूदकर जनता को मोहनेवाले तिकड़मी हाथों में चला गया है। फिर 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः' के अनुसार सामान्य लोगों की स्थिति कैसे भिन्न हो सकती है? आवश्यकता इस बात की है कि संगठन में व्यक्तिगत चरित्र को प्राथमिकता दी जाए और प्रमुखता उन लोगों को दी जाए जो सात्त्विक वृत्तिवाले हों और व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में ईमानदार हों।

१५. आर्यसमाज के चिन्तन तथा संगठन को किसी राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित नहीं होने देना चाहिए। प्रत्येक स्थिति में वह अपना भाग्यविधाता स्वयं रहे, अतः आर्यसमाज के संगठन के विभिन्न स्तरों पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि राजनीतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण तथा अत्यधिक सक्रिय व्यक्ति आर्यसमाज के संगठन

में रहते हुए भी किसी पदाधिकारी के रूप में नियुक्त न होने पाएँ। राजनेताओं का हम सम्मान करें, किन्तु पूरा समय सर्वात्मना आर्य-समाज को समर्पित विद्वानों, संन्यासियों तथा उपदेशकों आदि से बढ़कर नहीं। राजनेता क्षत्रिय है और प्रायः गृहस्थ होता है। वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार उसका स्थान ब्राह्मण और संन्यासी की अपेक्षा नीचे है।

१६. विदेशी शासन के ज़माने में हमारी शिक्षण संस्थाएँ राष्ट्रवाद की पनीरी का काम देती थीं। उनमें पढ़ने-पढ़ानेवालों पर आर्यसमाज की छाप होती थी, किन्तु अब उनका कोई उपयोग नज़र नहीं आता। इतना ही नहीं कि वे आर्यसमाज के सिद्धान्तों या मान्यताओं के प्रचार में सहायक नहीं रहीं, बल्कि उनके सँभालने के सिलसिले में अनेक हेय काम करने पड़ते हैं, अवांछनीय तत्त्वों को प्रश्रय देना पड़ता है, चरित्र-हीन व्यक्तियों को सम्मानित करना पड़ता है। आर्यसमाजों और प्रान्तीय सभाओं के झगड़ों के मूल में प्रायः ये स्कूल-कालिज ही मिलेंगे। हमारी शिक्षण संस्थाओं के प्रिंसिपलों और मुख्याध्यापकों या मुख्याध्यापिकाओं में शायद ही कोई आर्यसमाजी हो। यदि कोई दिखाई भी देते हैं तो उस दिन तक जब तक वे कुर्सी पर बैठे हैं। उनके भीतर झाँककर देखेंगे तो आर्यसमाज के दर्शन नहीं होंगे। संस्था का संचालन वे बड़ी कुशलता से करते हैं, किन्तु सिद्धान्त, व्यवहार, आचार-विचार, रहन-सहन आदि की दृष्टि से उनमें और दूसरी संस्थाओं के आचार्यों में कोई अन्तर नहीं मिलेगा, फिर अध्यापकों का तो कहना ही क्या ? उनमें से अधिकतर धूम्रपान, मदिरापान और मांसाहार करनेवाले हैं। सिनेमाघर में तो वे हर तीसरे दिन सपरिवार मिल सकते हैं, किन्तु आर्यसमाज मन्दिर में वे १० वर्ष में एक बार भी नहीं जा सकते। धर्मशिक्षा की बात अब प्रायः सुनने में नहीं आती। अब यह व्यावहारिक भी नहीं रही यद्यपि सरकार की ओर से धर्मशिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। अब धीरे-धीरे शिक्षा का

सरकारीकरण होता जा रहा है। सरकार और यूनिवर्सिटी के नित्य नये आदेशों के कारण जहाँ एक ओर हमारा दायित्व बढ़ता जा रहा है, वहाँ दूसरी ओर हमारे अधिकार समाप्त होते जा रहे हैं। नये वेतन स्तर लागू होने के वाद से नियुक्ति का अधिकार हमारे हाथों से निकल गया है। नियुक्ति के वाद तो न पहले किसी को कुछ कहा जा सकता था और न भविष्य में कहा जा सकेगा। जब कर्ता हमारे अनुकूल नहीं तो अनुकूल क्रिया कैसे होगी ? फिर भी कुछ उपाय हैं जिन्हें अपनाने पर कुछ-न-कुछ लाभ उठाया जा सकता है—

(क) आर्यसमाज के प्रत्येक स्कूल और कालिज में प्रति वर्ष अध्यापकों की गोष्ठी का आयोजन किया जाए। इस गोष्ठी में सभी अध्यापकों की उपस्थिति अनिवार्य हो और आर्यसमाज के सुलझे हुए विद्वान् संक्षेप में आर्यसमाज की मान्यताओं और कार्यकलापों की जानकारी दें।

(ख) समय-समय पर विशेष व्याख्यानों की व्यवस्था की जाए। एतदर्थ आधुनिक सन्दर्भ में वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या में समर्थ विशिष्ट विद्वानों को आमन्त्रित किया जाए।

(ग) प्रत्येक स्कूल और कालिज में छुट्टी से पहले दिन निम्नलिखित पर्व मनाये जाया करें। इस अवसर पर किसी विद्वान् को आमन्त्रित किया जाए जो पर्व विशेष से सम्बन्धित वातों के साथ-साथ निम्नलिखित विषयों की विशेष रूप से, किन्तु प्रसंगवश चर्चा अवश्य करें—

(१) शिवरात्रि—दयानन्द व व्रतोपवास।

(२) होली—यज्ञ व प्रह्लाद के जीवन सम्बन्धी अनर्गल बातें।

(३) रक्षावन्धन—वेद, हैदरावाद सत्याग्रह व संस्कृत दिवस।

(४) कृष्ण जन्माष्टमी—कृष्ण-चरित्र—पुराणों, महाभारत व गीता की दृष्टि से।

(५) स्वतन्त्रता दिवस—दयानन्द व आर्यसमाज का योगदान।

(६) दशहरा—राम का मानवरूप, अवतारवाद व श्रवण के

सन्दर्भ में जीवित माता-पिता की सेवा ही श्राद्ध।

(७) दीपावली—दयानन्द।

(८) श्रद्धानन्द दिवस—आर्ष शिक्षापद्धति, शिक्षा का माध्यम, शुद्धि व दलितोद्धार।

१७. महर्षि दयानन्द मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा के समर्थक थे, सहशिक्षा के विरोधी थे और ऐसे विद्यालय चाहते थे जिनमें राजकुमार और दरिद्र के सन्तान एक साथ पढ़ सकें। इसलिए आर्य-समाज की ओर से ऐसे स्कूल न खोले जाएँ जिनमें प्रारम्भ से ही अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाए, लड़के-लड़कियाँ एक-साथ पढ़ते हों और जिनमें केवल धनी वर्ग के लोगों के बच्चे ही पढ़ सकें, जो खुल चुके हैं उनके नाम में से दयानन्द, आर्य या आर्यसमाज के किसी नेता का नाम निकाल दिया जाए।

१८. भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार आदि की रक्षा और उनके विकास के लिए आवश्यक है कि शिक्षा के क्षेत्र में आर्ष शिक्षा-पद्धति को अपनाया जाए। महर्षि दयानन्द ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "अंग्रेजी ढंग के स्कूल खोलना आर्यसमाज का काम नहीं है।" इसलिए आर्यसमाज की सारी शक्ति आर्ष पद्धति के अपनाने में लगनी चाहिए।

१९. आनेवाली पीढ़ी स्कूलों-कालिजों में तैयार हो रही है। ये युवक-युवतियाँ आर्यसमाज मन्दिर में तो आते नहीं, इसलिए यदि हम अपनी विचारधारा उन तक पहुँचाना चाहते हैं तो हमें उनके पास जाना होगा, अतः आर्यसमाजों का कर्तव्य है कि अपने-अपने क्षेत्र में स्थित स्कूलों-कालिजों को अपना केन्द्र बनाएँ। अपने प्रभाव का प्रयोग कर वहाँ समय-समय पर आर्यसमाज के विद्वानों के भाषणों की व्यवस्था करें।

२०. वर्तमान में हमारे पत्र आर्यसमाज मन्दिरों तक ही पहुँच पाते हैं, पढ़े वहाँ भी नहीं जाते। ग़ैर आर्यसमाजी तो उन्हें छूता भी

नहीं। इसलिए ये पत्र आर्यसमाज के प्रचार की दृष्टि से अन्यथा सिद्ध हैं। आर्यसमाज का एक साप्ताहिक पत्र इस प्रकार का हो जो 'धर्मयुग' या 'हिन्दुस्तान' की तरह हर किसी के हाथों में पहुँचनेवाला हो। यह पत्र प्रत्यक्ष में आर्यसमाज का पत्र न जान पड़े, परोक्ष रूप से ही उसकी मान्यताओं का पोषक हो। इसके साथ ही ऐसे कामों से पैसा बचाकर जिनपर व्यय अधिक होता है और लाभ अपेक्षाकृत कम, अंग्रेजी और हिन्दी के दैनिक पत्रों में अपने प्रभाव से अथवा विज्ञापन समझकर पैसा देकर अपनी मान्यताओं के लेख प्रकाशित कराये जाएँ।

२१. देश की ८० प्रतिशत जनता गाँवों में बसती है। संगठन के रूप में आर्यसमाज अधिकांश में शहरों तक सीमित है। वहाँ भी बहुत कम समाजों में पुरोहित होते हैं। धर्म-प्रचार का सबसे बड़ा साधन पुरोहित होते हैं जिनकी हर घर में पहुँच होती है और जिनकी समय-समय पर सबको ज़रूरत पड़ती है। आर्यसमाज के अंगुलियों पर गिने जानेवाले उपदेशक व पुरोहित परम्परा से गाँवों में बसे चले आ रहे पुरोहितों का स्थान नहीं ले सकते, न तो गाँवों में रहनेवाले लोग आये दिन शहरों में जा-जाकर आर्यसमाज के पुरोहितों को (यदि वहाँ कोई हो) बुला-बुलाकर ला सकते हैं और न एक पुरोहित अपने इर्द-गिर्द के सैकड़ों गाँवों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। घर-घर में आर्यसमाज पहुँचे, इसके लिए आवश्यक है कि थोड़ी योग्यतावाले ही सही लेकिन आसानी से मिल सकनेवाले, गाँवों में ही रहनेवाले पुरोहित तैयार किये जाएँ।

२२. प्रान्तीय सभाएँ प्रतिवर्ष दो-तीन ज़िलों को व्यापक प्रचार का केन्द्र बनाएँ। इस प्रकार केन्द्र बनाये जानेवाले ज़िले में निरन्तर एक मास तक व्यापक रूप में प्रचार-कार्य हो—विधानसभाओं के चुनावों की तरह सारे प्रान्तों से हटाकर वैतनिक-अवैतनिक उपदेशकों-भजनीकों को दलबल के साथ उस मास में उसी जिले में लगा दिया जाए। अन्तिम दो-तीन दिन किसी केन्द्रीय स्थान पर महोत्सव हो जिसमें विद्वान् नेता

व उपदेशक सम्मिलित हों।

२३. पारिवारिक सत्संगों की योजनाबद्ध व्यवस्था की जाए। जिस परिवार में सत्संग होना हो उसे प्रेरणा की जाए कि आग्रहपूर्वक अपने सम्बन्धियों, इष्टमित्रों तथा पड़ोसियों को आमंत्रित करें जिस प्रकार अपने यहाँ होनेवाले संस्कारों के अवसर पर किया जाता है। आर्य-समाजी न होने के कारण आर्यसमाज के सत्संग में न जानेवाले लोग भी परिवार में होनेवाले सत्संग में सम्मिलित होना अपना कर्तव्य समझेंगे। ऐसे सत्संगों में व्यवहारोपयोगी मण्डनात्मक उपदेश देना ही उचित होगा, प्रसंगवश किसी सिद्धान्त की चर्चा की जा सकती है।

२४. साप्ताहिक सत्संगों का कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि पारि-वारिक सत्संग से प्रेरणा पाकर अन्य मत का यदि कोई नया व्यक्ति सत्संग में पहुँचे तो वह निराश न हो। यज्ञ, भजन (केवल ईश्वरभक्ति के), उपदेश आदि का कार्यक्रम क्रमशः चलता रहे। सारा कार्यक्रम पहले से निश्चित हो। संकेतमात्र से एक के बाद दूसरा कार्यक्रम आता रहे। बीच-बीच में आपस में किसी प्रकार की चर्चा न हो। किसी विवादा-स्पद विषय को न छेड़ा जाए। सूचनाएँ उपदेश प्रारम्भ होने से पहले दे दी जाएँ। प्रबन्ध सम्बन्धी बातें सत्संग की समाप्ति पर शान्तिपाठ के पश्चात् अलग से बैठकर की जाएँ।

२५. वार्षिकोत्सव पर अधिकतर वेद और वैदिक सिद्धान्तों तथा महर्षि दयानन्द की मान्यताओं के पोषक व्याख्यान कराये जाएँ। पाखण्डों, अन्धविश्वासों, अवैदिक मान्यताओं की रोकथाम के लिए खण्डनात्मक व्याख्यान भी कराये जाएँ। यथासम्भव शास्त्रार्थों की व्यवस्था की जाए। प्रचलित दलगत राजनीति के व्याख्यान न कराये जाएँ।

२६. आपस की फूट, दलबन्दी और पार्टीबाजी वर्तमान में आर्य-समाज की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है, अतः इसे किसी भी स्तर पर न पनपने दिया जाए। किसी आर्यसमाज या सभा में किसी प्रकार का

विवाद उपस्थित होने पर स्थायी रूप से नियत ३ संन्यासियों अथवा अन्य व्यक्तियों से निर्मित न्यायाधीशों के द्वारा निपटाया जाए। इस समिति का निर्णय अन्तिम रूप से सर्वमान्य हो।

२७. आपस में एक-दूसरे पर मुकद्दमे करके आर्यसमाज के धन और शक्ति का अपव्यय करने और उसकी प्रतिष्ठा को धूल में मिलानेवाले लोगों को आर्यसमाज के उत्सवों एवं अन्य कार्यक्रमों में न बुलाया जाए।

विद्वत् सम्मेलन में प्रस्तुत प्रस्तावों पर कुछ प्रमुख आर्य नेताओं के उद्गार—

१. डा० युद्धवीर सिंह, भू० पू० मेयर दिल्ली—आपने समयानुकूल मन्थन करके आर्यसमाज के रोग और चिकित्सा का ठीक-ठीक निदान किया है।

२. कविराज हरनामदास, भू० पू० मन्त्री सार्वदेशिक आ० प्र० सभा—जिन समाजसेवी दीर्घ-गम्भीर विचारक अग्रगण्य को यह सब सूझा वे वन्द्य हैं। सभी प्रस्ताव एक-से-एक बढ़कर हैं। मैं सबसे सहमत हूँ।

३. श्री ओंप्रकाश त्यागी, संसद् सदस्य तथा भू० पू० मन्त्री सार्वदेशिक आ० प्र० सभा—आपके प्रस्ताव वास्तव में विचारणीय हैं।

४. श्री वीरेन्द्र, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब—जो प्रस्ताव आपने रक्खे हैं मैं प्रायः उन सबसे सहमत हूँ। पता नहीं सार्वदेशिक सभा में अभी तक उनपरे क्यों नहीं विचार किया गया।

५. पं० ज्ञानचन्द, भू० पू० मन्त्री सार्वदेशिक आ० प्र० सभा—सभी प्रस्ताव ठीक हैं। पहला प्रस्ताव तो आर्यसमाज का कायाकल्प कर देगा।

६. श्री देसराज चौधरी, भू० पू० प्रधान आर्य केन्द्रीय सभा—प्रस्तावों के प्रारूप के लिए समस्त आर्य जगत् को आपका कृतज्ञ होना

चाहिए। वास्तव में आपने सराहनीय कार्य किया है।

७. श्री मिहरचन्द धीमान्, भू० पू० प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल आसाम—प्रस्तावों को देखकर मुझे कहना पड़ता है कि यदि उनको कार्यरूप में स्वीकार कर लें तो आर्यजगत् में एक नयी स्फूर्ति और उत्साह का संचार हो सकता है।

८. श्री रविदत्त वैद्य ब्यावर, सदस्य अन्तरंग सभा (सार्वदेशिक)—आपके सारे प्रस्ताव और सुझाव गहन मनन और चिन्तन का निष्कर्ष हैं और आपका प्रयास स्वागत-योग्य है।

९. आचार्य विश्वश्रवा—आप सारा जीवन शिक्षा विभाग में कार्य करते रहे हैं। तदनुरूप ही आपकी योजना है। परिश्रम के लिए साधुवाद।

१०. श्री दत्तात्रेय वाब्ले, मन्त्री सार्वभौम आ० स० शिक्षण संस्था परिषद्—प्रस्तावों में से अधिकांश के साथ मेरी सहमति है।

११. डा० भवानीलाल भारतीय, स० मन्त्री परोपकारिणी सभा—मेलों, तमाशों और सम्मेलनों का युग बीत गया। आपके सभी प्रस्ताव उपयोगी तथा क्रियान्वयन योग्य हैं।

१२. पं० शिवदयालु जी मेरठ—आर्यसमाज के भविष्य को उज्ज्वल बनाने की दृष्टि से यह गोष्ठी विशेष लाभदायक सिद्ध होगी।

१३. श्री नवनीतलाल एडवोकेट, मन्त्री अ० भा० श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट—मैं आपके प्रस्तावों से सहमत हूँ।

१४. श्री बाबूलाल, भू० पू० शिक्षा निदेशक मध्यप्रदेश तथा सदस्य (सार्वदेशिक) अन्तरंग सभा—आपके अधिकांश प्रस्तावों को अत्यन्त उपयोगी मानता हूँ और इनपर अविलम्ब कार्यवाही किया जाना आवश्यक समझता हूँ।

१५. पं० शिवकुमार शास्त्री, संसद् सदस्य, भू० पू० प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश—आपके प्रस्तावों से पूर्ण सहमत हूँ। इस दिशा में जो आगे करना हो उसमें सहयोग देने के लिए भी उद्यत हूँ।

१६. डा० वेदीराम शर्मा, भू० मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब—प्रस्ताव उत्तम और समयानुसार हैं। आप जो भी सेवा मेरे ज़िम्मे लगायेंगे उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा।

१७. स्वामी दिव्यानन्द, सदस्य (सार्वदेशिक) अन्तरंग सभा—प्रस्ताव तथा सुझाव वहुत ही उपयोगी हैं।

१८. आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, मन्त्री विश्व वेद परिषद्—सभी प्रस्ताव अच्छे और उपयोगी हैं।

१६. डाक्टर परमानन्द, भू० पू० निदेशक भाषा विभाग पंजाव—आपका ध्येय पुनीत है। संकट काल में परिस्थिति अनुसार विचार होना ही चाहिए।

२०. प्रिंसिपल महेन्द्रप्रताप शास्त्री, भू० पू० मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश—आपके अन्दर आर्यसमाज के लिए तड़प है, और उसकी उन्नति के लिए कुछ करना चाहते हैं। मैं आपके विचारों से प्रायः सहमत हूँ।

२१. श्री सच्चिदानन्द शास्त्री, मन्त्री सार्वदेशिक सभा—"प्रस्ताव मौलिक हैं और विचारणीय भी हैं। कोई विवादास्पद भी नहीं हैं। उनसे काम को अच्छा वनाया जा सकता है।"

(जन-ज्ञान साप्ताहिक, १६ जनवरी १६७७)

असग़रीबेगम उर्फ़ शान्तिदेवी—एक बार मैं बम्बई में था। मुझे स्मरण आया कि शान्तिदेवी तो यहीं कहीं बम्बई में रहती हैं। शान्तिदेवी का पहला नाम असग़रीबेगम था। असग़रीबेगम को शुद्ध करके शान्तिदेवी बनाया था स्वामी श्रद्धानन्दजी ने। इसी शुद्धि के कारण मुसलमान उनके जानी दुश्मन बन गये थे। उनकी दुश्मनी की परिणति स्वामीजी के बलिदान में हुई थी। मैं अपने एक परिचित के साथ श्रीमती शान्तिदेवी से भेंट करने उनके निवासस्थान पर गया। सामान्य शिष्टाचार के बाद उन्होंने आवाज़ लगाई—बेबी, अपने चाचाजी के लिए चाय ला। चाय आई। चाय लानेवाली बेबी किन्नी

(किरण) को लक्ष्य करके मेरे साथी ने कहा—इसे तो आप जानते-पहचानते होंगे। मेरे 'नहीं' करने पर उन्होंने कहा—अरे! आप इसे नहीं जानते। ये १५० फ़िल्मों में काम कर चुकी प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेत्री तबस्सुम हैं। मैंने तबस्सुम से पूछा कि तुमने फ़िल्मों में काम करना क्यों छोड़ दिया? उत्तर मिला—किसी भले घर की लड़की के लिए फ़िल्मों में काम करना ठीक नहीं। प्रत्येक स्तर पर उसे कामुक आँखों का सामना करना पड़ता है। मुझे आश्चर्य हुआ कि इस बात का पता उसे १५० फ़िल्मों में काम करने के बाद चला। मेरे साथी ने बताया—अंगूर खट्टे हैं, मोटी हो जाने के कारण फ़िल्मवाले अब उसे स्वीकार नहीं करते।

तबस्सुम की शादी मेरठ के एक वैश्य परिवार में हुई, किन्तु उसकी बड़ी वहन के लिए हिन्दू लड़का नहीं मिला।

१९७६ में श्रीमती शान्तिदेवी की मृत्यु हो गयी। जिस शान्तिदेवी की शुद्धि के कारण स्वामी श्रद्धानन्द को शहीद होना पड़ा, 'जनज्ञान' (२६ दिसम्बर, १९७६) में प्रकाशित समाचार के अनुसार उसे क़बर में दफ़नाया गया। अन्त्येष्टि संस्कार नहीं हो सका, क्योंकि वम्बई की किसी आर्यसमाज या आर्यसमाजी ने इसमें पुरुषार्थ नहीं किया। लाचार होकर उनकी पुत्री को शान्तिदेवी के मृतक शरोर को दफ़नाना ही पड़ा।

लालाजी को सत्परामर्श—सार्वदेशिक सभा की वर्ष १९७६-७७ की वार्षिक रिपोर्ट में पृष्ठ ४४ पर 'मेरा भावी कार्यक्रम' शीर्षक के अन्तर्गत सभा प्रधान लाला रामगोपालजी का निम्न वक्तव्य प्रकाशित हुआ था—

"आर्यसमाज में आपसी भेदभावों को दूर करके वैदिकधर्मियों के संगठन को दृढ़ करना' (धारा २) और 'आर्यसमाज में त्यागवाद तथा कर्त्तव्यवाद को लाकर अधिकारवाद की धाँधली से बचाना।"

मैंने अपने रजिस्टर्ड पत्र दिनांक २१ मार्च, १९७८ में लालाजी

को लिखा—"आर्यसमाज में आम धारणा यह है कि आर्यसमाज में विभिन्न स्तरों पर हो रहे झगड़ों का निमित्तकारण स्वयं लाला रामगोपालजी हैं और उनके ऐसा करने में कारण है उनकी पद-लोलुपता। आप पिछले १६ वर्षों से सार्वदेशिक सभा पर अधिकार किये बैठे हैं। क्या अब आप 'आर्यसमाज में त्यागवाद और कर्त्तव्यवाद को लाकर अधिकारवाद की धाँधली से बचाने' की अपनी भावना का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए किसी पद पर न रहने की घोषणा कर आर्यजगत् में व्याप्त भ्रान्ति को झुठलाने का साहस करेंगे?"

विद्वानों का सम्मान—सभी ज्ञानेन्द्रियों का केन्द्र मस्तिष्क में है। समूचे शरीर का संचालन वहीं से होता है। मानव समाज का संचालन भी ज्ञानियों (ब्राह्मणों) द्वारा होना चाहिए। इसी को लक्ष्य कर वेद ने ब्राह्मण को समाज में शीर्षस्थानीय माना है–'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्।' आर्यसमाज के ह्रासोन्मुख होने का मुख्य कारण ब्राह्मणों (विद्वानों, चिन्तकों, संन्यासियों, उपदेशकों आदि) की उपेक्षा, निरादर करके वैश्यों और क्षत्रियों (राजनेताओं) को सिर पर विठाना है। अपने-अपने स्थान पर क्षत्रिय, वैश्य ही नहीं, शूद्र भी उचित सम्मान के अधिकारी हैं, किन्तु सिर के स्थान पर पेट, या भुजाओं को नहीं लगाया जा सकता।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानान्तु व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रवर्त्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

जब विद्वानों की उपेक्षा होकर धनपतियों तथा राजनेताओं का सम्मान होने लगा तो उपदेशक भी कारखानों और विधानसभाओं की ओर दौड़ने लगे। इस प्रवृत्ति को हल्का करने के लिए मैंने आर्य-समाज पानीपत को प्रेरित किया कि आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रति वर्ष एक वैदिक विद्वान् का सम्मान किया जाए। यह सोचकर कि किसी समय अर्थाभाव के कारण यह प्रथा बन्द न हो जाए, मैंने दस हज़ार रुपये की राशि आर्यसमाज को प्रदान कर दी

जिसके व्याज से प्रतिवर्ष यह परम्परा चलती रहे। अब तक इस योजना के अधीन प्रो० विश्वनाथ वेदोपाध्याय, पं० युधिष्ठिर मीमांसक, आचार्य उदयवीर शास्त्री, महात्मा अमर स्वामी, पं० बिहारीलाल शास्त्री, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, डा० रामनाथ वेदालंकार, आचार्य विशुद्धानन्द शास्त्री, आचार्य देवप्रकाश तथा केरल के आचार्य नरेन्द्रभूषणजी को सम्मानित किया जा चुका है। आर्यसमाज पानीपत के अनुकरण पर अब यह प्रथा अनेकत्र अपनाई जा रही है। इसी प्रयोजन से मैंने गत वर्ष ग्यारह हजार रुपये की राशि आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली को प्रदान की। इस राशि के व्याज से प्रति वर्ष ऋषि निर्वाणोत्सव के अवसर पर एक वैदिक विद्वान् को सम्मानित किया जाता रहेगा। पानीपत और दिल्ली में दिये जानेवाले इन पुरस्कारों का नाम 'श्री केदारनाथ दीक्षित पुरस्कार' रक्खा गया है। दिल्ली में अब तक श्री अमर स्वामीजी तथा आचार्य विशुद्धानन्द-जी को सम्मानित किया जा चुका है।

संन्यास की दीक्षा—निवृत्ति की ओर मेरी प्रवृत्ति उस दिन व्याव-हारिक रूप में दिखाई दी जिस दिन मैंने अपने कालिज की प्रबन्ध समिति से अनुरोध किया कि जैसे मैं ७००-४०-११०० के ग्रेड में क्रमशः ऊपर चढ़ता गया, अब जबकि सेवामुक्त होने का समय आना है तो अभी से धीरे-धीरे मुक्त होने के लिए मेरा ग्रेड विपरीत क्रम में ११००-४०-७०० कर दिया जाए। मन में संन्यास का संकल्प करके २६ जुलाई, १९८० को मैं जालन्धर पहुँचा और दयानन्द मठ में जाकर स्वामी श्री सत्यानन्दजी महाराज (पूर्व आचार्य रामदेवजी) से संन्यासा-श्रम में दीक्षित करने की प्रार्थना की। अगले दिन नवाँशहर में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का वार्षिक अधिवेशन होने जा रहा था। सभा प्रधान श्री वीरेन्द्रजी चाहते थे कि मैं वहाँ जाकर भव्य समारोह में दीक्षा लूँ। मैंने कहा कि यदि मुझे प्रदर्शन अभीष्ट होता तो दिल्ली में कहीं अधिक विशाल और भव्य आयोजन हो सकता था। उससे बचने

के लिए ही मैं किसी को सूचना दिये बिना—अपने परिवार तक को बताये बिना—चुपचाप जालन्धर चला आया। २७ जुलाई, १९८० को मैंने संन्यास की विधिवत् दीक्षा ली। उसी दिन रात्रि को मैंने आर्य कालिज, आर्य हा० सै० स्कूल तथा आर्य गर्ल्स हाई स्कूल पानीपत की प्रबन्ध समितियों के प्रधान पद से त्यागपत्र लिखकर डाक में डाल दिये। एक पत्र मैंने आर्यसमाज माडल टाउन दिल्ली को भी लिख दिया कि मैंने संन्यास की दीक्षा ले ली है, इसलिए मैं अब घर नहीं रहूँगा। मेरे रहने की व्यवस्था आर्यसमाज मन्दिर में कर दी जाए। मैं २९ जुलाई को दिल्ली लौटा और आर्यसमाज के एक कमरे में रहने लगा।

आर्यसमाज की अन्तरंग सभा ने निश्चय किया कि मैं ६ मास तक समाज मन्दिर में रह सकता हूँ। बाद में यह अवधि बढ़ाकर ९ मास कर दी गई। ९ मास की अवधि समाप्त होने पर एक महीने की मोहलत और दे दी गई। आर्यसमाज मन्दिर में सत्संग भवन, यज्ञ-शाला, कार्यालय, औषधालय आदि के अतिरिक्त चार कमरे हैं जिनका उपयोग बरातें ठहराने के लिए किया जाता है। पूछने पर पता चला कि बरातों से किराये के रूप में लगभग ४ हज़ार वार्षिक आय होती है। मैंने आर्यसमाज को लिखा कि मुझे एक कमरे में रहने दिया जाए। मैं सौ रुपये मासिक देता रहूँगा। मैंने यह भी लिख दिया कि जिस दिन समाज को अपने लिए आवश्यकता होगी, उस दिन मैं तत्काल कमरा ख़ाली कर दूँगा—एक घण्टे का नोटिस नहीं चाहूँगा, किन्तु मेरे अनुरोध को स्वीकार नहीं किया गया। बरातों में मांस-मदिरा आदि का प्रयोग प्रायः होता ही है, समाजवाले अधिक-से-अधिक यही कर सकते हैं कि इस निमित्त दिये गये ज़मानत के २५० रुपये ज़ब्त कर लें। मैं कभी-कभी इस बात की—मांस, मदिरा के प्रयोग की—शिकायत करता ही था। मैंने सोचा कि समाज के अधि-कारियों को शायद इस बात का भय सता रहा हो कि हो सकता है,

किसी दिन मेरा विरोध उनके सिरदर्द का कारण न वन जाए। मैं जव तक रहा तब तक प्रातःकालीन दैनिक सत्संग में वेद-प्रवचन करता रहा। कहीं अन्यत्र प्रवचनार्थ जाता तो आग्रहपूर्वक जो दक्षिणा मिलती (साधारणतया मैं दक्षिणा नहीं लेता था, अब भी नहीं लेता) वह मैं समाज को दे देता था। अभी एक मास की अवधि समाप्त होने में कुछ दिन शेष थे कि मुझे दिल का दौरा पड़ गया। यह कष्ट मुझे प्रातःकाल सड़क पर हुआ था। पहचाननेवालों ने मुझे घर पहुँचा दिया। डाक्टर को बुलाया गया। संकट की घड़ी टल गई, पर डाक्टर ने कहा कि अब तो चौवीसों घण्टे इनके पास आदमी चाहिए। आर्य-समाजवाले तो एक प्रकार से मुझे पहले ही निकाल चुके थे और चौबीसों घण्टे किसी के मेरी सेवा में बने रहने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। समाजवाले मिलने आते रहे। वातों-बातों में मुझे समाज में न रहने देने का रहस्य खुला। मुझे वताया गया कि सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने अपने विश्वासपात्र आर्यसमाज के प्रधानजी को सलाह दी है कि किसी संन्यासी को आर्यसमाज मन्दिर में न रहने देना। हमें दीवान हाल से स्वामी दीक्षानन्द को निकालने में वड़ी मुश्किल पड़ी थी। आर्यसमाज में होनेवाले चुनावों में जब से यह फ़ैशन चल पड़ा है कि एक प्रधान को चुनकर शेष समस्त अधिकारियों तथा अन्तरंग सदस्यों आदि की नियुक्ति का अधिकार उसे दे दिया जाता है, तब से सार्वदेशिक सभा से लेकर स्थानीय समाजों तक के अन्तरंग सभासद् और प्रतिनिधि सदस्यों की स्थिति वंधुआ मजदूरों जैसी होकर रह गई है, क्योंकि वे सब प्रधान के रहम पर जीते और साँस लेते हैं।

कुछ काल के पश्चात् आर्यसमाज माडल टाउन के तत्कालीन प्रधान और मन्त्री मुझसे मिलने आये। तब मैंने उनसे निवेदन किया कि मुझे आर्यसमाज मन्दिर से निकालकर आपने आर्यसमाज को दोहरी हानि पहुँचाई है। इधर मेरी सन्तान आर्यसमाज से दूर हो गई

है। आयु का एक-एक पल जिसने आर्यसमाज के लिए जिया है, परिवार की उपेक्षा करके समाज की सेवा में जो सर्वात्मना समर्पित रहा है ऐसे हमारे पिता को जो समाज सिर छुपाने के लिए छत देने के लिए तैयार नहीं और वह भी तब जबकि अब भी वहाँ रहकर उसने निःस्वार्थ भाव से समाज की सेवा ही करनी है, उस समाज को मेरी सन्तान किस भाव से ग्रहण करेगी ! दूसरी ओर लोग यह भी देखेंगे कि जब मेरे जैसे व्यक्ति के प्रति समाज का यह व्यवहार है तो साधारण लोगों को संन्यास की दीक्षा लेने से पूर्व अनेक बार सोचना होगा। इस प्रकार आपकी समाज आनेवाली पीढ़ी को समाज से दूर करने और विद्वानों को संन्यासी बनने में बाधा डालने की दोषी होगी।

कुछ दिन बाद मैंने 'आर्यजगत्' और 'आर्यसन्देश' में अपना नाम दिये बिना प्रकाशित कराया—"एक विद्वान् संन्यासी को लेखन-कार्य के लिए दिल्ली की किसी समाज में एक कमरा चाहिए। रहने के लिए कमरे के अतिरिक्त खान-पान आदि किसी प्रकार का दायित्व समाज पर नहीं होगा।" दिल्ली का आग्रह इसलिए था कि शोधकार्य करने के लिए पुस्तकालयों और प्रकाशन आदि की जो सुविधाएँ दिल्ली में उपलब्ध हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। दिल्ली में आर्यसमाजों की संख्या २०० से २५० के बीच बताई जाती है, परन्तु एक ने भी सकारात्मक उत्तर नहीं दिया। स्वामी स्वरूपानन्दजी ने भी व्यक्तिगत पत्र लिख-लिखकर समाजों के अधिकारियों से कुछ ऐसी ही बात पूछी थी। ४५ के लगभग आर्यसमाजों ने नकारात्मक उत्तर दिये। शेष जवाब गोल कर गये। इस समय विविध रोगों से आक्रान्त हो मकान के पीछे की ओर ऊपर एक कमरे में रहता हूँ। किसी सम्बन्धी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं—यहाँ तक कि अपनी एकमात्र बहन के मरने पर अन्त्येष्टि में भी नहीं गया। ससुराल दिल्ली में होते हुए भी ८ वर्षों में एक बार भी उधर नहीं झाँका। आर्यसमाज मन्दिरों में सबके लिए जगह है—बरातों, सिलाई के स्कूलों, औषधालयों, स्कूलों (ख़ास तौर से ऋषि दयानन्द

की मान्यताओं के विरोधी स्कूलों), किरायेदारों आदि के लिए, परन्तु आर्यसमाज के लिए सर्वात्मना समर्पित विद्वानों, उपदेशकों, संन्यासियों के रहने के लिए नहीं। ऐसे लोगों के लिए जो लोकैषणा, वित्तैषणा से दूर रहकर नि:स्वार्थभाव से अहर्निश दयानन्द के सिद्धान्तों और मन्तव्यों का वाणी और लेखनी से प्रचार करने में संलग्न रहते हैं, रहने को स्थान नहीं तो सेवा-सुश्रूषा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अनेक संन्यासियों को जीवन के अन्तिम दिनों में उनके परिजनों ने ही सँभाला। महात्मा आनन्द स्वामीजी जैसे लोकप्रिय संन्यासी को भी बेटी की देहली पर प्राण त्यागने पड़े।

फ़िल्म अभिनेता धर्मेन्द्र के घर पर—आर्यसमाज सान्ताक्रुज़ बम्बई में मेरे व्याख्यान हो रहे थे। एक दिन व्याख्यान की समाप्ति पर आर्यसमाज के मन्त्री कैप्टन देवरत्न ने मुझे एक वृद्ध सज्जन का परिचय देते हुए बताया कि ये प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेता धर्मेन्द्र के पिता चौधरी केवलराम हैं। फगवाड़ा के रहनेवाले दृढ़ और सक्रिय आर्यसमाजी हैं। रिटायर्ड हैडमास्टर हैं। आर्यसमाजों के प्रधान रहे हैं। परिचय पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। वे बोले—परसों मेरे पोते (धर्मेन्द्र के बेटे) का जन्मदिन है। मैं चाहता हूँ कि उसे आशीर्वाद देने के लिए आप पधारें। मैंने स्वीकार कर लिया। नियत दिन पर गाड़ी आकर मुझे ले गई। उस समय उनकी आयु ८५ वर्ष के लगभग थी। बहुत देर बातें होती रहीं। उन्होंने मुझे बताया कि मेरे घर में हर त्योहार पर और परिवार के प्रत्येक सदस्य के जन्मदिन पर यज्ञ अवश्य होता है। परिवार बहुत बड़ा है। इसलिए यज्ञ के अवसर आते ही रहते हैं। जन्मदिन के उपलक्ष्य में होनेवाले यज्ञ की समाप्ति पर मैंने आशीर्वाद दे दिया। पुरोहितजी को दक्षिणा देने के बाद चौधरी साहब मुझे दक्षिणा देने लगे। मैंने कहा कि प्रथम तो मैं दक्षिणा लेता ही नहीं; फिर मैंने किया भी क्या है? वे मुझे एक थाली में रखकर १०१ रुपये दे रहे थे। उन्होंने समझा कि शायद मैं दक्षिणा की राशि कम होने के कारण ना

कर रहा हूँ। अपनी पत्नी की ओर संकेत करके बोले—थैली की मालिकन तो धर्मेन्द्र की माँ है। मैंने कहा कि आप मुझे ग़लत समझ रहे हैं। यदि आपने दक्षिणा देनी ही है तो आप धर्मेन्द्र की पत्नी को बुलाइए, मैं उससे दक्षिणा लूँगा। धर्मेन्द्र की पत्नी प्रकाश आई। मैंने उससे कहा कि जो दक्षिणा मैं चाहता हूँ वह तुम दे सकती हो ? अगर तुम तैयार हो तो मैं माँगू। उसने पता नहीं क्या समझा, पर हाँ कर दी। तब मैंने कहा कि तुम्हारे श्वसुर ८५ वर्ष के हो गये हैं। शरीर रोगों से अशक्त हो चुका है। पता नहीं कब तुम लोगों से रूठ जाएँ। इन्होंने मुझे बताया है कि तुम्हारे यहाँ प्रत्येक त्योहार पर और परिवार के प्रत्येक सदस्य के जन्मदिन पर यज्ञ अवश्य होता है। मैं चाहता हूँ कि इनके बाद भी इस परिवार में यह परम्परा चलती रहे। बस यही दक्षिणा है। इसे तुम ही दे सकती हो। सोच-समझकर हाँ कर दोगी तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। उसने 'हाँ' कर दी।

आर्यसमाज के मन्त्रीजी ने मुझे सावधान कर दिया था कि किसी भी अवस्था में धर्मेन्द्र के पिताजी से हेमामालिनी की चर्चा न करना। उन्हें दुःख होगा।

विदेशों में सम्मेलन—कुछ दिनों से विदेशों में आर्य महासम्मेलन करने की श्रृंखला प्रारम्भ हुई है। अब तक मारीशस, नैरोबी और लन्दन में ऐसे सम्मेलन हो चुके हैं। विदेशों में प्रचार की दृष्टि से ऐसे सम्मेलनों की उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता। परन्तु जिस रूप में वे मनाये गये हैं, उनसे लाभ कम और हानि अधिक हुई है। १९८० में इस प्रकार का एक सम्मेलन लन्दन में हुआ था। लोग लन्दन से लौटे ही थे कि ला० सूरजभानजी का देहान्त हो गया। आर्यसमाज मन्दिर मार्ग नयी दिल्ली में शोकसभा हुई। प्रो० रामसिंहजी ने मुझे बताया कि "जब मैं शोकसभा की समाप्ति पर बाहर आया तो मेरी भेंट एक यूरोपियन से हुई। मैंने उससे अपना परिचय देने को कहा तो उसने बताया कि मैं इंगलैंड के प्रसिद्ध दैनिक Guardian का संवाददाता

हूँ। मैंने कहा–'You know only recently there was a big conference of Arya samajists in London.' उत्तर में उसने कहा—'Yes, it was an assemby of smugglers.' मैंने आश्चर्यचकित होकर कहा—'Smugglers !' उसने प्रत्युत्तर में शब्दों पर बल देते हुए कहा—'Yes, they were all smugglers' वहाँ से लौटे लोगों से पता चला कि Guardian के उस संवाददाता का कथन काफ़ी हद तक सही था। ५०० व्यक्ति तो अकेले भारत से ही गये थे। अन्य देशों से भी काफ़ी लोग पहुँचे वताये गये हैं। कुछ स्थानीय लोग भी होंगे ही, परन्तु किसी भी कार्यक्रम में उपस्थिति २५० से अधिक नहीं हुई। वस्तुतः अधिसंख्य लोग सैर-सपाटे और व्यापार के लिए जाते हैं, वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए नहीं। पानीपत की तो मुझे प्रामाणिक जानकारी है। वहाँ से कितने ही ऐसे लोग गये थे जिनको मैंने ३० बरस में एक बार भी कभी आर्यसमाज के किसी कार्यक्रम में नहीं देखा था। दो व्यक्तियों ने यह भी बता दिया कि वे वहाँ से सस्ते दामों में लेकर यहाँ अधिक दामों में वेचने के लिए क्या-क्या लाये थे। मारिशस से लौटते समय कस्टम पर कुछ लोग पकड़े भी गये थे। मांस-मदिरा का सेवन तो सामान्य बात है। मदिरापान से रोकने के लिए तो मलिक रामलाल को फ्रैंकफर्ट की एयरपोर्ट पर सत्याग्रह तक करना पड़ा था। हाथ के थैलों में कुछ बोतलें डालकर तो लोग ले ही आये।

जगद्गुरु शंकराचार्य और गोवध–बात सन् १९८१ की है। गुजरात में घूमते हुए पता चला कि कांची कामकोटिपीठ के शंकराचार्य २२ जनवरी को सरदार वल्लभभाई पटेल के जन्मस्थान करमसद में होंगे। उससे एक दिन पूर्व सरदार पटेल यूनिवर्सिटी के परिसर में स्थित रोटरी क्लव में मेरा भाषण हो चुका था। उसी के माध्यम से श्री शंकराचार्य से मेरी भेंट हो सकी। मैंने शंकराचार्यजी से निवेदन किया कि जव हम गोवध पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग करते हैं तो विरोधियों की ओर से प्रायः यह कहा जाता है कि हिन्दू शास्त्रों में

अनेकत्र गोवध का विधान है तो हिन्दू किस मुँह से ऐसी माँग करते हैं ? इस सन्दर्भ में लाखों की संख्या में छपनेवाली पत्र-पत्रिकाओं में वेदसहित अनेक हिन्दू ग्रन्थों से गोवध का प्रतिपादन करनेवाले प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं। आपका हिन्दू धर्म के आचार्य के रूप में तथा अधिकृत विद्वान् के नाते महत्त्वपूर्ण स्थान है, अतः मैं चाहता हूँ कि आपकी ओर से एक वक्तव्य प्रसारित किया जाए जिसका आशय कुछ इस प्रकार का हो—

"हिन्दू शास्त्रों में कहीं भी गोवध का विधान नहीं है। यदि कहीं इसके विपरीत अर्थात् गोवध का प्रतिपादक उल्लेख मिलता है तो वह स्वार्थी लोगों के प्रक्षेपों अथवा अशुद्ध अर्थों के कारण ही हो सकता है। उन्हें प्रमाण नहीं माना जाना चाहिए।"

श्री शंकराचार्य का उत्तर था कि हम केवल यह वक्तव्य दे सकते हैं कि 'हिन्दू शास्त्रों में गोमांस खाने का विधान नहीं है।' जब मैंने इसे स्पष्ट करने को कहा तो उन्होंने कहा कि "वेदादि शास्त्रों में यज्ञ के निमित्त गोवध का स्पष्ट विधान है। जहाँ कहीं गोवध का निषेध किया है, वह मांस खाने के लिए गोहत्या न करने के उद्देश्य से है। यज्ञ में आहुति देने के लिए गोवध का निषेध कहीं नहीं है, सर्वत्र उसका प्रतिपादन किया गया है। शास्त्रों में ऐसा गौ के हित में किया गया है, क्योंकि यज्ञ में आहुति डालने के लिए मारी गई गाय को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।" उनके ऐसा कहने पर लगभग पौन घण्टे तक शास्त्रार्थ जैसा चलता रहा। मैं तो अकेला था और उधर शंकराचार्य के अतिरिक्त उनके सहयोगी १०-१५ विद्वान् थे। मेरे द्वारा अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जाने पर भी वे अपनी बात पर अडिग रहे। गोवध पर रोक लगाने के लिए किये जा रहे आन्दोलन के सन्दर्भ में उन्होंने इतना और कहा कि हम इस प्रकार की माँग कलियुग के लिए कर रहे हैं। इस विषय में हम इन्दिराजी को समझा लेंगे।

ये थे कांची कामकोटिपीठ के शंकराचार्य श्री जयेन्द्र सरस्वती।

इससे पूर्व मैं इस विषय पर पुरी के शंकराचार्य श्री निरंजनदेव तीर्थ से पत्र-व्यवहार कर चुका था। हिन्दू जगत् के मान्य सर्वोपरि धार्मिक नेता महर्षि दयानन्द के प्रादुर्भाव और आर्यसमाज की स्थापना के सौ वर्ष वाद भी वहीं खड़े हैं, जहाँ उन्हें शंकराचार्य आदि ने खड़ा किया था।

महर्षि दयानन्द निर्वाण अर्धशताब्दी—महर्षि दयानन्द का निधन सन् १८८३ में हुआ था। ५० वर्ष बीतने पर १९३३ में निर्वाण अर्ध-शताब्दी अजमेर में मनाई गई थी। अपने स्तर के अनुरूप वह अर्ध-शताब्दी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। उस अवसर पर यज्ञ के ब्रह्मा थे महा-महोपाध्याय (आर्यसमाज में एकमात्र) पं० आर्यमुनिजी जैसे उद्भट विद्वान् जो स्वयं महर्षि दयानन्द से शास्त्रार्थ में पराजित होकर आर्य-समाजी बने थे। और उनके सहायक थे चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार तथा महावैयाकरण पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जैसे मूर्धन्य विद्वान्। कवि सम्मेलन की अध्यक्षता की थी अद्‌भुत प्रतिभाशाली विद्वान् पं० चमूपतिजी ने और कविता-पाठ करनेवालों में पं० बुद्धदेव विद्यालंकार और पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न जैसे उच्चकोटि के कवि थे। पं० चमूपतिजी ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'ऐ दुनिया बता इससे वढ़कर अव और हक़ीक़त क्या होगी। जां दे दी तलाशे हक़ के लिए अब और इवादत क्या होगी' में जब निम्न पंक्तियाँ वोलीं—

'सदियों की ख़िज़ां के वाद खिला इक फूल उसे भी तोड़ लिया'

तो लोगों के आँसू नहीं थमते थे। उन आँसू बहानेवालों में एक मैं भी था। और जव पं० बुद्धदेवजी ने मस्ती में आकर—

'नादान लोगों ने उस जोगी का भेद न पाया'

गाया तो समस्त जनता भी झूम-झूमकर गाने लगी। शताब्दी समारोह में उपस्थित विद्वानों की सूची का तो कोई अन्त ही नहीं था। एक-से-एक बढ़कर विद्वान् थे। इतनी बड़ी संख्या में विद्वानों के एक साथ होने का अवसर फिर कभी नहीं आया। उस समय वड़ौदा नरेश

सर सयाजीराव गायकवाड़ महर्षि की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के तथा महात्मा नारायणस्वामीजी सार्वदेशिक सभा के प्रधान थे। अर्द्धशताब्दी समारोह के प्रधान राजाधिराज सर उम्मेदसिंहजी तथा कार्यकर्ता प्रधान महात्मा नारायणस्वामीजी थे। इस शताब्दी समारोह की एक विशेषता थी उन लोगों के दर्शन और संस्मरण जिन्होंने स्वामी दयानन्द के साक्षात् दर्शन किये थे।

मैं उस समय डी० ए० वी० कालिज होशियारपुर में एफ़० ए० में पढ़ता था। शताब्दी समारोह के अवसर पर राज्यरत्न मास्टर आतमारामजी की अध्यक्षता में सम्पन्न आर्य कुमार सम्मेलन में एक प्रस्ताव पर बोलने का समय मुझे भी मिला था। इससे अधिक मेरा कोई योगदान नहीं था।

ध्वजारोहण सम्बन्धी निश्चय—इसी अवसर पर पहली बार 'ओम्' की ध्वजा के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्णय इस प्रकार किये गये थे—

१—ध्वज चौकोर होगा।

२—ध्वज के आकार में एक और डेढ़ का अनुपात होगा, अर्थात् एक गज चौड़ाई होगी तो डेढ़ गज लम्बाई होगी।

३—कपड़े का रंग अरुण अर्थात् निकलते हुए सूर्य के रंग जैसा होगा।

४—ध्वज के बीच में 'ओ३म्' इस प्रकार लिखा होगा।

५—ध्वज का गीत 'जयति ओम् ध्वज व्योम विहारी···' होगा।

६—ध्वजारोहण के समय तीन बार केवल 'वैदिक धर्म की जय' बोली जाएगी। 'वैदिक धर्म की जय' में ही समस्त ऋषि-मुनियों की जय सम्मिलित समझी जाएगी।

७—सौ-पचास वर्ष में महर्षि से सम्बन्धित विशेष अवसरों (शताब्दी आदि) पर ही एक बार महर्षि दयानन्द की जय बोली जा सकेगी।

जिस समिति ने ये निर्णय किये थे उनके सदस्य थे—महात्मा नारायणस्वामीजी महाराज, कुँवर चाँदकरण शारदा और पं० शिवदयालु।

महर्षि निर्वाण शताब्दी—सन् १६८३ में सौ वर्ष हो जाने पर निर्वाण शताब्दी मनाई जानी थी। उस समय तक आर्यसमाज में दल-बन्दी और नेतृत्व का रोग काफ़ी भयंकर रूप धारण कर चुका था। पहले लिखा जा चुका है कि यद्यपि प्रथम आर्यसमाज की स्थापना बम्बई में हुई थी, श्री रामगोपालजी अपनी तिकड़म के बल पर स्थापना शताब्दी समारोह दिल्ली में मनाये जाने में सफल हो गये थे। महर्षि दयानन्द का निर्वाण भले ही अजमेर में हुआ था, श्री रामगोपालजी के नेतृत्व में सार्वदेशिक सभा चाहती थी कि निर्वाण शताब्दी भी दिल्ली में मनाई जाए जिससे शालवालेजी का वर्चस्व यथापूर्व बना रहे। परोपकारिणी सभा चाहती थी कि महर्षि की निर्वाण स्थली होने से शताब्दी अजमेर में मनाई जाए। १६३३ में अर्द्धशताब्दी भी अजमेर में मनाई गई थी। बहुत दिनों तक रस्सा-कशी चलती रही। स्वभावतः जनता की भावनाएँ अजमेर से जुड़ी थीं। अन्ततः जनता की जीत हुई और शताब्दी का अजमेर में मनाया जाना निश्चित हो गया। सार्वदेशिक सभा का मन साफ़ नहीं था, पर आर्य जनता के उत्साह को कम नहीं किया जा सका और उसके सहयोग से परोपकारिणी सभा समारोह को भली प्रकार मनाने में सफल रही।

जहाँ सन् १६३३ में हुई अर्द्धशताब्दी के अवसर पर मूर्धन्य विद्वानों, सर्वात्मना समर्पित नेताओं और तपस्वी संन्यासियों का समागम था और उन्हें सम्मानित स्थान प्राप्त था, वहाँ १६८३ की शताब्दी में छोटे-बड़े राजनेताओं और तिकड़म के बल पर बने लीडरों की प्रदर्शनी थी। विद्वानों का वहाँ कोई काम नहीं था। इस समारोह की विशेषता जुलूस की लम्बाई और प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा

गांधी के नाम पर जुटी भीड़ थी जो उनके जाते ही छँट गई और ख़ाली पण्डाल अच्छा नहीं लगेगा, इसलिए बीच में कनात लगाकर उसे छोटा कर दिया गया। ५-७ मिनट में ऐसे अवसरों के लिए रटे-रटाये कुछ शब्द बोलकर श्रीमती गांधी मंच से उतरकर सीधी दरगाह शरीफ़ पर चादर चढ़ाने चली गईं। दयानन्द के प्रति इससे अच्छी श्रद्धांजलि और क्या हो सकती थी ! अर्द्धशताब्दी के अवसर पर हुए विभिन्न सम्मेलनों की तुलना में शताब्दी पर हुए सम्मेलनों का स्तर बहुत घटिया था। वेद सम्मेलन हुआ, किन्तु अध्यक्षीय भाषण के अतिरिक्त एक भी भाषण नहीं हुआ। आमन्त्रित विद्वान् वक्ता जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। वस्तुतः वेद सम्मेलन अर्थसंग्रह सम्मेलन में परिणत कर दिया गया था। जहाँ अर्द्धशताब्दी की विशेषता सात्त्विक श्रद्धा, आस्था और समर्पण की भावना थी, वहाँ शताब्दी की विशेषता तमाशायी भीड़ थी।

मैं नहीं गया—स्वामीजी ने अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा को मुख्यतः दो काम सौंपे थे—

१—देश-देशान्तर में वैदिक धर्म के प्रचारार्थ विद्वान् उपदेशक तैयार करना।

२—आर्ष ग्रन्थों का प्रकाशन व व्याख्यान।

यह सर्वविदित है कि सौ वर्षों में सभा ने ऐसा एक भी विद्वान् तैयार नहीं किया। सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि आदि ग्रन्थों का प्रकाशन अवश्य हुआ, परन्तु इन ग्रन्थों के प्रकाशन में तो दर्जनों अन्य प्रकाशक सभा से कहीं आगे निकल गये। जिनका प्रकाशन इन प्रकाशकों ने नहीं किया, उनमें से अधिकांश ग्रन्थों का प्रकाशन सभा ने भी बहुत बाद में—पिछले १०-१५ वर्षों में किया। हाँ, स्वामीजी के ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित रखने में सभा ने सर्वथा स्तुत्य कार्य किया है। प्रकाशन में (जिसमें सभी प्रकाशक शामिल हैं) मक्खी पर मक्खी मारी जाती रही। भयंकर से भयंकर भूलों तक की ओर किसी

ने ध्यान नहीं दिया। जहाँ तक व्याख्या का सम्बन्ध है; सौ वर्षों में ऋषि दयानन्द के एक भी ग्रन्थ पर व्याख्या ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ।

मैंने सन् १९८० में पत्र लिखकर परोपकारिणी सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हुए सुझाव दिया कि अभी शताब्दी के मनाये जाने में तीन वर्ष शेष हैं। इस बीच में इस काम को प्रारम्भ तो कर दिया जाए। पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। १९८२ में परोपकारिणी सभा की ओर से एक विशेष बैठक आर्यसमाज मन्दिर मार्ग में बुलाई गई। मुझे भी उसमें आमन्त्रित किया गया। मैंने वहाँ अपनी बात को दुहराते हुए अनुरोध किया कि अभी भी एक वर्ष बचा है। इस एक वर्ष में कम-से-कम एक ग्रन्थ की व्याख्या का कार्य आरम्भ तो कर दिया जाए। इसपर श्री रामनाथ सहगल बोले—'स्वामी विद्यानन्द-जी की इस काम में रुचि है, वह करें। सभा उनकी सहायता करेगी।' मैंने कहा कि 'परोपकारिणी सभा के रूप में स्वामीजी के उत्तराधिकारी तो आप लोग हैं, आप क्यों न करें।' वात समाप्त हो गई।

मात्र प्रदर्शन हो और उसे सफल बनाने में धन-जन की सारी शक्ति लगा दी जाए, पर काम कुछ भी न हो—यह मुझे अच्छा नहीं लगता। मुझे शताब्दी समारोह के कार्यक्रम के अन्तर्गत दर्शन सम्मेलन के एक सत्र का अध्यक्ष मनोनीत किया गया था। पं० श्री ईश्वरचन्द्र दर्शनाचार्य आर्यसमाज में दर्शनशास्त्र के दो मर्मज्ञ विद्वानों में एक हैं। उनका नाम वक्ताओं में था। मैंने सभाप्रधान श्री स्वामी ओमा-नन्दजी को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि पं० ईश्वरचन्द्रजी मेरी अपेक्षा कहीं बड़े विद्वान् हैं, इसलिए उन्हें सम्मेलन का अध्यक्ष वना दें और मेरा नाम वक्ताओं में डाल दें। उन्हें उत्तर देने की आदत नहीं है, सो नहीं दिया। एक दिन अचानक उनसे स्वामी जगदीश्वरा-नन्दजी की भेंट हो गई। उन्होंने मेरे पत्र की चर्चा की तो वे (स्वामी ओमानन्दजी) बोले—'हमें सुझाव नहीं चाहिए। हमने जो फ़ैसला कर दिया, सो कर दिया।' यद्यपि मैं उनके ज़िद्दी स्वभाव से परिचित

था, तो भी यह बात मेरी समझ में नहीं आई। मैं स्वयं अध्यक्ष बनने का आग्रह करता, तब तो उनका इस प्रकार कहने का औचित्य समझ में आ सकता था, परन्तु मैं तो अपने स्थान पर अपने से योग्य व्यक्ति को बिठाने की बात कह रहा था। ऐसी अवस्था में उनका इस प्रकार का कथन उस मनोवृत्ति का परिचायक था जिसमें प्रधानता केवल अपने को हीं दी जाती है।

भीड़ का दर्शन करने में मेरी कोई रुचि नहीं थी। इससे अधिक वहाँ न कुछ होना था, न हुआ। इसलिए मैं अजमेर नहीं गया और विद्वानों के परामर्श और सहयोग से 'भूमिकाभास्कर' के नाम से 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' का विस्तृत भाष्य करने में प्रवृत्त हो गया। तीन वर्ष के 'दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितः' परिश्रम के परिणाम-स्वरूप यह ग्रन्थ १९८६ के अन्त में तैयार हो गया। प्रकाशन की समस्या आई तो मैंने परोपकारिणी सभा को दिल्ली में हुई बैठक में दिये आश्वासन का स्मरण कराया। सभा ने अपने प्रधानजी द्वारा स्थापित परम्परा का पालन करते हुए उत्तर न देना ही ठीक समझा, पर काम रुका नहीं। इन पंक्तियों के लिखने तक 'भूमिकाभास्कर' का ६०० पृष्ठों (२० × ३०/८) का प्रथम भाग छप चुका है; दूसरा भाग छप रहा है।

ग्रन्थ को तैयार करने में अनेक पुस्तकों से सहायता लेनी पड़ती है। एक बार मैंने सार्वदेशिक सभा को पत्र लिखकर पूछा कि मुझे 'भूमिकाभास्कर' के लिखने के लिए अमुक तीन पुस्तकों की आवश्यकता है। हृद्रोग से पीड़ित होने के कारण मैं तीन सीढ़ियाँ चढ़कर सभा कार्यालय में नहीं पहुँच सकता। कृपया सूचित करें कि ये पुस्तकें सभा पुस्तकालय में उपलब्ध हैं या नहीं। उत्तर मिला कि आप स्वयं आकर अलमारियों में देख लें। ऐसी स्थिति में सार्वदेशिक सभा से किसी साहित्यिक कार्य में किसी प्रकार के सहयोग की आशा करना दुराशा मात्र है। दूसरी ओर पण्डित श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने एक पुस्तक

को मेरे कार्य में उपयोगी समझकर रजिस्ट्री द्वारा मुझे भेज दिया, यद्यपि वह पुस्तक बाजार में अप्राप्य होने से दुर्लभ कोटि की पुस्तकों में आती है। यह अन्तर है एक विद्वान् पुरुष के और वोट बटोरकर कुर्सी हथियानेवाले व्यक्ति के दृष्टिकोण में।

आर्यसमाज पानीपत की शताब्दी—पानीपत में आर्यसमाज की स्थापना सन् १८८३ में हुई थी। १९८४ में उसकी शताब्दी मनाने का निश्चय हुआ। मेरे सुझाव पर आर्यसमाज ने यह निश्चय किया कि शताब्दी का कार्यक्रम लीक से हटकर तैयार किया जाए। वैसा ही किया गया।

हमारा कोई भी बड़ा उत्सव बृहद् यज्ञ से आरम्भ होता है। सामान्य यज्ञ की अपेक्षा बृहद् यज्ञ में घृत, सामग्री, समिधा आदि की मात्रा अधिक होती है। संस्कारविधि के प्रारम्भ में एक पृष्ठ पर विविध प्रकार के यज्ञपात्रों एवं उपकरणों के चित्र छपे होते हैं, परन्तु किसी यज्ञ में उनका प्रयोग तो क्या, कभी किसी ने उनका दर्शन भी नहीं किया। जिस प्रकार के यज्ञ में उनका प्रयोग होता है, वैसा यज्ञ महर्षि दयानन्द ने कभी शाहपुराधीश सर नाहरसिंह के यहाँ कराया था। उसके बाद आर्यसमाज के सौ वर्ष के इतिहास में वैसा यज्ञ कभी नहीं हुआ। पानीपत में वैसे ही यज्ञ का आयोजन पं० श्री युधिष्ठिर मीमांसक के मार्गदर्शन में किया गया। आर्यसमाज में ऐसे यज्ञ के जानकार न होने से दाक्षिणात्य ब्राह्मणों को बुलाकर यह यज्ञ कराया गया। देश के कोने-कौने से लोग इस यज्ञ को देखने पानीपत पहुँचे।

आर्यसमाजों, प्रान्तीय सभाओं, संस्थाओं आदि के विशेष समारोहों के अवसर पर 'स्मारिका' निकालने का फ़ैशन चल पड़ा है। उसमें फ़ोटो छपने से कुछ लोगों के अहम् की तुष्टि हो जाती है। अन्यथा उसका कोई लाभ नहीं होता। पानीपत में स्मारिका पर व्यय होनेवाले पैसों का उपयोग निम्न कार्यों पर किया गया—

१. नेत्रहीनों के लिए ब्रेल लिपि में 'आर्याभिविनय' का प्रकाशन

कर देश-भर के अन्ध विद्यालयों को उसकी एक-एक प्रति मुफ़्त भेजी गई।

२. 'धर्म और संस्कृति' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया। लगभग ४०० पृष्ठों के इस ग्रन्थ में देश के चुने हुए विद्वानों के विद्वत्तापूर्ण लेखों का संकलन किया गया। प्रत्येक लेखक को सम्मानार्थ १०१ रुपये भेंट करने की नई परम्परा का प्रारम्भ किया गया।

३. ७० से ९७ वर्ष तक की बीच की आयु के आर्यजगत् के उच्च कोटि के २५ विद्वानों को आमन्त्रित कर सम्मानित किया गया। उनमें २ दाक्षिणात्य ब्राह्मण भी थे। पूज्य स्वामी श्री सर्वानन्दजी महाराज की अध्यक्षता में सम्पन्न इस समारोह में प्रत्येक विद्वान् को एक शाल और १५०० रुपये नक़द राशि के साथ 'तत्त्वमसि' तथा 'धर्म और संस्कृति' की एक-एक प्रति भेंट की गई।

इस शताब्दी समारोह में एक भी राजनीतिक नेता को नहीं बुलाया गया।

महर्षि दयानन्द पर फ़िल्म—सन् १९८४ में तथाकथित आचार्य भगवान्देव ने महर्षि दयानन्द पर फ़िल्म बनाने की योजना बनाई। महर्षि दयानन्द तो किसी भी रूप में नाटक आदि के प्रबल विरोधी थे। वे इसे अपने बड़ों का भारी अपमान समझते थे। जगह-जगह उन्होंने इसका जोरदार खण्डन किया है। 'India Today' के अनुसार फ़िल्म को सफल बनाने के लिए अपेक्षित हर प्रकार के मिर्च-मसालों—नाच, गाने, मारधाड़—का उपयोग किया जा रहा था। मैंने इसके विरुद्ध जबरदस्त आन्दोलन खड़ा किया। परोपकारिणी सभा का मुझे पूर्ण सहयोग मिला। उसने मुझे इसका संयोजक नियुक्त किया। जल्दी ही इस आन्दोलन को वैदिक यतिमण्डल ने अपने हाथ में ले लिया। आन्दोलन ने देश-भर में प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। परिणामतः श्री भगवान्देव को पीछे हटना पड़ा। इस फ़िल्म के सन्दर्भ में सार्व-

देशिक सभा की भूमिका बड़ी विचित्र रही। २ जून, १९८४ को मैंने इस फ़िल्म निर्माण के विरुद्ध सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा की बैठक में प्रस्ताव रक्खा। महाकवि अश्वघोष के शब्दों में उसकी 'न ययौ न तस्थौ' की-सी स्थिति हो गई। वह पहले फ़िल्म के समर्थन में वचनवद्ध हो चुकी थी, इसलिए उसके लिए इसका विरोध करना कठिन था। दूसरी ओर देश-भर के विद्वानों, संन्यासियों के विरोध और जनता के रोष का सामना करना भी उसके लिए सम्भव नहीं था। बिना सोचे-समझे पार्टी के दवाव में आकर कुछ कर बैठने का यही परिणाम होता है। फ़िल्म विरोधी आन्दोलन का प्रवर्त्तक और संयोजक होने के कारण उसके समर्थकों के कोप का भाजन मैं था। दो पत्रों द्वारा मुझे मारने की धमकी भी दी गई। श्री भगवान्देव की शक्ति इन्दिरा कांग्रेस का संसत्सदस्य होने में थी। १९८५ में वह भी जाती रही। तब उसके लिए पीछे हटने के सिवा कोई चारा नहीं रहा।

शिक्षा नीति—महर्षि दयानन्द द्वारा निर्धारित शिक्षा नीति के तीन निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles) हैं—

१. प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए तथा प्रारम्भ में बच्चे को नागरी अक्षरों का अभ्यास कराना चाहिए।

२. लड़के और लड़कियों की पाठशाला अलग-अलग होनी चाहिएँ अर्थात् सहशिक्षा नहीं होनी चाहिए।

३. विद्यालय ऐसे होने चाहिएँ जिनमें राजकुमार और दरिद्र की सन्तान एक साथ पढ़ें।

महात्मा श्री हंसराजजी के नेतृत्व में आर्य प्रादेशिक सभा एवं डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी इन्हीं निर्देशों के अनुसार अपने स्कूल व कालिज चलाती रहीं। पिछले कुछ वर्षों से प्रो० श्री वेदव्यास-जी के नेतृत्व में उन्होंने इन आधारभूत सिद्धान्तों की अवहेलना करके डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल खोलने शुरू कर दिये हैं। इन स्कूलों में—

१. प्रारम्भ से ही बच्चों को इंगलिश मीडियम में शिक्षा दी जाती है।

२. लड़के-लड़कियों को एक साथ पढ़ाया जाता है।

३. इन स्कूलों में प्रवेश पाने के लिए ५ से १० हज़ार रुपये देने पड़ते हैं और प्रति मास भी कई सौ रुपये विभिन्न मदों में देने पड़ते हैं, फलतः उनमें राजकुमार ही पढ़ सकते हैं, दरिद्र की सन्तान नहीं।

४. अभिवादन के लिए 'नमस्ते' नहीं 'Good morning' करना सिखाया जाता है।

५. प्रत्येक बालक—लड़का या लड़की—को नेकटाई लगानी पड़ती है।

६. विशेष अवसरों पर मुख्य अतिथि के रूप में अभिनेता-अभिनेत्रियों को बुलाकर सम्मानित किया जाता है।

७. इन स्कूलों में नियुक्ति के लिए उन अध्यापिकाओं को प्रमुखता दी जाती है जो Convented हों, अर्थात् मिशन द्वारा संचालित Convent स्कूलों में पढ़ी हुई हों।

ऋषि दयानन्द की मान्यताओं की विरोधी इन बातों को सहन करना किसी आर्यसमाजी के लिए सम्भव नहीं, इसलिए मैंने वाणी और लेखनी द्वारा इस शिक्षा-पद्धति के विरुद्ध आवाज़ उठाई। सार्वदेशिक सभा की एक बैठक में आर्य प्रादेशिक सभा तथा डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी के उपाध्यक्ष श्री मुल्खराज भल्ला ने इसी कारण मुझे लक्ष्य करके बहुत कुछ कहा। उसके उत्तर में मैंने युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध किया कि इस नीति के कारण आर्यसमाज की तो बदनामी हो ही रही है, समाज में भ्रष्टाचार, विषमता, दुराचार शराबख़ोरी और रिश्वतख़ोरी को भी बढ़ावा मिल रहा है। Dayanand English Medium Co-educational Public School नाम का एक-एक शब्द दयानन्द की शिक्षानीति के उपर्युक्त तीनों निर्देशक सिद्धान्तों (Directive Principles) को मुँह चिढ़ा रहा है। यह नाम

ऐसा ही है जैसा Mahatma Gandhi Wine Shop या Mahatma Buddha Slaughter House या Mahavir Swami Meat Shop. यदि आप अपने वर्त्तमान रूप में इन स्कूलों को चलाना ही चाहते हैं तो इनके नाम में से 'दयानन्द' और 'वैदिक' इन शब्दों को निकाल दो, फिर जो मर्ज़ी 'खे, मिट्टी, स्वाह' खाओ। इतना कहकर मैंने रोष, दुःख और चुनौती के स्वर में कहा—अब भल्लाजी या अन्य किसी में साहस हो तो मेरी बातों का जवाब दें। मुझे यह जानकर सन्तोष हुआ कि सभी ने मेरी वातों को सराहा और किसी ओर से भी कोई विरोधी स्वर नहीं उठा।

मेरी सभी बातें इतनी सही थीं कि किसी स्तर पर कहीं भी और कभी भी उनका खण्डन करने का साहस किसी को नहीं हुआ, पर गुपचुप मेरे विरुद्ध वातावरण वनाकर कई आर्यसमाजों और संस्थाओं में मेरा सामाजिक वहिष्कार करने का प्रयास किया गया, परन्तु मेरे अनवरत आन्दोलन के परिणामस्वरूप अपने कुछ दोषों का परिहार करने के लिए Good morning और नेकटाई के प्रयोग के विरुद्ध आदेश जारी कर दिये गये। व्यक्तिगत स्तर पर भले ही मेरा विरोध होता रहे, मुझे इस वात की प्रसन्नता है कि मेरी कुछ वातें मान ली गई हैं।

आर्य प्रादेशिक सभा या डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी से मेरा किसी प्रकार का विरोध नहीं है, परन्तु मुझे मर्मान्तिक पीड़ा उस समय होती है जब मैं उन्हें महात्मा हंसराज जैसे मनीषी द्वारा स्थापित परम्पराओं से हटकर चलते हुए देखता हूँ। पीड़ा के कारण निःसृत 'आह' को विरोध समझ लिया जाता है। इस प्रकार मेरा विरोध उन नीतियों से है जिनके अधीन स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज की मान्यताओं के विपरीत आचरण होता है—उसका दोषी चाहे कोई भी हो। पब्लिक स्कूलों का रोग अब अन्य सभाओं और उनसे सम्वद्ध आर्यसमाजों को भी लग गया है। आर्यसमाज मन्दिरों को अनेकत्र स्कूलों में परिणत किया जा रहा है। स्कूलों का खोलना

एक बड़ी इण्डस्ट्री या व्यापार बन गया है। कुछ समय से आर्यसमाज माडल टाउन में भी English Medium Co-educational Public School खुल गया है। उसका उद्घाटन सार्वदेशिक सभा के प्रधान लाला रामगोपाल शालवाले ने किया था। पता लगने पर मैंने उनसे इस बात की शिकायत की—बुराई तो बुराई है, चाहे वह कहीं भी हो। उन्होंने कहा—आप मुझे फ़ोन कर देते तो मैं न आता। मैंने कहा कि मैं यह कैसे सोच सकता था कि आर्यसमाज की शिरोमणि सभा के प्रधान ने अभी तक सत्यार्थप्रकाश का दूसरा समुल्लास भी नहीं पढ़ा है। वस्तुतः यह उनका बहाना मात्र था, क्योंकि मेरी बातचीत के बाद भी वह ऐसे कई स्कूलों का उद्घाटन कर चुके हैं। ऐसे समारोहों में जाने पर फ़ोटो खिचता है, अख़बारों में उसका समाचार छपता है। पब्लिसिटी के कारण और कुछ भी न सही, लोकैषणा की तृप्ति तो होती ही है। वही उनके जीवन का एकमात्र ध्येय है। उसी के लिए तो वह रात-दिन रच-पच रहे हैं। उसी के सहारे वह जी रहे हैं।

श्री रामगोपालजी की आर्यसमाज के प्रति निष्ठा किसी के लिए भी ईर्ष्या का विषय हो सकती है। उनके विरोधी भी उनके चरित्र पर अँगुली नहीं उठा सके, परन्तु अधिकारलिप्सा के कारण उन्हें भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। अधिकार पाने के लिए बड़े से बड़ा पाप करने में भी उन्हें संकोच नहीं होता। उसी के कारण उन्हें हर समय झूठ बोलना पड़ता है।

आर्यसमाज का सरकारीकरण—आर्यसमाज राजनैतिक संस्था नहीं है, पर अब उसका कोई भी समारोह राजनेताओं के बिना सम्पन्न नहीं होता। वैदिक धर्म और आर्यसमाज के लिए सर्वात्मना समर्पित आर्य विद्वानों या संन्यासियों को वह आदर नहीं मिलता जो किसी म्युनिसिपल कमेटी के सदस्य को मिलता है। कुछ वर्ष हुए, श्रद्धानन्द जलूस की समाप्ति पर गांधी ग्राउण्ड में सार्वजनिक सभा हुई। श्री अमर स्वामीजी सदृश कई संन्यासी और विद्वान् आते गये

और जहाँ जगह मिली बैठते गये। इतने में कार्पोरेशन के एक सदस्य आये तो आर्य केन्द्रीय सभा के कई अधिकारी एकसाथ मंच से उतरकर उनकी अगवानी के लिए गये और बड़े आदरपूर्वक लाकर मंच पर यथास्थान बिठाया। ५-६ वर्ष पहले की बात है, दिल्ली में रामलीला मैदान में आर्य महासम्मेलन हुआ। इस अवसर पर हुए वेद सम्मेलन की अध्यक्षता मैंने की थी। मेरे आलोचकों तक ने मेरे पास आ-आकर मेरे अध्यक्षीय भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वेदसम्मेलन के तत्काल पश्चात् एक दूसरा सम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता श्री संजयसिंह (उत्तरप्रदेश के एक विधायक) ने की। पुष्पमालाओं से उन्हें बुरी तरह लाद दिया गया। मेरे बिल्कुल पीछे की ओर श्री पं० वीरसेनजी वेदश्रमी तथा पण्डित शिवकुमार शास्त्री बैठे थे। वेदश्रमीजी ने धीरे से मुझसे पूछा—क्यों स्वामीजी, वेदसम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में क्या आपका भी इस प्रकार अभिनन्दन किया गया था? उत्तर दिया पं० शिवकुमारजी ने—स्वामीजी तो किसी म्युनिसिपल कमेटी के भी मेम्बर नहीं हैं, फिर इनका स्वागत क्यों होता?

इन राजनेताओं का कोई धर्म-ईमान नहीं होता—अपनी कोई मान्यताएँ नहीं होतीं—नायन की तरह जिसका ब्याह उसके गीत गा देते हैं। पंजाब में शादी के अवसर पर सेहरा पढ़ने का रिवाज है। सेहरा पढ़नेवालों के पास बना-बनाया एक सेहरा तैयार रहता है। जहाँ जाते हैं वहाँ लड़का-लड़की के सम्बन्धियों के नाम पूछकर उसी में यथा-स्थान भरकर सेहरा पढ़ जाते हैं। राजनेताओं को कहीं जाने से इन्कार नहीं—ब्रह्मकुमारियों में, राधास्वामियों में, जैनियों में, बौद्धों में, मुसलमानों में, ईसाइयों में, सिखों में, निरंकारियों में, ज्योतिषियों में—यहाँ तक कि जगरातों में। भाषण सर्वत्र एक ही होता है। स्वामी दयानन्द के प्रति अपने हृदय में तनिक-सी भी श्रद्धा रखनेवाला श्रद्धांजलि भेंट करते ही दरगाह शरीफ़ पर चादर चढ़ाने कभी नहीं जाएगा। चार मीठे बोल सुनकर आर्यसमाजी किसी को भी अपना

प्रशंसक या नेता मान बैठते हैं।

आर्यसमाज और राजनीति—आर्यसमाज की सदा से घोषित नीति रही है कि प्रत्येक आर्यसमाजी अपनी राजनीतिक विचारधारा के अनुसार किसी भी राजनीतिक दल से सम्बद्ध रह सकता है। सामूहिक रूप में आर्यसमाज किसी भी राजनीतिक दलविशेष के साथ बँधा हुआ नहीं है। सार्वदेशिक सभा तथा समय-समय पर उसके तत्त्वावधान में आयोजित आर्य महासम्मेलनों में (जहाँ देश-भर के लाखों आर्यजन उपस्थित होते हैं) जब-जब भी इस विषय पर विचार हुआ, तब-तब इसी निश्चय को सम्पुष्ट किया जाता रहा है। सन् १९८४ में २४ दिसम्बर को लोकसभा का चुनाव हुआ। उस दिन देश-भर के समाचार-पत्रों में सार्वदेशिक सभा के आजीवन प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले का वक्तव्य प्रकाशित हुआ कि "सार्वदेशिक सभा के निश्चयानुसार सब आर्यसमाजी इन्दिरा कांग्रेस को वोट दें।" २५ दिसम्बर को लालकिला के मैदान में परम्परागत रूप में श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के जुलूस की समाप्ति पर सार्वजनिक सभा हुई। इस बार जुलूस और जलसे में सामान्य से अधिक संख्या में लोग शामिल हुए। सभा की अध्यक्षता मैंने की। इससे पहले ही मैं सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन महामन्त्री श्री ओंप्रकाश त्यागी तथा अन्य प्रमुख सदस्यों से व्यक्तिशः मालूम कर चुका था कि १६-१७ दिसम्बर को हुए सार्वदेशिक सभा के अधिवेशन में ऐसा कोई निश्चय नहीं हुआ है। इतना ही नहीं, जब किसी ने इस आशय का प्रस्ताव रक्खा था तो उसे तत्काल सर्वसम्मति से अस्वीकार कर दिया गया था। तद-नुसार मैंने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्पष्ट कह दिया कि कल के समाचार-पत्रों में प्रकाशित सार्वदेशिक सभा के प्रधान ला० रामगोपाल शालवाले का यह वक्तव्य कि 'सार्वदेशिक सभा के निश्चयानुसार सब आर्यसमाजी इन्दिरा कांग्रेस को वोट दें' सार्वदेशिक सभा की सदा से चली आ रही सुविचारित, दलनिरपेक्ष नीति का विरोधी तो

है ही, वह सफ़ेद झूठ भी है, क्योंकि सार्वदेशिक सभा ने ऐसा कोई निश्चय नहीं किया है। शालवालेजी ने स्वार्थवश आर्यसमाज को इन्दिरा कांग्रेस की झोली में डालकर सार्वदेशिक सभा के साथ विश्वासघात किया है और आर्यसमाज की पीठ में छुरा घोंपा है। जिस समय मैं यह कह रहा था, मंच पर स्वयं श्री शालवाले, श्री ओंप्रकाश त्यागी, पं० श्री शिवकुमार शास्त्री, श्री क्षितीश वेदालंकार और श्री सूर्यदेव आदि सशरीर उपस्थित थे। मैंने जो कहा था, अक्षरशः सत्य था। इसलिए कोई भी मेरे वक्तव्य को झुठलाने का साहस न कर सका। मेरा वक्तव्य समाप्त होते ही सभा में तहलका मच गया और बड़ी संख्या में लोग शालवालेजी की ओर झपट पड़े—यह कहते हुए कि यह सब राज्यसभा की सदस्यता पाने के उद्देश्य से किया गया है। अनेक लोग मेरे पास भी आये। उनका कहना था कि आपने सारी जनता के मन की बात कह दी। सोच तो सभी रहे थे, किन्तु कोई कहने का साहस नहीं कर पा रहा था। हर अच्छी बात की कीमत चुकानी पड़ती है। मुझे भी चुकानी पड़ी।

तीसरे दिन सभा के ही एक अधिकारी मेरे पास आये। उनके हाथ में मेरे उस दिन की ऐतिहासिक सभा में बोलते समय लिया गया फ़ोटो था। उसे मेरी ओर बढ़ाते हुए वह बोले—भविष्य में आपको दिल्ली की किसी समाज या सार्वजनिक सभा में बोलने का अवसर नहीं मिलेगा। वेदी बन्द करने की घोषणा करने का साहस नहीं हुआ, किन्तु मौखिक रूप से अपने विश्वस्त सूत्रों के माध्यम से यह बात अधिकांश आर्यसमाजों तक पहुँचा दी गई। मुझे इसका तनिक भी दुःख नहीं हुआ। मेरे गुरु को तो सत्य बोलने के कारण ईंट-पत्थर खाने पड़े थे, विषपान तक करना पड़ा था। मुझे तो कुछ भी नहीं सहना पड़ा। ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है। यह प्रतिबन्ध मेरे लिए अभिशाप नहीं, वरदान सिद्ध हुआ। मुझे लेखन-कार्य के लिए अधिक समय मिल गया। बोला हुआ तो बोलने के बाद समाप्त-

सा हो जाता है, उसका प्रभाव-क्षेत्र भी सीमित होता है। इसकी तुलना में लिखा हुआ स्थायी रहता है और दूर-दूर तक पहुँच जाता है। बोलनेवाले तो वहुत हैं, लिखनेवाले बहुत थोड़े। मुझे दुःख है तो इस वात का कि लोगों ने मुझे बुलाना नहीं छोड़ा।

संसद् में आर्यसमाजी—समय-समय पर अनेक आर्यसमाजी संसद् के सदस्य बनते रहे हैं। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति, श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, पं० शिवकुमार शास्त्री आदि ने अच्छा काम किया, किन्तु मेरी दृष्टि में आज तक केवल ढाई आर्यसमाजी ही सफल सांसद बन सके—दीवान हरविलास शारदा, श्री घनश्यामसिंह गुप्त तथा श्री ओंप्रकाश त्यागी। संसद् का काम क़ानून वनाना है—वह Legislature है। यही तीन व्यक्ति ऐसे हुए जिन्होंने संसद् में जाकर महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज की मान्यताओं के पोषक कानून बनवाने का प्रयास किया। श्री हरविलास शारदा ने बाल-विवाह रोकने के लिए शारदा एक्ट के नाम से प्रसिद्ध Child Marriage Restraint Act वनवाया। श्री घनश्यामसिंह गुप्त ने जन्म की जात-पाँत तोड़कर होनेवाली शादियों को कानूनी मान्यता दिलाने के लिए Arya Marriage Validation Act वनवाया। श्री ओंप्रकाश त्यागी ने धमकी, लालच, धोखे आदि से धर्म-परिवर्तन किये जाने पर रोक लगवाने के लिए लोकसभा में बिल पेश किया, किन्तु लोकसभा भंग हो जाने से वह पास नहीं हो सका। इसलिए मैंने त्यागीजी को आधा कहा है। ये तीनों किसी एक पार्टी के टिकट पर चुने जाकर संसद् में नहीं पहुँचे थे।

सितम्बर १९८६ में लखनऊ में आर्य प्रतिनिधि सभा की शताब्दी मनाई गई। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के १८ मन्त्रियों, सांसदों तथा विधायकों को वहाँ आमन्त्रित किया था। ऐसा लगता था जैसे आर्यसमाज की बजाय इन्दिरा कांग्रेस का कोई उत्सव हो रहा हो। एक-एक सम्मेलन के लिए अध्यक्ष, प्रधान संयोजक, सह-संयोजक

उपसंयोजक, व्यवस्थापक, मुख्य अतिथि, विशिष्ट अतिथि, प्रेरणा स्रोत, मुख्य वक्ता, प्रमुख वक्ता, विशिष्ट वक्ता, उद्‌घाटनकर्त्ता, आशीर्वचन, स्वागतकर्त्ता, अभिनन्दनकर्त्ता, समापनकर्त्ता आदि नाम देकर लोगों के अहम् को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया गया था।

एक आदर्श यह भी है—रामलीला मैदान में आयोजित आर्य महासम्मेलन में ज्ञानी ज़ैलसिंह को आमन्त्रित किया गया था। उस समय वह केन्द्रीय सरकार में गृहमन्त्री थे। जब वह आते दिखाई दिये तो मंच पर उपस्थित सार्वदेशिक सभा के प्रधान व मन्त्री सहित आर्य-समाज के सभी प्रमुख नेता एक-साथ उनकी अगवानी के लिए दौड़ गये। मंच पर अकेला मैं बैठा रह गया। आगे-आगे ज्ञानीजी और पीछे-पीछे आर्यसमाज के नेता मंच की ओर आये। ज्ञानीजी ने मंच पर आते ही दोनों हाथों से मेरे पैर छुए और अपने स्थान पर बैठ गये। भाषण की समाप्ति पर एक बार फिर दोनों हाथों से मेरे पैर छूकर मंच से उतरे।

और एक यह भी—इसके विपरीत एक स्थानीय आर्यसमाज के उत्सव में मैं मंच पर उपस्थित था। प्रमुख सनातनधर्मी नेता श्री प्रेमचन्द गुप्ता तथा दिल्ली के भूतपूर्व कार्यकारी पार्षद श्री मदनलाल खुराना वहाँ आये। उनका अभिनन्दन करते हुए आर्यसमाज के मन्त्री ने घोषणा की कि अब स्वामी विद्यानन्दजी सरस्वती मान्य अतिथियों का माल्यार्पण द्वारा स्वागत करेंगे। यह सुनते ही उक्त दोनों नेता मानों समवेत स्वर में बोल उठे—स्वामीजी हमारा स्वागत नहीं करेंगे, हमें आशीर्वाद देंगे।

बाबू जगजीवनरामजी से नोंक-झोंक—एक दिन जगजीवनरामजी के सचिव ने टेलीफोन पर मुझे कहा कि बाबूजी चाहते हैं कि परसों (दशहरा से अगले दिन) आप उनके साथ भोजन करें। मैं नियत समय पर वहाँ पहुँच गया। श्री ला० हंसराज गुप्ता, श्री प्रेमचन्द्रजी गुप्ता और गोस्वामी गिरधारीलालजी भी आमन्त्रित थे। बातचीत

के दौरान बाबूजी ने मुझसे कहा—'धर्मपरिवर्तन तो इस देश में सदा से होता आया है, शैवों-वैष्णवों में, हिन्दुओं और बौद्धों में। फिर मीनाक्षीपुरम् में हुए धर्मपरिवर्तन के कारण इतनी आफ़त क्यों मची हुई है ?' मैंने कहा कि जब सदा से ही धर्मपरिवर्तन होता आया है तो इस धर्मपरिवर्तन के कारण बावेला क्यों मच रहा है ? आप ही बताइए। बाबूजी चुप रहे। मैंने कई बार उन्हें कुरेदा तो एक बार बड़े रोष-भरे स्वर में बोले—आप ही बताइए। मैंने कहा—बाबूजी, जब शैव से वैष्णव, आर्यसमाजी से सनातनधर्मी या हिन्दू से बौद्ध आदि के रूप में धर्मपरिवर्तन होता है, तो केवल उसकी उपासना-पद्धति में या धार्मिक मान्यताओं में अन्तर पड़ता है, किन्तु जब हिन्दू से मुसलमान बनता है तो उसका देश, उसका राष्ट्र बदल जाता है—वह देशद्रोही हो जाता है। हाकी या क्रिकेट के मैच में भी भारत के हारने पर उसे खुशी होती है और पाकिस्तान के हारने पर उसपर मातम छा जाता है। बाबूजी तैश में आकर बोले—आप जानते हैं कि मैं देश का रक्षामन्त्री रहा हूँ, एक दर्जन हिन्दू पाकिस्तान के लिए जासूसी करते पकड़े गये थे। मैंने भी उसी स्वर में उत्तर दिया कि मैं यह सब जानता हूँ, परन्तु एक बात कहता हूँ। वह यह कि जहाँ आपको हिन्दुओं में एक दर्जन देशद्रोही मिले, वहाँ मुसलमानों में कुल जमा एक दर्जन देशभक्त नहीं मिलेंगे। बाबूजी शान्त हो गये।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते—१९८३ में आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली का निर्वाचन हुआ। कुछ लोगों ने प्रधान पद के लिए मेरा नाम प्रस्तुत कर दिया। मैंने कहा कि सन् १९३४ में आर्यसमाज में प्रवेश करते समय प्रतिज्ञा की थी कि मैं कभी चुनाव नहीं लड़ूँगा। मैं आज भी वहीं खड़ा हूँ। इसपर लोगों ने सर्वसम्मति से चुने जाने पर प्रधान पद स्वीकार करने का आग्रह किया। मैंने कहा कि मैं सन् १९७८ में सार्वजनिक रूप से घोषणा कर चुका हूँ कि मैं कभी कोई पद ग्रहण नहीं करूँगा। बात समाप्त हो गई।

अगले वर्ष १९८४ में पुनः सभा का निर्वाचन हुआ। कई महीनों की तैयारी के साथ बड़े संघर्ष के बाद श्री सूर्यदेवजी २९ वोटों के बहुमत से प्रधान चुने गये। जैसी कि कुछ समय से परिपाटी चल पड़ी है, शेष अधिकारियों, अन्तरंग सभासदों, विद्यासभा, सार्वदेशिक सभा के लिए प्रतिनिधि आदि चुनने का अधिकार श्री सूर्यदेव को दे दिया गया। उन्होंने जैसा चुनाव किया, उसका एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। सार्वदेशिक सभा के लिए १५ प्रतिनिधि और गुरुकुल काँगड़ी की विद्यासभा और सेनेट के लिए क्रमशः ९ और ३ प्रतिनिधि दिल्ली प्रतिनिधि सभा की ओर से चुनकर भेजे जाते हैं।

मैंने ५० वर्ष तक अध्यापन कार्य किया, २० वर्ष तक डिग्री और पोस्टग्रेजुएट कालिजों का प्रिंसिपल रहा। पंजाब, हरियाणा व दिल्ली की अनेक शिक्षण-संस्थाओं का संचालन किया। उपराष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होकर पंजाब यूनिवर्सिटी का सम्मानित सदस्य रहा। १६ वर्षों तक गुरुकुल काँगड़ी की सेनेट और अनेक उच्चस्तरीय समितियों का सदस्य तथा कुछ समय तक गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन का आचार्य रहा। विद्वानों द्वारा प्रशंसित और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों व स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी की एक दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखीं, परन्तु इस सबके होते हुए भी मुझे गुरुकुल काँगड़ी की विद्यासभा आदि की सदस्यता के योग्य नहीं समझा गया। लगभग अनपढ़ व्यक्तियों को ले लिया गया।

५ वर्ष तक मैं सार्वदेशिक सभा का सहायक मंत्री (श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय मन्त्री थे) और लगभग १८ वर्ष तक अन्तरंग सभासद् रहा। वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश, पंजाब व हरियाणा का अधिकारी व अन्तरंग सभासद् रहा। आज देश के सभी बड़े-बड़े नगरों में चल रहीं आर्य केन्द्रीय सभाओं की प्रेरक आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली की संस्थापना की। सार्वदेशिक सभा की स्वर्ण जयन्ती और आर्य महासम्मेलन जैसे विशाल आयोजन किये। आर्यसमाज के जितने

भी आन्दोलन हुए—हैदराबाद, सिन्ध व हिन्दी सत्याग्रह आदि—सबमें सक्रिय भाग लिया। इस सबके बावजूद मुझे सार्वदेशिक सभा की सदस्यता के योग्य नहीं समझा गया। योग्य समझा गया ऐसे व्यक्ति को जिसकी न किसी प्रकार की योग्यता है और न आर्यसमाज में कोई स्थिति, एक फ़ैक्टरी में काम करता है, परन्तु मुझे अधिक आश्चर्य नहीं हुआ, जब मैंने देखा कि उत्तरप्रदेश की ओर से प्रिंसिपल महेन्द्रप्रताप शास्त्री और प्रो० रत्नसिंह जैसे विद्वानों की जगह दिल्ली की एक आर्य-समाज के सेवक को चुना गया। यह समझना भूल होगी कि मैं यह सब किसी लालसा के कारण लिख रहा हूँ। मैं तो मात्र तथ्य सामने ला रहा हूँ। मुझे चिन्ता इस बात की है कि ऐसी स्थिति में आर्यसमाज कैसे और कब तक जीवित रह पाएगा !

विश्व धर्मसम्मेलन—कहते हैं, कुछ वर्ष हुए, जर्मनी में एक विश्व धर्मसम्मेलन हुआ था। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में उसकी चर्चा पढ़ने में नहीं आई। १६३३ में शिकागो में हुए विश्व धर्मसम्मेलन में आर्यसमाज का प्रतिनिधित्व प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् व वक्ता पण्डित श्री अयोध्याप्रसादजी ने किया था। अब भी आर्यसमाज में स्वामी सत्यप्रकाशजी, आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जैसे कई विद्वान् हैं, परन्तु जर्मनी में हुए इस सम्मेलन में उसका प्रतिनिधित्व किया श्री रामगोपाल शालवाले ने। कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया है हमारा बौद्धिक स्तर !

बाबा आमटे से वार्त्तालाप—बाबा आमटे वर्त्तमान में आचार्य विनोबा भावे की तरह प्रतिष्ठित हैं। १६८५ में उन्होंने पंजाब में पदयात्रा की। इस पदयात्रा का प्रयोजन था—पंजाब में हिंसक प्रवृत्तियों का उन्मूलन, शराबबन्दी और गोहत्या पर रोक। चलते-चलते एक दिन वे पानीपत भी पहुँचे। मैं उन दिनों पानीपत के समीप ही प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र पट्टी कल्याणा में उपचार करा रहा था। पानीपत की गौशाला के मैनेजर आकर मुझे ले गये। बाबा आमटेजी ने सन्तों की भाषा में अपना व्याख्यान दिया। उनके पश्चात् मेरा

भाषण हुआ। मैंने सिद्ध किया कि आपकी पदयात्रा के बाद पंजाब में हिंसा, मार-काट बढ़ी है, गोहत्या में ५० गुना और शराब की खपत में २० गुना वृद्धि हुई है। निश्चय ही आप ग़लत रास्ते पर चल रहे हैं। समझदारी इसी में है कि इस रास्ते पर आगे बढ़ना बन्द कर दें और सही रास्ते की खोज करके उसपर चलें। मेरी बातों को वह झुठला नहीं सके। तब उन्होंने स्वयं रहस्योद्घाटन किया कि जब विनोबाजी ने गोवध पर रोक लगवाने के लिए आमरण अनशन किया तो प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी उनके पास गईं और कहा कि आप अपना उपवास तोड़ दें, मैं गोवध पर रोक लगा दूँगी। हमने (बाबा आमटे ने) यह समझकर कि इन्दिराजी गोवधनिषेध के लिए क़ानून बनाने जा रही हैं, उनकी सहायता करने के लिए संसत्सदस्यों के हस्ताक्षर कराने शुरू कर दिये। जब १५३ सदस्य हस्ताक्षर कर चुके तो इन्दिराजी को पता चला। उन्होंने हस्ताक्षर करनेवालों को बुलाकर हस्ताक्षर करने के लिए धमकाया। वे बोले कि आपने विनोबाजी से गोवध पर रोक लगा देने की बात कही थी, इसलिए हमने हस्ताक्षर कर दिये, आपकी भावना का आदर करते हुए। इसपर इन्दिराजी ने कहा—मैंने विनोबाजी से कहा था, तुमसे तो नहीं कहा था। अपने हस्ताक्षर वापस लो, और इस प्रकार हमारा प्रयास विफल हो गया। मैंने कहा, ऐसी झूठी सरकार से क्या आप पदयात्रा द्वारा कुछ पा सकेंगे? संसत्सदस्य तो बेचारे बंधुआ मज़दूर ठहरे—मूक, निरीह प्राणी! पानीपत से दिल्ली पहुँचने पर उनकी पदयात्रा समाप्त हो गई। पदयात्रा भी फ़ैशन बन गया है, दिखावे से अधिक उसका कोई लाभ नहीं। पंजाब में हिंसा को उससे बल मिला है।

लालाजी का संन्यासग्रहण—सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री रामगोपाल शालवाले ने १८ अप्रैल, १९८६ को तालकटोरा स्टेडियम में श्री बलराम जाखड़ की अध्यक्षता में सम्पन्न महात्मा हंसराज के जन्मदिवस समारोह में सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि मैं जल्दी ही

संन्यास ले रहा हूँ और संन्यास लेते ही मैं प्रधान पद से त्यागपत्र दे दूँगा। २२ जून, १९८६ को उन्होंने संन्यास की दीक्षा ले ली, किन्तु प्रधानपद से त्यागपत्र नहीं दिया। वास्तव में उन्होंने प्रधानपद पर बने रहने के लिए ही संन्यास लिया था। हरेक की ज़बान पर एक बात थी कि सार्वदेशिक सभा का प्रधान कोई संन्यासी होना चाहिए। ऐसे लोगों का मुँह बन्द करने के लिए ही तो उन्हें संन्यास लेना पड़ा था। निरन्तर तीन वर्ष की भाग-दौड़ के फलस्वरूप जो पद उन्हें मिला है, उसे कैसे त्याग सकते हैं ? जिसे पाने के लिए वह दिन-रात मारे-मारे फिरते हैं, यत्र-तत्र-सर्वत्र फूट का वीज वोते हैं, तरह-तरह के जोड़-तोड़ करते हैं, उसे पाकर लोगों के कहने से कैसे छोड़ा जा सकता है ? संन्यास लेने के दो घण्टे बाद राग-द्वेष का परित्याग करके उन्होंने सबसे पहला शुभ काम श्री वीरेन्द्र को आर्यसमाज से निकालने का किया। अब यह प्रमाणित हो चुका है कि वीरेन्द्रजी से लालाजी को केवल एक शिकायत है कि जहाँ अन्य अनेक प्रान्तीय सभाओं के प्रधान लालाजी के बनाये बनते हैं वहाँ वीरेन्द्रजी उनके बिना ही अपनी शक्ति से उनके प्रत्याशी के मुक़ाबले १५६ में १४४ मत लेकर प्रधान क्यों बन जाते हैं ? पंजाब सभा का पिछला चुनाव लालाजी के लिए वाटरलू बन गया जहाँ वे अपनी सारी शक्ति लगाकर भी अपने प्रत्याशी को मात्र १२ वोट दिला सके। मैं लालाजी को पत्र लिखकर तालकटोरा स्टेडियम में की गई घोषणा का स्मरण करा चुका हूँ, परन्तु उनकी दृष्टि में 'वह वायदा ही क्या जो वफ़ा हो गया'।

१९८४ में सम्पन्न सार्वदेशिक सभा के चुनाव के अवसर पर मैंने सभामंत्री श्री ओंप्रकाश त्यागी को सुझाव लिख भेजा था, कि इस बार लालाजी को आजीवन प्रधान बना दिया जाए जिससे १५ वोट पाने के लिए उन्हें सभाओं में झगड़े न कराने पड़ें। त्यागीजी ने उत्तर में लिखा कि मैं आपके सुझाव से सहमत हूँ, किन्तु सभा के विधान में इसका प्रावधान नहीं है।

विद्वानों का अवमूल्यन—कुछ वर्ष हुए मुझे आर्यसमाज अड्डा होशियारपुर जालन्धर से एक सप्ताह तक यज्ञ कराने तथा प्रवचन करने का निमन्त्रण मिला। पत्र में आर्यसमाज के प्रधान श्री योगेन्द्र-पाल सेठ ने लिखा था कि इस कार्य के लिए आर्यसमाज मुझे ४०० रुपये देगी। मैंने उत्तर दिया कि मेरी मान्यता के अनुसार संन्यासी को यज्ञ कराने का अधिकार नहीं है, इसलिए मैं यज्ञ नहीं कराऊँगा। जहाँ तक मेरी दक्षिणा का प्रश्न है, आप जानते हैं कि मैं दिये जाने पर भी दक्षिणा नहीं लेता; फिर, पहले ठहराने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। आपको यह भी पता है कि जालन्धर की ही एक समाज से मैंने केवल मार्ग-व्यय रखकर शेष राशि लौटा दी थी। ऐसी अवस्था में आपको मुझे दक्षिणा का लालच नहीं देना चाहिए था। उन्होंने इसके उत्तर में लिखा—उपदेशक लोग दक्षिणा को लेकर झगड़ा करते हैं (कुछ हद तक यह ठीक भी है), इसलिए हमारी समाज ने निर्णय किया है कि पहले ही लिख दिया जाया करे और क्योंकि आप यज्ञ नहीं करायेंगे, इसलिए जो विद्वान् यज्ञ कराएगा उसकी दक्षिणा के सौ रुपये आपको दी जानेवाली दक्षिणा में से कटेंगे। मैंने प्रत्युत्तर में लिखा कि यज्ञ करानेवाले को एक सप्ताह के सौ रुपये देने का अर्थ है उसे १४ रुपये दिहाड़ी देना, जबकि गारा ढोनेवाला मज़दूर भी आजकल १६ रुपये से क़म में नहीं मिलता। आप मुझे ४०० की बजाय ४५० रुपये दे देना। मैं उसमें से ३५० रुपये (५० रुपये प्रतिदिन) यज्ञ करानेवाले विद्वान् को दे दूँगा। १०० रुपये में मेरा मार्ग-व्यय चल जाएगा। उन्हें यह स्वीकार नहीं हुआ। मैं वहाँ नहीं गया। कभी उस समाज के साप्ताहिक सत्संगों में १५०-२०० की उपस्थिति हुआ करती थी अब घटकर १०-१२ रह गई है। आमदनी बहुत बढ़ गई है। लक्ष्मी आ रही है, उसकी पूजा हो रही है। सरस्वती को कोई पूछता तक नहीं, वह जा रही है। २०-२५ वर्ष से सारी सत्ता एक व्यक्ति में केन्द्रित है। वस्तुतः ऊपर से नीचे तक सर्वत्र यही स्थिति है। जो एक बार

बैठ जाता है, चिपक जाता है, हिलने का नाम नहीं लेता।

दयानन्द शोधपीठ—पंजाब तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयों में दयानन्द शोधपीठ की स्थापना हुए काफ़ी समय हो गया है। दोनों जगह उपयोगी काम हुआ है और हो रहा है। दिल्ली में आर्यसमाज की शिरोमणि सभा, आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य प्रादेशिक सभा तथा डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी के मुख्यालय हैं। आर्यसमाज द्वारा संचालित दर्जनों स्कूल व कालिज हैं। २००-२५० आर्यसमाजें हैं। संसद् के दोनों सदनों, महानगर परिषद् व नगर निगम में सौ के लगभग आर्यसमाजी सदस्य वताये जाते हैं। ऐसी अवस्था में दिल्ली विश्वविद्यालय में दयानन्द शोधपीठ का न होना आश्चर्यजनक होने के साथ-साथ हमारी अकर्मण्यता का भी द्योतक है। भारत सरकार द्वारा इतिहास के पुनर्लेखन के लिए एक समिति का गठन किया गया है। इतिहास के पुनर्लेखन के लिए सरकार ने जो निर्देश दिये हैं, उनका पालन होने पर स्कूलों में पढ़ाया जानेवाला इतिहास न केवल निरर्थक हो जाएगा, वल्कि सत्यशोध की दिशा में इतिहास की भूमिका ही सन्देह के घेरे में आ जाएगी। भारत के इतिहास को साम्यवादी रंग देने में दिल्ली विश्वविद्यालय का इतिहास विभाग पहले ही प्रयत्नशील है।

सन् १९८१ में आर्य महासम्मेलन के अवसर पर सम्पन्न वेद सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में मैंने इन दोनों महत्त्वपूर्ण विषयों को प्रस्तुत कर इस विषय में आवश्यक कार्यवाही किये जाने पर वल दिया था। तत्पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा में मैंने इन दोनों बातों की ओर सदस्यों का ध्यान आकृष्ट किया। तब दोनों प्रयोजनों के लिए ज्ञापनों का प्रारूप तैयार करने तथा प्रभावी व्यक्तियों से सम्पर्क करके इस कार्य को दिशा देने का काम मुझे सौंपा गया। मैंने लोकसभा अध्यक्ष श्री वलराम जाखड़ से भेंट करके उनसे दिल्ली विश्वविद्यालय में दयानन्द शोधपीठ की स्थापना तथा इतिहास पुनः-लेखन समिति में आर्यसमाज के दो प्रतिनिधियों को सम्मिलित कराने

में सहयोग देने का अनुरोध किया। लम्बी बातचीत के बाद वे यहाँ तक तैयार हो गये कि यदि उन्हें ज्ञापन तैयार करके दे दिये जाएँ तो वे प्रधानमन्त्री, शिक्षामन्त्री, विश्वविद्यालय के कुलपति आदि के पास उन्हें अपनी ओर से भेज देंगे। वापस आकर मैंने दोनों ज्ञापनों के ड्राफ्ट तैयार करके सभा कार्यालय में दे दिये। अब केवल टाइप कराके मन्त्री या प्रधान के हस्ताक्षरों के साथ उन्हें श्री जाखड़जी के हाथों में पहुँचानेभर का काम रह गया था, परन्तु प्रधान व मन्त्री के बीच खटपट होने से यह काम न हो सका।

प्रायः यह कहा जाता है कि काम करनेवाला तो विना पद या अधिकार के भी जो चाहता है, कर डालता है। यह बात कुछ हद तक ही ठीक हो सकती है। अधिकृत व्यक्ति का मन यदि किसी काम में नहीं है, तो लाख सिर पटकने पर भी कोई उसे नहीं करा सकता। हमारे संगठन में यह बड़ा भारी दोष है कि जो सोच सकते हैं, वे करने में असमर्थ हैं और जो कर सकते हैं, वे सोचने में असमर्थ हैं। बुद्धिजीवी वर्ग आज आर्यसमाज से दूर पड़ा है। सत्ता के भूखे Musical chair race (कुर्सी दौड़) में व्यस्त हैं, परिणामतः आर्यसमाज को जंग लग रहा है।

दिल्ली विश्वविद्यालय में वेद—दिल्ली विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १९२० में हुई थी। तभी से एम० ए० (संस्कृत) के पाठ्यक्रम में वेद के विकल्प की व्यवस्था थी, परन्तु १९७५ तक कभी किसी ने यह विकल्प लिया नहीं था। जव मुझे इस वात का पता चला तो मैंने इस दिशा में प्रयास किया। श्री देसराज चौधरी और विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग में आचार्य डा० कृष्णलाल के सहयोग से छात्र-वृत्तियों के सहारे मैंने इस कार्य को प्रारम्भ किया। वेद पढ़ाया जाए, किन्तु पाश्चात्य तथा पौराणिक विद्वानों के दृष्टिकोण से नहीं, स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण से पढ़ाया जाए, मेरे लिए यह आवश्यक था। इसलिए मैं स्वयं भी समय-समय पर उन विद्यार्थियों को पढ़ाता था,

और अब भी पढ़ाता हूँ। मैं तो कुछ नहीं लेता किन्तु छात्र-छात्राओं को प्रोत्साहन देने के लिए पैसा चाहिए। पहले मैं कुछ लोगों के सहयोग से इसकी व्यवस्था करता रहा। कालान्तर में मैंने इस कार्य के निमित्त डी० ए० वी० कालिज मैनेजिंग कमेटी तथा सार्वदेशिक सभा से २०० रुपये मासिक सहायता चाही, किन्तु दोनों ने अंगूठा दिखा दिया। श्री सूरजभानजी ने लिखा कि उनके पास पैसा नहीं है यद्यपि उस समय उनके पास कई करोड़ रुपये थे। सार्वदेशिक सभा ने लिखा कि ५-७ विद्यार्थियों के वेद पढ़ने से कोई लाभ होनेवाला नहीं। सभा के अधिकारियों ने कभी कालिज या यूनिवर्सिटी देखी नहीं थी, इसलिए उन्हें पता नहीं था कि एम० ए० में एक-एक वैकल्पिक विषय में गिने-चुने विद्यार्थी ही होते हैं, तालियाँ बजानेवाली रामलीला मैदान की भीड़ नहीं। ईश्वर की कृपा से यह कार्य व्यक्तिगत प्रयत्न से हो रहा है।

सूचना तथा प्रसारण मन्त्री से भेंट—१९८१ में होशियारपुर तथा जालन्धर के प्रमुख लोगों का एक शिष्टमण्डल तत्कालीन सूचना तथा प्रसारण मन्त्री से भेंट करने दिल्ली आया था। वे लोग मुझसे बहुत पहले से परिचित थे। अपना प्रवक्ता उन्होंने मुझे बना लिया। मन्त्री महोदय बाहर गये हुए थे। हम लोग आकाशवाणी और दूरदर्शन के महानिदेशक से मिलने चले गये। जो कुछ हमें कहना था, वह तो उन्होंने अपनी कुरसी पर बैठे-बैठे सुन लिया, परन्तु उत्तर देने के लिए वे अपनी कुरसी से उठकर एक ओर पड़े सोफ़ों पर हमारे साथ बैठ गये। कहने लगे कि कुर्सी पर बैठकर मुझे उस कुरसी के अनुरूप बातें करनी थीं। यहाँ बैठकर मैं आपसे खुलकर बातें कर सकता हूँ। वेद के महत्त्व तथा आकाशवाणी से वेदमन्त्रों के प्रसारण के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक बातें करने के बाद वे बोले—आकाशवाणी से गुरुवाणी का पाठ इसलिए करना पड़ा कि पहले पाकिस्तान ने लाहौर स्टेशन से शुरू कर दिया था। यदि हम न करते तो सिख कहते कि भारत की अपेक्षा

पाकिस्तान को सिखों का अधिक ख़याल है। गोहाटी स्टेशन से बाइबल का पाठ इसलिए होता है, क्योंकि वैसा न करने से वहाँ के ईसाइयों में भारतविरोधी भावना भड़काये जाने का भय है। हैदराबाद से कुरान का पाठ इसलिए करना पड़ता है कि वह निज़ाम के समय से होता आया है। अब बन्द होगा तो मुसलमान शोर मचाएँगे। हिन्दुओं से सरकार को कोई डर नहीं है। यदि आप सरकार से अपनी बात मनवाना चाहते हैं तो वेदादि का महत्त्व मत बखानिए। सरकार को यह विश्वास दिलाना ज़रूरी है कि यदि आपकी बात नहीं मानी जाएगी तो या तो आप उसे वोट नहीं देंगे या आप हिंसा पर उतारू हो जाएँगे, अन्यथा आपकी बात कोई नहीं सुनेगा।

कुछ दिनों बाद मेरी तत्कालीन सूचना तथा प्रसारण मन्त्री श्री वी० एन० गाडगिल से लगभग ४० मिनट तक बातें हुईं। मैंने उनसे भी माँग की कि जिस प्रकार आकाशवाणी से कुरान, बाइबल और ग्रन्थसाहब का पाठ होता है, वैसे ही वेद का भी होना चाहिए। मैंने यह भी सिद्ध किया कि देश में चारों ओर फैली हिंसा, बलात्कार की घटनाओं तथा युवकों व युवतियों में बढ़ती हुई चरित्रहीनता के लिए सबसे अधिक दोषी आपका विभाग है जो सिनेमा, टी० वी० और रेडियो आदि के द्वारा इन प्रवृत्तियों को बल देता है। 'योग' को 'योगा', 'बुद्ध' को 'बुद्धा', 'कर्नाटक' को 'कर्नाटका', 'काशी' को 'कासी' जैसे अशुद्ध उच्चारण नहीं होने चाहिएँ। मैंने उन्हें विस्तार से समझाया कि रेडियो और टी० वी० से 'नमस्कार' की जगह 'नमस्ते' बोला जाना चाहिए, क्योंकि जहाँ 'नमस्कार' शब्द सर्वथा निरर्थक है, वहाँ अभिवादन के लिए 'नमस्ते' शब्द सार्थक होने के साथ-साथ हज़ारों-लाखों वर्षों से प्रयुक्त होता आया है। वेदादि शास्त्रों और रामायण-महाभारत आदि ग्रन्थों में सर्वत्र उसी का उल्लेख मिलता है। श्री गाडगिल ने मेरी एक-एक बात से पूर्ण सहमति व्यक्त की। कुछ दिनों बाद उन्हें मन्त्रिमण्डल से हटा दिया गया।

वास्तव में इस दिशा में जितना और जिस प्रकार प्रयत्न किया जाना चाहिए, उतना और वैसा नहीं हो रहा है। मैं शरीर से अस्वस्थ और साधनहीन होने के कारण जितना मुझे करना चाहिए, उतना करने में अपने आपको असमर्थ पाता हूँ।

शिक्षामन्त्री से भेंट—तत्कालीन शिक्षामन्त्री श्री कृष्णचन्द्र पन्त ने नई शिक्षा नीति का प्रारूप भेजकर उसपर मेरे सुझाव माँगे थे। मैंने ३२ सुझाव दिये और उनसे भेंट करके विचार-विमर्श किया। एक ज्ञापन के द्वारा मैंने उनसे अनुरोध किया कि पाठ्य-पुस्तकों में यह नहीं पढ़ाना चाहिए कि आर्य लोग बाहर से आये थे। इससे देश का विघटन होकर अनेक प्रकार के विवाद खड़े होंगे जो एकता और अखण्डता में बाधक सिद्ध होंगे। उन्होंने अपने विशेष सचिव को कहकर जल्दी-से-जल्दी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश दिया। बाद में उनका विभाग बदल गया।

राजीव गांधी और संस्कृत—७ मई, १९८५ को प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने तीनमूर्ति भवन में आयोजित समारोह में मेरी एक पुस्तक 'तत्त्वमसि' पर मुझे विशेष पुरस्कार प्रदान किया। एक हाथ से मैंने पुरस्कार लिया और दूसरे से उन्हें एक ज्ञापन थमा दिया जिसमें संस्कृत के महत्त्व और व्यवहार में उसकी आवश्यकता पर बल देते हुए पाठ्यक्रम में किसी-न-किसी स्तर पर संस्कृत के अनिवार्य रूप से पढ़ाये जाने का अनुरोध किया गया था। श्री बलराम जाखड़ भी उस अवसर पर वहाँ उपस्थित थे। कुछ दिन बाद मैं उनसे मिला और विषय पर चर्चा की। उन्होंने मुझे बताया कि मैंने प्रधानमन्त्री को इस विषय में लिखा है। देर-सवेर मेरे पत्र का उत्तर अवश्य आएगा। उनका उत्तर तो नहीं आया, परन्तु नई शिक्षा नीति में संस्कृत के पढ़ने-पढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया! अनन्तर आर्यसमाज दीवान हाल के वार्षिकोत्सव के अवसर पर ध्वजारोहण के बाद अपने भाषण में मैंने उपस्थित जनता का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। एक सप्ताह के भीतर ही इसपर विचार करने के लिए सार्वदेशिक

सभा की ओर से विद्वानों की एक सभा बुलाई गई। मैंने उसमें पहले से तैयार अपना प्रस्ताव विचारार्थ प्रस्तुत किया। सार्वदेशिक सभा के प्रधान स्वामी श्री आनन्दबोध ने उस प्रस्ताव में कुछ हेर-फेर करने का बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु उपस्थित विद्वानों का निश्चित मत था कि प्रस्ताव इतना पूर्ण और निर्दोष है कि उसमें एक अक्षर भी नहीं बदला जा सकता। प्रस्ताव निर्विरोध सम्मति से ज्यों-का-त्यों स्वीकार हो गया। तदनन्तर प्रधानजी ने बारी-बारी कई विद्वानों से प्रस्ताव पर एक बार और विचार करने के लिए अगले दिन ११ बजे सभा कार्यालय में पहुँचने के लिए कहा, परन्तु अनावश्यक होने के कारण एक सिरे से सभी ने इन्कार कर दिया। सभा कार्यालय में अवश्य उसका अंग-भंग कर दिया गया। प्रधानमन्त्री से मिलने एक शिष्ट-मण्डल संस्कृत रक्षासमिति के स्वयंभू प्रधानजी के नेतृत्व में मिला तो प्रधानमन्त्री द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर किसी से न बन पड़ा। संस्कृत सम्बन्धी उक्त बैठक मेरी प्रेरणा से बुलाई गई थी, यह स्वीकार करते हुए मेरे ही द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के स्वीकार होने पर तदनुसार संस्कृत रक्षा समिति का गठन किया गया था, तथापि उक्त शिष्ट-मण्डल में मुझे शामिल नहीं किया गया। कारण सर्वविदित है।

उसी अवसर पर प्रधानमन्त्री को 'बृहद् विमानशास्त्र' की प्रति भेंट करते हुए स्वामी श्री आनन्दबोधजी ने प्रधानमन्त्री को बताया कि जिस समय स्वामी दयानन्द ने प्राचीनकाल में विमानों के अस्तित्व की चर्चा की थी तो इंगलैण्ड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री सर राम्से मैकडानल्ड ने उनका उपहास किया था (आर्यजगत् ७ जून, १९८७)। वस्तुतः राम्से मैकडानल्ड तो इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री सन् १९३२ के आस-पास रहे थे। उन्हें स्वामी दयानन्द का समकालीन बताना बड़ी भारी भूल थी, परन्तु उस समय शिष्टमण्डल के नेता की लाज इस-लिए बच गई, क्योंकि स्वयं प्रधानमन्त्री भी उतना ही पढ़े हैं और इतिहास से उतने ही अनजान हैं। इससे पहले भी जब लोकसभा में

(सदस्य होने के नाते) उन्होंने बंकिमचन्द्र चटर्जी को (जिन्हें मरे ७० साल के लगभग हो चुके थे) गिरफ़्तार करने की माँग की थी तो लोकसभा में आर्यसमाज की शिरोमणि सभा के शिरोमणि नेता की खिल्ली उड़ी थी और समाचार-पत्रों ने इस बात को खूब उछाला था।

इतिहास ही नहीं, वैदिक सिद्धान्तों तथा आर्यसमाज की मान्यताओं के सम्बन्ध में भी शालवालेजी की कितनी जानकारी है, इसके निदर्शनार्थ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की मान्यता है कि जब से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, अर्थात् सृष्टि के आदिकाल से ही वेद चार हैं। स्वयं वेद भी यही कहते हैं कि हम सदा से चार हैं, परन्तु श्री रामगोपाल शालवाले कहते हैं कि पहले एक ही वेद था। "भगवान् वेदव्यास ने वेदों के चार भाग किये।" देखें ३ मई, १९८५ को रात्रि ८ बजे अजमलखाँ पार्क करौलबाग दिल्ली में महात्मा रामगोपालजी का (मुद्रित) उद्घाटन भाषण।

अब हम किसकी मानें ? संसारभर की आर्यसमाजों की शिरोमणि सभा के ३० वर्ष से प्रधान/मन्त्री चले आ रहे महात्मा रामगोपाल की या स्वामी दयानन्द की जो एक दिन किसी छोटी-सी समाज के उपमन्त्री भी नहीं रहे या भगवान मनु, गौतम, कपिल, कणाद आदि की, जिन्होंने कभी आर्यसमाज का नाम तक नहीं सुना था।

२. इतिहास बताता है कि मैक्समूलर भारत में कभी नहीं आया, परन्तु लालाजी कहते हैं कि "मैक्समूलर ने यहाँ आकर सायणाचार्य और महीधर के, रावण के भाष्य पढ़े।" वही, पृ० ५।

इतिहास तो पुस्तकों में है जो जड़ हैं, परन्तु लालाजी का कथन तो जीते-जागते मनुष्य का कथन है। इसलिए भले ही मैक्समूलर भारत में न आया हो, अनुशासन का तकाज़ा है कि अपने नेता के अनुसार उसे यहाँ आया मानें।

इतना ही नहीं, हमें निर्वाचन और निर्वचन में और इसी प्रकार

अष्टाध्यायी और कौमुदी में भी भेद नहीं करना चाहिए।

३. 'सार्वदेशिक' साप्ताहिक के २१ नवम्बर, १६७६ के अंक में लालाजी ने आर्यों के नाम आदेश जारी किया था—"महर्षि दयानन्द और महर्षि मनु ने कन्या के विवाह की आयु १६ वर्ष मानी है, इसलिए १६ वर्ष की आयु में ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए।"

यदि उन्होंने सत्यार्थप्रकाश या संस्कारविधि को देखा होता तो ऐसा कदापि न लिखते। स्वामीजी का मन्तव्य है—

"यदि शीघ्र विवाह करें तो १६ वर्ष से न्यून कन्या का विवाह न करें, किन्तु १६ वर्ष की कन्या का विवाह निकृष्ट और २४ वर्ष की कन्या का विवाह उत्तम होता है।"—स० प्र० समु० ४ व सं० विधि, विवाह, वेदारम्भ व गर्भाधान-संस्कार।

शालवालेजी का यह लेख ब्रह्मा से जैमिनिपर्यन्त ही नहीं, दयानन्द-पर्यन्त सभी ऋषि-मुनियों तथा चरक-सुश्रुत आदि आयुर्वेद के आचार्यों की अवहेलना करके एक नई, किन्तु अवैदिक स्मृति की रचना करने का प्रयास था जो सफल नहीं हुआ।

वैदिक यति मण्डल—किसी समय महात्मा श्री नारायण स्वामीजी ने सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी-वानप्रस्थ मण्डल की स्थापना की थी। उसके प्रारम्भिक काल की गतिविधियों के बारे में मुझे विशेष जानकारी नहीं है। जब से मैंने उसे जाना तब वह प्रायः निष्क्रिय था। ज्वालापुर में आर्यनगरस्थ ज़मीनों के क्रय-विक्रय तक ही उसका कार्य सीमित था। यह न वानप्रस्थियों का कार्य था, न संन्यासियों का। संगठन के अर्थ में प्रायः शून्य था। सम्भवतः इसी अभाव की पूर्ति के लिए स्वामी श्री सर्वानन्दजी महाराज के मार्गदर्शन में दयानन्द मठ दीनानगर को केन्द्र बनाकर वैदिक यति मण्डल की स्थापना की गई। यह शायद १६८२ की बात है। मैं उसके प्रथम अधिवेशन में भाग लेने जा रहा था कि नई दिल्ली स्टेशन पर हृद्रोग से पीड़ित होकर वहीं से वापस आ गया। अगस्त मास में दूसरा अधिवेशन हुआ। पहले अधिवेशन में जो

कुछ हुआ था, वह विशेष उल्लेखनीय नहीं है। अपनी-अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार संन्यासी लोग यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रचारार्थ स्वतः आते-जाते रहते थे। उससे यति मण्डल को कुछ लेना-देना नहीं था। 'जो हो रहा सो हो रहा। यदि वही हमने किया तो क्या किया ?' इस बात को ध्यान में रखते हुए मैंने मण्डल के विचारार्थ कुछ आधारभूत बातें प्रस्तुत कीं जो इस प्रकार थीं—

१. शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार संन्यास ग्रहण करने का अधिकार केवल ब्राह्मण को है। यहाँ ब्राह्मण से वेदादि शास्त्रों का ज्ञाता विद्वान् अभिप्रेत है। जो विद्वान् नहीं वह संन्यासी के लिए निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता। जो संन्यासी वेदादि-शास्त्रों का विचार-प्रचार नहीं कर सकते वे समाज पर भाररूप हैं। इसलिए अब्राह्मण=अविद्वान् को संन्यास नहीं देना चाहिए, परन्तु मेरे सामने बैठे संन्यासियों में लगभग ८० प्रतिशत अनपढ़ जैसे हैं। ऐसे लोगों के काषाय वस्त्र उतरवा लेने चाहिएँ, परन्तु आज नहीं। ऐसे लोगों को ५ वर्ष के लिए गुरुकुलों या संस्कृत पाठशालाओं में भेज देना चाहिए। जो ५ वर्ष के बाद भी कोरे निकलें, उनके कपड़े अवश्य उतरवा लेने चाहिएँ।

रामकृष्ण मिशन के सभी संन्यासी, विद्वान् तथा कुशल वक्ता होते हैं। उनमें संन्यासी बनाने की प्रक्रिया इस प्रकार है—

जब कोई व्यक्ति संन्यासी बनने की इच्छा व्यक्त करता है तो उससे पूछा जाता है—'Are you B. A. with Sanskrit ?' क्या तुम संस्कृत के साथ बी० ए० हो ? यदि वह वैसा नहीं है तो बात वहीं समाप्त हो जाती है। यदि वह संस्कृत के साथ बी० ए० है तो उसे दर्शन, उपनिषदादि के अध्ययन के लिए उपयुक्त स्थान पर भेजा जाता है। दो वर्ष तक अध्ययन के उपरान्त उसे दो वर्ष तक प्रशिक्षित किया जाता है। इस प्रकार संन्यासी बनने की इच्छा व्यक्त करने के चार वर्ष बाद उसे संन्यास की दीक्षा दी जाती है।

कुछ इसी प्रकार की पद्धति हमें अपनानी चाहिए जिससे वैदिक यति या संन्यासी प्रवचनादि कार्यों में भली प्रकार प्रवृत्त हो सकें।

२. संन्यासियों के लिए पूरी आचार संहिता तो मनुस्मृति में और सत्यार्थप्रकाश में लिखी है। मैं केवल एक बात की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। वह यह कि संन्यासी को प्रवचनादि के लिए जो मिले, उसे सहर्ष स्वीकार करलें। न पहले ठहराएँ और न बाद में झगड़ा करें। उसे दक्षिणा समझकर लें, मज़दूरी समझकर नहीं।

३. जिस समाज का हम अंग हैं, उसके प्रति हमारा विशेष कर्त्तव्य है। आज आर्यसमाज का ढाँचा चरमरा रहा है। पार्टीबाजी के कारण समूचा संगठन छितरा गया है। प्रत्येक स्तर पर झगड़े हैं। बंधुआ मजदूरों की कमी नहीं है, किन्तु स्वतन्त्र बुद्धि से चिन्तन करनेवाले बुद्धिजीवी समाज से दूर बैठे हैं। आर्यसमाज मर रहा है, यह यथार्थ-वाद है, निराशावाद नहीं। उछल-कूदकर डींगें मारने से उसे नहीं बचाया जा सकता। संकट की इस घड़ी में आर्यसमाज की रक्षा करना हम संन्यासियों का कर्त्तव्य है। पक्षपातरहित हो निर्भीकतापूर्वक जैसे संन्यासी अपनी बात कह सकता है, वैसे अन्य कोई नहीं कह सकता। इसलिए हमें साहसपूर्वक आगे आना चाहिए।

मेरी इन बातों में से एक को भी स्वीकार नहीं किया गया। मुझे लगा कि वैदिक यति मण्डल में मेरी कोई उपयोगिता नहीं है। मात्र औपचारिकता पूरी करने में मेरी कोई रुचि नहीं थी। इसलिए मैंने मण्डल की बैठकों में जाना बन्द कर दिया। पूज्य स्वामीजी महाराज के आदेश का पालन करने के लिए मैं काफी दिनों बाद रोहतक में सितम्बर १९८६ में हुई बैठक में शामिल हुआ था। अभी भी मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ।

वैदिक यति मण्डल का विधान एकतन्त्रात्मक है, यह बहुत अच्छी बात है। लोकतन्त्र के भुलावे में होनेवाले अनिष्ट से वह असम्पृक्त है। महर्षि दयानन्द पर बननेवाली फ़िल्म विरोधी आन्दोलन और

१९८३ में अजमेर में सम्पन्न महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी में उसकी भूमिका सराहनीय रही है।

डी० ए० वी० शताब्दी समारोह—१८८६ में स्थापित डी० ए० वी० कालिज लाहौर का शताब्दी समारोह १९८६ में शुरू होकर १९८७ में समाप्त हुआ। समापन समारोह १५ नवम्बर, १९८७ को तालकटोरा स्टेडियम में सम्पन्न हुआ। इस समारोह में मुख्य अतिथि उपराष्ट्रपति डा० शंकरदयाल शर्मा थे। आर्य प्रादेशिक सभा तथा डी० ए० वी० प्रवन्धकर्त्री सभा के प्रधान प्रो० श्री वेदव्यासजी ने अपना अध्यक्षीय भाषण अंग्रेज़ी में दिया। मुझे यह अच्छा नहीं लगा कि भारतीयों के बीच और वह भी आर्यसमाज का नेता अंग्रेज़ी में भाषण दे। एक वार फिर मुझे १९३६ में डी० ए० वी० की अर्धशताब्दी के अवसर पर महात्मा हंसराजजी के हिन्दी में दिये भाषण की याद आ गयी। मैं उपराष्ट्रपतिजी के पास ही कुर्सी पर बैठा था। मैंने उनसे कहा कि अब आर्यसमाज की लाज आपके हाथों में है। आप तो हिन्दी में वोलेंगे न ? शंकरदयालजी वोले—जैसे आप कहें। मैंने कहा—मुझे जो कहना था सो तो कह दिया। और कैसे कहूँ ? वे हिन्दी में बोले। उन्होंने अपने भाषण में तीन बातों पर वल दिया—नैतिक मूल्य, भारतीय संस्कृति और उनका आधार वेद। समारोह की समाप्ति पर मैंने अलग ले-जाकर उनसे कहा कि वेद तक तो आप पहुँच गये, किन्तु भारत सरकार द्वारा घोषित नई शिक्षा नीति के चालू होने पर संस्कृत का पठन-पाठन बन्द होने से जब कुछ वर्षों वाद संस्कृत का लोप हो जाएगा तो वेद कहाँ रहेंगे ? और वेदों का लोप होने पर कहाँ रहेगी भारतीय संस्कृति और उसपर आधारित नैतिक मूल्य ? शर्माजी बोले—मैं समझ गया आपकी वात। मैं उस दिशा में प्रयत्न करूँगा।

परित्याग—आर्यसमाज का ढाँचा चरमरा रहा है। यह लोकतन्त्र के नाम पर बहुमत का अभिशाप है कि आज आर्यसमाज में अधिसंख्यक

लोग ऐसे हैं जिनमें आर्यत्व नाम को भी नहीं है। आर्यसमाज को सबसे बड़ा ख़तरा उन घुसपैठियों से है जो आर्यसमाज का बिल्ला लगाकर आर्यसमाज पर अधिकार जमा बैठे हैं। येन-केन प्रकारेण बहुमत जुटाने में कुशल व्यक्ति केवल तिकड़म के बल पर ऊँचे-से-ऊँचे पद पर जा पहुँचते हैं और फिर वहाँ से हटने का नाम नहीं लेते। आर्य-समाज के संगठन के आधारभूत सिद्धान्तों—उपनियमों का अपवादरूप में भी पालन नहीं होता। इसलिए राजनीतिक दाव-पेंचों में निष्णात व्यक्ति आर्यसमाज पर छाये हुए हैं। साधारण आर्यसमाजियों में तो भले ही कोई चरित्रवान् व्यक्ति मिल जाए, किन्तु सत्ताधारियों में तो चिराग लेकर ढूँढ़ने से भी शायद ही मिले।

आर्यसमाज की इस स्थिति से मैं बहुत दिनों से निराश हूँ, किन्तु दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के इस बार (१९८७) के चुनाव के अवसर पर जो कुछ देखा उससे मुझे मर्मान्तक पीड़ा हुई। मन कराह उठा उसे देखकर।

जज या मजिस्ट्रेट कभी झगड़े में भाग नहीं लेते। झगड़ा होने और निर्णय के लिए उनकी अदालत में आने पर ही उसमें हस्तक्षेप करते हैं। यदि झगड़े के समय उपस्थित हों तो अपनी अदालत में उसकी सुनवाई स्वयं नहीं करते। सार्वदेशिक सभा के प्रधान की स्थिति सर्वोपरि निर्णायक की होती है। वह किसी प्रान्तीय सभा का चुनाव करवाने नहीं जाता। झगड़ा होने पर उसका निपटारा करता है, स्वयं पक्ष नहीं बनता, परन्तु अब सभा प्रधान अपने प्रत्याशी को जिताने के लिए प्रायः सभाओं के चुनाव कराने जा धमकते हैं और यदि किसी कारण उनकी इच्छा या आशा के विपरीत चुनाव हो जाए तो उसे अवैध घोषित करने में संकोच नहीं करते, भले ही वह लगभग सर्वसम्मति से हुआ हो। पहले सुना था कि आर्यसमाज के सर्वोच्च नेता कहीं झगड़े की गन्ध पाकर पहले उसे बढ़ाते हैं और फिर नाटकीय ढंग से उसे निपटाने के नाम पर अनाहूत वहाँ पहुँचकर स्वयं पंच बन

बैठते हैं और फिर दाव-पेंच लगाकर मनचाहे निर्णय की घोषणा कर देते हैं, पर दिल्ली सभा के निर्वाचन के समय इस वार यह सब प्रत्यक्ष देखा। अपने पद की गरिमा को खोकर मंच पर जो दृश्य उन्होंने उपस्थित किया उसे देखकर मेरा सिर लज्जा से झुक गया। मैंने तभी ऐसे संगठन से दूर हो जाने का निर्णय कर लिया और १ जनवरी, १९८८ को आर्यसमाज की प्राथमिक सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया और इस प्रकार आर्यसमाज से मेरा ६२ वर्ष का नाता टूट गया। परन्तु मैंने आर्यसमाज नाम के संगठन को छोड़ा है, वैदिक धर्म को नहीं। वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में मैं पूर्ववत् अग्रसर रहूँगा।

सभा के मुखियों को देख करके सभा से मुनकिर हुई है दुनिया।
कि ऐसे नेता हैं जिस सभा के वो कोई अच्छी सभा नहीं है॥

उपसंहार

मेरे त्यागपत्र का समाचार अनेक पत्रों में प्रकाशित हुआ। दैनिक 'नवभारत टाइम्स' में यह समाचार २९ फरवरी १९८८ के अंक में प्रमुखता के साथ इन शब्दों में प्रकाशित हुआ—

विद्यानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की सदस्यता छोड़ी

"आर्यसमाज के कर्मठ एवं वयोवृद्ध नेता स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज के अन्दर बढ़ रहे खोखलेपन से क्षुब्ध होकर आर्यसमाज की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया है। उन्होंने कहा है कि वह केवल आर्यसमाज के संगठन से नाता तोड़ रहे हैं, जहाँ तक वैदिक धर्म का सवाल है, उसके प्रचार-प्रसार में वह बराबर जुटे रहेंगे।

स्वामी विद्यानन्द ने एक वक्तव्य जारी कर कहा है कि आर्यसमाज आपसी गुटबन्दी और तथाकथित मठाधीशों की मनमानी के कारण खोखला हो गया है। यदि कर्मठ आर्यसमाजियों ने समय रहते क़दम नहीं उठाया तो यह संगठन केवल नाम का ही संगठन रह जाएगा।

उन्होंने कहा—ऐसी स्थिति में मैं इस संगठन में नहीं रह सकता। लेकिन आर्यसमाज के बचाने के लिए मुझसे जो भी सहयोग लिया जाएगा, वह मैं सहर्ष देने के लिए तत्पर हूँ।"

इस समाचार से आर्यजगत् में खलबली मच गई। चारों ओर से

पत्र आने लगे। प्रायः सबका एक ही स्वर था—यदि आप जैसे व्यक्ति आर्यसमाज को छोड़ देंगे तो हमारे जैसे उसमें रहकर क्या करेंगे ?

५-६ मार्च ८८ को रोहतक में वैदिक यतिमण्डल की बैठक हुई जिसमें सौ के लगभग आर्यसंन्यासी, वानप्रस्थी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी सम्मिलित हुए। वहाँ मेरे त्यागपत्र की चर्चा हुई। सभी ने आक्रोश-पूर्ण शब्दों में स्वामी आनन्दबोध के कृत्यों की तीखी आलोचना की और उनकी पदलोलुपता के कारण आर्यसमाज को पहुँची हानि पर रोष एवं चिन्ता व्यक्त की। तव मुझसे अनुरोध किया गया कि मैं उन परिस्थितियों पर प्रकाश डालूँ जिनके कारण मुझे आर्यसमाज से अपना ६२ वर्ष पुराना नाता तोड़ने को विवश होना पड़ा। मैंने संक्षेप में उन बातों की चर्चा की जिनका गत पृष्ठों में यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है।

सवने अनुभव किया कि स्वामी आनन्दबोध का सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद पर बने रहना आर्यसमाज के लिए घातक सिद्ध होगा और वैदिक यतिमण्डल के अध्यक्ष श्री स्वामी सर्वानन्द सरस्वती से इस विषय में तत्काल आवश्यक कार्यवाही करने का अनुरोध किया। इस पर स्वामी सर्वानन्दजी ने दिल्ली टेलीफोन करके स्वामी आनन्दवोध को अगले दिन प्रातः रोहतक पहुँचने का आदेश दिया। तदनुसार स्वामीजी (श्री रामगोपाल शालवाले) अगले दिन प्रातः दयानन्द मठ में उपस्थित हो गये। श्री स्वामी सर्वानन्दजी ने उन्हें सारी स्थिति से अवगत करते हुए तत्काल सार्वदेशिक आ० प्र० सभा के प्रधान पद से त्यागपत्र देने का आदेश दिया। तदनुसार स्वामी आनन्दबोध ने सभा में उपस्थित होकर त्यागपत्र देने की घोषणा कर दी और दिल्ली पहुँचकर अपना त्यागपत्र श्री स्वामी सर्वानन्दजी के पास भेज देने का वचन दिया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने विदाई भाषण में अपनी योग्यता और प्रभाव का बखान किया जिसमें सदा की भाँति सत्य का अंश आटे में नमक के बराबर रहा होगा। भाषण के अन्त में उन्होंने प्रायश्चित्त के तौर पर तीन दिन तक उपवास करने की घोषणा की और दूध पीकर

दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

मध्याह्नोत्तर हम लोग (सर्वश्री स्वामी सर्वानन्दजी, स्वामी ओमानन्दजी, महात्मा दयानन्दजी, स्वामी जगदीश्वरानन्दजी, स्वामी सुमेधानन्दजी, स्वामी दीक्षानन्दजी और स्वयं मैं) भी दिल्ली पहुँच गये और रात ६ बजे तक भविष्य के बारे में विचार-विमर्श करते रहे। ७ मार्च को प्रातः जब स्वामी आनन्दबोध का त्यागपत्र श्री स्वामी सर्वानन्दजी के पास नहीं पहुँचा तो श्री स्वामी सर्वानन्दजी महाराज स्वयं सार्वदेशिक सभा में गये। वहाँ उन्हें त्यागपत्र प्राप्त हो गया।

श्री स्वामी सर्वानन्दजी यह जानते थे कि विधान के अनुसार त्यागपत्र को स्वीकार करने का अधिकार सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा को है। वह यह भी जानते थे कि अन्तरंग सदस्य निर्वाचित न होकर सभा प्रधान द्वारा मनोनीत (Nominated) हैं। लालाजी की अनुमति के बिना वे साँस लेने की ज़ोखिम भी नहीं उठा सकते। ऐसा करके वे अपने भविष्य को दाव पर नहीं लगाएँगे। इसलिए त्यागपत्र लेते समय उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि अपने त्यागपत्र को अन्तरंग सभा से स्वीकृत कराना उनकी (लालाजी की) ज़िम्मेदारी है।

परिस्थितिवश लालाजी त्यागपत्र तो दे बैठे, परन्तु जल्दी ही उन्हें अपनी ग़लती का एहसास हो गया। उन्होंने अनुभव किया कि आर्य-समाज में उनकी जितनी पूछ है, वह मात्र सार्वदेशिक सभा का प्रधान होने के कारण हैं। पद से हटने पर वह कहीं के नहीं रहेंगे। यद्यपि अन्तरंग सभा उनकी मुट्ठी में थी, तथापि वह सर्वथा निश्चिन्त हो जाना चाहते थे। इसलिए अन्तरंग सभा को त्यागपत्र को अस्वीकार करने में सहायता देने के विचार से वे इस निमित्त अभियान में सर्वा-त्मना जुट गये। चारों ओर घोड़े दौड़ा दिये गये। अधिकांश प्रतिनिधि सभाएँ भी स्वतन्त्र न होकर सार्वदेशिक सभा के प्रधान द्वारा मनोनीत हैं। उन्होंने अपने अधीनस्थ आर्यसमाजों को आदेश दिये कि वे इस

आशय के प्रस्ताव पास करें कि लालाजी आर्यसमाज के एकमात्र स्वामी हैं—**पतिरेक आसीत्**। उनके सार्वदेशिक सभा का प्रधान न रहने पर आर्यसमाज अनाथ हो जाएगा—उसका सुहाग लुट जाएगा। उधर किन्हीं हितैषी महानुभाव के सत्परामर्श से श्री स्वामी सर्वानन्द-जी ने लालाजी को लिख भेजा कि 'अब जैसा आपकी आत्मा स्वीकार करे, वैसा करें।'

यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के तीसरे मन्त्र में ऐसे लोगों का भी उल्लेख हुआ है—'ये के चात्महनो जनाः।' इस मन्त्र का भाष्य करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा है—"आत्महनो जनाः=आत्मा के विरुद्ध आचरण करनेवाले मनुष्य अर्थात् जो आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही हैं।" जैसे साँप के मुँह में जाकर दूध भी विषरूप हो जाता है, वैसे ही कुपात्र को दिया सदुपदेश भी अन्यथा हो जाता है। वैसा ही यहाँ हुआ।

१७ अप्रैल को अन्तरंग सभा की बैठक हुई। सभा ने निर्णय किया कि—

१—प्रधानजी (स्वामी आनन्दबोधजी) का यह कार्य न वैधानिक है और न आर्यसमाज के लिए हितकर है।

२—न ही सभा संस्थाओं के विधान के अनुकूल है।

इसलिए वह यथावत् प्रधान बने रहें।

सार्वदेशिक सभा द्वारा किया गया यह निर्णय संसार के इतिहास में अपनी मिसाल आप ही है कि किसी संस्था के प्रधान को ऐसे कार्य के लिए अपराधी घोषित किया गया हो जो अवैधानिक होने के साथ-साथ उस संस्था के हितों के विरुद्ध भी हो और फिर उसे दण्डित न करके पुरस्कृत किया गया हो।

भगवान् राम राजगद्दी का परित्याग करके वन में चले गये। राम कह सकते थे कि जिस परिषद् ने मुझे सर्वसम्मति से राजा चुना था वही मुझे गद्दी से उतार सकती है। अथवा जिन्होंने मुझे चुना था

पहले उन मतदाताओं से मैं अनुमति ले लूँ, पर उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। बाद में अयोध्या की सारी जनता जिसमें राम को वन भेजनेवाली कैकेयी भी थी और वसिष्ठ आदि ऋषि-मुनि भी थे, वन में गये और एक स्वर से राम से अयोध्या लौटने और यथावत् गद्दी पर आसीन होने का आग्रह किया। वे लोग कई दिन तक धरने पर बैठे रहे, परन्तु राम ने सबके सामूहिक अनुरोध को ठुकराते हुए अयोध्या लौटने से इन्कार कर दिया। राम ने कहा—"स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसन्निधौ"—मैंने गुरु के समक्ष पदत्याग की प्रतिज्ञा की है, किसी भी अवस्था में मैं उसे नहीं तोड़ सकता—रामो द्विर्नाभिभाषते। वह त्रेता के राम थे, कलियुग के राम···नहीं थे। वह मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उन्हें पद का मोह नहीं था, इसलिए जनता के अनुरोध का या गुरु के पत्र का सहारा लेकर राम ने त्यागपत्र वापस नहीं लिया।

सच है—

नाअहल हैं वो अहले सयासत की नज़र में।
वादों से अपने जिनको मुकरना नहीं आता॥

मैं कहता हूँ—दयानन्द का आर्यसमाज मर रहा है।
लोग कहते हैं—वह तो कभी का मर चुका।

□□□